KANWAL BHARTI KA ALOCHNA SAHITYA

A Thesis submitted during (Year) 2021 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a **Ph.D. degree** in Hindi, School of Humanities.

By

GHATE KAILAS BALIRAM

14HHPH18

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

P.O. Central University, Gachibowali,

Hyderabad – 500046

Telangana

India.

कँवल भारती का आलोचना साहित्य

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2021

शोधार्थी

घाटे कैलास बलिराम

14HHPH18

Ravi Ranjan 5.06.2021

शोध-निर्देशक

प्रो. रवि रंजन

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद – 500046

विभागाध्यक्ष

प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद - 500046

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद – 500046

Declaration

I, **GHATE KAILAS BALIRAM** hereby Declare that the thesis entitled **KANWAL BHARTI KA ALOCHNA SAHITYA** (**कँवल भारती का आलोचना साहित्य)** submitted by me under the guidance and supervision of Professor **Ravi Ranjan** is a *bonafide* research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: 5/06/2021

Signature of the student

Name: **GHATE KAILAS BALIRAM**

Regd. No. 14HHPH18

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **KANWAL BHARTI KA ALOCHNA SAHITYA (कँवल भारती का आलोचना साहित्य)** submitted by **GHATE KAILAS BALIRAM** bearing Regd. No. **14HHPH18** in partial fulfillment of the requirements for the award of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications:

1. Acharya Hajaripasad Dwivedi Kee Drushti Mein Kabir (ISSN - 23199318)
2. Kanwal Bharti Ka Alochna Karm Aur Kabir (ISSN – 2348-6163)

B. Research Paper presented in the following conferences:

1. "Kanwal Bharti Ki Alochna Aur Kabir" Orgnized by - Dr. Shyamrao Rathod, English & Foreign Language University, Hyderabad- 500007. 10-11October, 2018. (National)
2. "Kanwal Bharti Ka Alochna Karm Aur Raidas" Orgnized by - Prof. R. S. Sarraju, Centre For Dalit And Adivasi Studies And Translation (CDAST), Hyderabad-500046. 21 January, 2019. (National)

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of course work requirement for Ph.D.:

Course Code		Name	Credit	Result
1.	801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2.	802	Research Paper	4	Pass
3.	826	The Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4.	827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M.Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code		Name	Grade	Credit	Result
1.	701	Research Methodology	B	4	Pass
2.	721	Modern Thought	B	4	Pass
3.	722	Sociology of Literature	B	4	Pass
4.	724	Aesthetics and Stylistics	B	4	Pass
5.	750	Dissertation	A	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Ravi Ranjan 5.06.2021

Supervisor **Head of Department** **Dean of the School**

भूमिका

कबीर ने कहा -'निन्दक नियरै राखिये, आंगन कुटी बँधाई।/ बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाई।' आज का समाज इस दोहे के बिलकुल विपरीत दिखाई देता है। वह निन्दक को बिलकुल भी अपने आस-पास नज़र तक आने नहीं देना चाहता है। एक बात और है कि जो समाज निंदक को उचित स्थान देता है वह समाज प्रगति करने से नहीं चुकता है। यह बात आलोचना एवं आलोचक के संदर्भ में भी कही जा सकती है। आलोचना मूलतः समाज-साहित्य को निर्मल ही नहीं करती है बल्कि समाज एवं साहित्य की कमियों को दूर करती हुई नए जीवन मूल्यों को स्थापित भी करती है और इस स्थापना के लिए वह वैचारिक स्तर पर निरंतर संघर्ष करती रहती है। इसलिए तो उसका समाज एवं साहित्य में होना प्रगति का परिचायक है।

आलोचना का दायित्व समाज एवं साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। सातवें दशक के बाद जब हिंदी दलित साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाने लगा तब हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित आलोचकों द्वारा दलित साहित्य की आलोचनाएँ होने लगीं। और इन आलोचनाओं के प्रति-उत्तर में जो प्रयास दलित आलोचकों द्वारा हुए वहीं से दलित आलोचना की शुरूआत मानी जा सकती है। डॉ. हरिनारायण ठाकुर उपर्युक्त बात को 'दलित साहित्य के समाजशास्त्र' में रेखांकित करते हैं। कबीर के संदर्भ में डॉ. धर्मवीर की आलोचना मध्ययुगीन काव्य एवं हिंदी आलोचकों के एक नए रूप को सामने लाती है। वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' लिखकर दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए नए सौंदर्यशास्त्र की माँग को प्रस्तुत की है।

हिंदी दलित आलोचना को जानने-समझने के प्रयास में कँवल भारती की रचनाओं को पढ़कर लगा इन पर शोधकार्य किया जा सकता है। उनकी आलोचना मध्ययुगीन कवियों से लेकर आधुनिक दलित कवियों तक सबका मूल्यांकन करती है। एक बात भारत के संदर्भ

में यह कि दलितों के प्रति अलगाव का शास्त्र खड़ा किया गया। मनुष्य-मनुष्य के बीच इस प्रकार का अलगाव कि मूलभूत सुविधाओं एवं अधिकारों तक से उन्हें वंचित कर दिया गया। इसके ख़िलाफ़ कँवल भारती की आलोचना मुखर दिखाई देती है। इस आलोचना ने हिंदी दलित साहित्य के साथ-साथ हिंदी साहित्य को किस रूप में समृद्ध किया? उनकी आलोचना का हिंदी दलित साहित्य में क्या स्थान है? हिंदी दलित साहित्य की अवधारणा, साहित्य, समाज, इतिहास एवं संस्कृति को किस रूप में यह आलोचना सामने ले आती है, इन प्रश्नों के उत्तर की तलाश इस शोध-प्रबंध में करने की कोशिश की गयी है। साथ ही इस शोध-प्रबंध में कँवल भारती की आलोचना का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। आलोचना की विशेषताओं एवं सीमाओं को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है।

शोध-कार्य के समुचित विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण की सुविधा के लिए, शोध-प्रबंध को भूमिका एवं उपसंहार के अतिरिक्त पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय : 'कँवल भारती की आलोचना : मध्यकालीन काव्य पर पुनर्विचार' इस अध्याय के अंतर्गत 'कबीर का पुनर्मूल्यांकन', 'रैदास पर पुनर्विचार' एवं 'दलित आलोचना के अंतर्विरोध का रेखांकन' ये मुख्य बिंदु हैं। इनके आधार पर हिंदी आलोचक एवं हिंदी दलित आलोचक, कबीर एवं रैदास पर क्या विचार रखते हैं? वे किस रूप में हैं? कँवल भारती की आलोचना कबीर एवं रैदास के संदर्भ में क्या कुछ नए सत्य उद्घाटित करती है? इन प्रश्नों के उत्तर की तलाश के साथ ही, उनकी आलोचना एवं हिंदी दलित आलोचना के अंतर्विरोधों को भी विश्लेषित एवं रेखांकित करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय : 'कँवल भारती की आलोचना : हिंदी नवजागरण का दलित संदर्भ' इस अध्याय के अंतर्गत 'हिंदी नवजागरण की अवधारणा', 'हिंदी नवजागरण और भारतीय नवजागरण का अंतःसंबंध', हिंदी नवजगारण के अग्रदूतों का मूल्यांकन, हिंदी नवजागरण की दलित धारा, दलित आंदोलन के अंतर्गत - 'स्वामी अछूतानंद हरिहर और उनका आंदोलन'

एवं 'हिंदी नवजागरण और दलित रचनाकार' आदि बिंदु आते हैं। इन्हीं बिंदुओं को इस अध्याय में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। कँवल भारती की आलोचना में हिंदी नवजागरण, हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों का मूल्यांकन, दलित नवजागरण एवं स्वामी अछूतानंद के सामाजिक एवं साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन किस रूप में आया है, इसे विश्लेषित-व्याख्यायित करने का प्रयास यहाँ किया गया है।

तृतीय अध्याय : 'समकालीन दलित साहित्य के मूल्यांकन का प्रश्न और कँवल भारती' इस अध्याय के अंतर्गत, 'दलित विर्मश की अर्थवत्ता: एक मूल्यांकन', 'दलित साहित्य के ज़मीन की तलाश', 'कँवल भारती : दलित कविता का मूल्यांकन' एवं 'कँवल भारती : दलित आत्मालोचन' बिंदु हैं। इनके आधार पर दलित साहित्य की अर्थवत्ता को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है। साथ ही हिंदी दलित साहित्य की शुरूआत कहाँ से मानी जाए, इस संदर्भ में जो विमर्श हुए उसे केंद्र में रखकर कँवल भारती ने इसकी शुरूआत कहाँ से मानी है, इस बात को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कँवल भारती की आलोचना आधुनिक दलित साहित्य का मूल्यांकन किन आधारों पर करती है और उस मूल्यांकन से क्या कुछ हिंदी साहित्य में नया जुड़ जाता है, इस बात को रेखांकित करने का प्रयास 'कँवल भारती : दलित कविता का मूल्यांकन' इस बिंदु के अंतर्गत है। 'कँवल भारती : दलित आत्मालोचन' इस उप-अध्याय में कँवल भारती ने हिंदी दलित आलोचक डॉ. धर्मवीर की जो आलोचना की है उसे विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : 'दलित पत्रकारिता और कँवल भारती' यह अध्याय विशेषतः कँवल भारती के पत्रकारिता के योगदान का मूल्यांकन है। वे कवि, आलोचक एवं चिंतक के साथ-साथ संपादक-पत्रकार हैं। 'माझी जनता' साप्ताहिक रहा जिसके संपादन का काम कँवल भारती ने किया था। उसे इस अध्याय का केंद्र बिंदु बनाकर उनकी पत्रकारिता को विश्लेषित किया गया है। इसमें मुख्यतः 'दलित पत्रकारिता की उपलब्धियों की शिनाख़्त', 'माझी जनता और

कँवल भारती', 'बहुजन आंदोलन एक मूल्यांकन' एवं 'दलित पत्रकारिता की सीमाओं का निर्देश' उप-अध्याय हैं। दलित पत्रकारिता की शुरूआत से लेकर दलित पत्रकारिता की सीमाओं का रेखांकन इस अध्याय में देखा जा सकता है।

पंचम् अध्याय : 'कँवल भारती का वैचारिक साहित्य एक मूल्यांकन' इस अध्याय के अंतर्गत 'राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर', 'समाजवादी आंबेडकर' एवं 'दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म' यह तीन मुख्य बिंदु हैं। इस अध्याय के अंतर्गत कँवल भारती के वैचारिक लेखन में आंबेडकरवादी विचारधारा को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

पाँच अध्यायों का सारांश निष्कर्ष रूप में प्रत्येक अध्याय के अंत में दिया गया है। इसके पश्चात शोध-प्रबंध के निष्कर्ष को उपसंहार में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। संदर्भ ग्रंथ सूची को आधार ग्रंथ, हिंदी सहायक ग्रंथ, मराठी सहायक ग्रंथ, अंग्रेजी सहायक ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ एवं वेब स्थल सेतु इस रूप में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में साक्षात्कार, शोध-आलेख एवं संगोष्ठी के प्रमाणपत्रों को संलग्न किया गया है।

कँवल भारती का लेखन-कार्य अपने आप में काफ़ी विस्तृत है और वे आज भी लगातार लिख रहे हैं। इसलिए यहाँ उनके आलोचना साहित्य को ही केंद्र में रखकर शोध-कार्य किया गया है। पत्रकारिता एवं वैचारिक लेखन को आधार बनाकर जो अध्याय लिखे गए हैं इनमें उनकी वैचारिकी को स्पष्ट करने एवं उनके लेखन में आए आंबेडकरवादी विचारों के प्रभाव को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

हिंदी दलित आलोचना की परम्परा किस रूप में हिंदी आलोचना एवं साहित्य को विस्तृत कर रही है, इसे विश्लेषित करने के साथ ही यह शोध-कार्य आलोचना एवं आलोचक के महत्त्व को बिना पूर्वाग्रह के रेखांकित करने का प्रयास-मात्र रहेगा। कँवल भारती का हिंदी दलित आलोचना के क्षेत्र में क्या महत्त्व एवं स्थान है इस बात को भी रेखांकित करने का प्रयास इस शोध-कार्य में किया गया है। हिंदी दलित आलोचना के क्षेत्र में, कँवल भारती के

योगदान एवं उनकी सीमाओं को रेखांकित करते हुए हिंदी दलित साहित्य के विस्तृत फलक को प्रस्तुत करने में इस शोध-कार्य का महत्त्व एवं उद्देश्य अंतर्निहित है।

धन्यवाद ज्ञापन :

शोध के क्षेत्र में मेरे जैसे छात्र का आना दरअसल मुश्किल होता है। बचपन से ही जहाँ आर्थिक विपन्नता आपकी परछाई बनकर साथ चलती हो, ऐसे में उससे पीछा छुड़ाकर शोध के क्षेत्र में आना मुश्किल तो है पर नामुमकिन नहीं। मेरा शोध तक का सफ़र महत्त्वपूर्ण है और रोचक भी। स्कूल की छुट्टियों में मैं लेबर बन काम कर चुका हूँ। कालेज के दिनों में ज़ेरॉक्स सेंटर, डी.टी. पी. सेंटर, सेतु केंद्र, रजिस्ट्री ऑफिस आदि जगहों पर ज़ेरॉक्स-टाईपिंग का काम करता रहा और इसी काम ने मुझे हैदराबाद विश्वविद्यालय तक ला पहुँचाया। 'एक्सपर्ट' ज़ेरॉक्स एवं डी.टी.पी सेंटर के मालिक - बालाजी देवकरे जिन्हें मैं 'दादा' कहता हूँ। उनके प्रति विशेष आभार प्रकट करता हूँ। उनके साथ मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के शोधार्थी का शोध-प्रबंध टाईपिंग करने न आया होता तो मैं वहीं गाँव में जीविका के लिए काम कर रहा होता। आभार आपका।

हिंदी विषय में मेरी रुचि को बढावा देने के लिए मेरी अध्यापिका रही प्रो. प्रतिभा येरेकार मैम का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। डॉ. सुधाकर जाधव, डॉ. सुनील सोनकांबळे, प्रो. आनंद थोरात एवं डॉ. संदिप रणभिरकर का आभार जिनके प्रोत्साहन से पढ़ाई कभी छुटी नहीं। मेरे दोस्त किर्तीराज गायकवाड, प्रशांत येनगंटीवार और अविनाश कोठारे के साथ, कालेज के दोस्तों का धन्यवाद, जिनमें- अनिल जाधव और शेख मोसिन हैं।

हैदाराबाद विश्वविद्यालय में पिराजी सोनकांबळे, दत्तात्रेय ओसावार, अनिल लोखंडे, बी. रवि, गातांजली साहू, रवि जाधव, तुषार घाडगे, अनंत उजगरे इनकी सोहबत मेरे लिए बहुत अहम रही है। इस सफ़र में मेरे साथी बनने के लिए आपका शुक्रिया। मोबिन जहोरोद्दीन

व अनुज भैया का शुक्रिया जो आज भी मुझे पढ़ने-लिखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। कविता में मेरी रुचि को बढ़ाने का श्रेय राजीव कुमार 'राही' को जाता है। वे रूम पार्टनर से ज़्यादा साथी, दोस्त की भूमिका में ज़्यादा रहे हैं। शोध-कार्य से जब हताशा हुआ तो आपके एक फोन और सकारात्मक आवाज़ ने फिर से शोध को पूरा करने लिए जैसे मुझ में ऊर्जा भर दी। यह ऋण कैसे उतार पाऊँगा पता नहीं। बंडी डैनियल का विशेष आभार। तुम्हारा साथ न होता तो शायद ही मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय में पीएच. डी. करने का सपना देख पाता।

मेरे परिवार के किसी भी सदस्य के प्रति धन्यवाद ज्ञापित कर हमारे रिश्तों को औपचारिक नहीं बनाना चाहता। आई-बाबा (गोदावरी बलिराम घाटे, बलिराम मरिबा घाटे) जिन्हें पीएच.डी. क्या होती है इस बात का पता नहीं लेकिन शिक्षा मेरे लिए ज़रूरी है, वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। हमेशा अच्छी शिक्षा के लिए प्रेरित करते रहे हैं। अब आपका इंतजार ख़त्म हुआ। इस काम के पूर्णत्व के बाद आपकी जिंदगी में खुशियाँ भर दूँ बस यही चाहत है। आई-बाबा को छोटे भाई 'राष्ट्रपाल' ने मेरी कमी खलने नहीं दी। इस परिश्रम के लिए उसे प्यार। बहन 'अंकिता' के लिए प्यार। तुम दोनों का मुझ पर जो विश्वास है, चाहता हूँ उस पर मैं खरा उतर सकूँ। मेरे मामा (तुलसीराम हैबते) और उनके परिवार के स्नेह एवं प्यार का सदा ऋणी रहूँगा। बनजा तालदी आपके स्नेह, प्यार एवं डाँट के कारण शोध-कार्य में अपने आपको व्यस्त कर सका। अब इस शोध-कार्य के संपन्न होने का आपका इंतजार ख़त्म हुआ।

मैंने यह शोध-कार्य प्रो. रवि रंजन जी के निर्देशन में पूरा किया है। वे मेरे लिए शोध-निर्देशक के साथ-ही-साथ मेनटॉर् रहें हैं। अकादमिक दुनिया के साथ व्यावहारिक जीवन से जुड़ी कई बातें इनसे सीखी हैं। कभी शोध-निर्देशक, तो कभी मार्गदर्शक, तो कभी अभिभावक की सर भूमिका ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। सर की प्रश्न पूछने की आदत ने मुझे अधिक पढ़ने-लिखने एवं मेहनत करने के लिए विवश किया है। इन प्रश्नों से मेरे ज्ञान की गहराई का

आईना मुझे साफ़ दिखाई देता रहा। मैं सर के प्रति धन्यवाद ज्ञापित कर इस रिश्ते को औपचारिक नहीं बनाना चाहता। यह ताउम्र का रिश्ता है इसके ऋण में बने रहना ही मैं सार्थक मानता हूँ।

मेरे शोध के डीआरसी मेंबर रहें प्रो. गजेंद्र पाठक (विभागाध्यक्ष) एवं डॉ. भीम सिंह जी का विशेष आभार इनके सुझाव शोध के लिए मूल्यवान साबित हुए। प्रो. वी. कृष्णा जी का आभार जिनके कारण पीएच.डी. कर पाया। प्रो. श्याम राव सर का आभार जिनके सुझाव शोध में सहायक साबित हुए। विभाग के अन्य सभी प्राध्यापकों का मैं दिल से आभार प्रकट करता हूँ।

कँवल भारती जी का विशेष आभार, मेरी जिज्ञासाओं का वे हमेशा निवारण करते रहे हैं। अपनी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने मेरी हर संभव सहायता की है। आपका पुनः धन्यवाद एवं आभार।

शोध-प्रबंध के लिए जिन ग्रंथालयों से मैंने सामग्री ली है, उनमें इंदिरा गांधी मेमोरियल ग्रंथालय, हैदराबाद का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के ग्रंथालय का आभार, लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय, धर्माबाद के पुस्तकालय का आभार, नई दिल्ली में आयोजित वार्षिक पुस्तक मेले के प्रति भी आभार। इन ग्रंथालयों में काम करने वाले सभी कर्मचारी वर्ग का उनके सेवाओं के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ। जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में सहयोग किया उन सभी लिए अवतार सिंह पाश की कुछ पंक्तियाँ- 'मैं आदमी हूँ/ बहुत कुछ छोटा-छोटा/ जोड़कर बना हूँ/ और/ उन सब चीज़ों के लिए/ जिन्होंने मुझे/ बिखर जाने से/ बचाए रखा/ मेरे पास/ बहुत शुक्राना है/ मैं शुक्रिया करना चाहता हूँ।'

\- **घाटे कैलास बलिराम**

कँवल भारती का आलोचना साहित्य

पृ. सं

भूमिका I-VII

प्रथम अध्याय : कँवल भारती की आलोचना : मध्यकालीन काव्य पर पुनर्विचार 1-55

1.1 कबीर का पुनर्मूल्यांकन

1.1.1 आ. रामचंद्र शुक्ल और कबीर

1.1.2 आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी और कबीर

1.1.3 डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल और कबीर

1.1.4 डॉ. धर्मवीर और कबीर

1.1.5 कँवल भारती और कबीर

1.2 रैदास पर पुनर्विचार

1.2.1 रैदास और धर्मपाल मैनी

1.2.2 रैदास और डॉ. योगेन्द्र सिंह

1.2.3 रैदास और डॉ. एन. सिंह

1.2.4 रैदास और डॉ. धर्मवीर

1.2.5 रैदास और कँवल भारती

1.3 दलित आलोचना के अंतर्विरोध का रेखांकन

द्वितीय अध्याय : कँवल भारती की आलोचना : हिंदी नवजागरण का दलित सन्दर्भ 56-96

2.1 हिंदी नवजागरण की अवधारणा

2.2 हिंदी नवजागरण और भारतीय नवजागरण का अंत:संबंध

2.3 हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों का मूल्यांकन

2.3.1 महावीरप्रसाद द्विवेदी

2.3.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

2.3.3 जयशंकर प्रसाद

2.3.4 सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’

2.3.5 प्रेमचंद

2.4 हिंदी नवजागरण की दलित धारा

2.4.1 दलित आंदोलन

2.4.1.1 स्वामी अछूतानंद ‘हरिहर’ और उनका आंदोलन

2.4.2 हिंदी नवजागरण और दलित रचनाकार

2.4.2.1 हीरा डोम

2.4.2.2 स्वामी अछूतानंद ‘हरिहर’

तृतीय अध्याय : समकालीन दलित साहित्य के मूल्यांकन का प्रश्न और कँवल भारती 97-148

3.1 दलित विमर्श की अर्थवत्ता : एक मूल्यांकन

3.2 दलित साहित्य के ज़मीन की तलाश

3.3 कँवल भारती : दलित कविता का मूल्यांकन

3.4 कँवल भारती : दलित आत्मालोचन

चतुर्थ अध्याय : दलित पत्रकारिता और कँवल भारती 149-198

4.1 दलित पत्रकारिता की उपलब्धियों की शिनाख़्त

4.1.1 हिंदी दलित पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

4.1.2 माझी जनता और कँवल भारती

4.1.2.1 माझी जनता : दलित पत्रकारिता का अर्थ एवं महत्त्व

4.1.2.2 माझी जनता : संपादकीय टिप्पणियाँ

4.1.2.3 माझी जनता : समाचार विश्लेषण

4.1.2.4 माझी जनता : साहित्य और विमर्श

4.2 बहुजन आंदोलन एक मूल्यांकन

4.2.1 कांशीराम

4.2.2 मायावती

4.3 दलित पत्रकारिता की सीमाओं का निर्देश

पंचम् अध्याय : कँवल भारती का वैचारिक साहित्य : मूल्यांकन 199-243

5.1 राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर

5.2 समाजवादी आंबेडकर

5.3 दलित धर्म की अवधारणा और बौध्द धर्म

5.3.1 दलित धर्म

5.3.2 बौद्ध धर्म

उपसंहार 244-253

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 254-262

परिशिष्ट 263-285

- साक्षात्कार
- शोध-आलेख
- शोध-प्रपत्र

प्रथम अध्याय

हिंदी आलोचना : मध्यकालीन काव्य पर पुनर्विचार

1.1 कबीर का पुनर्मूल्यांकन

'कबीर' पर हिंदी आलोचना में कई आलोचकों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। आज भी कबीर पर लिखा जा रहा है। समय के साथ-साथ कबीर और भी प्रासंगिक होते जा रहे हैं। पर वहीं जो लिखा गया क्या वह कबीर के सच को सामने ले आया है? हिंदी की आलोचना जिस कबीर को हम सबके सामने प्रस्तुत करती है, वह कई रूपों में है। जिसे हम, जितने आलोचक उतने कबीर या फिर अपने-अपने कबीर कह सकते हैं।

विमर्शों के इस दौर में दलित आलोचना ने भी कबीर पर लिखा है। विशेष रूप से कबीर पर लिखे हिंदी आलोचकों के नए रूप को दलित आलोचना सामने ले आती है। यहाँ दलित आलोचना के साथ-साथ, हिंदी के प्रमुख आलोचकों की कबीर को देखने-समझने एवं मूल्यांकन करने की दृष्टि को ध्यान में रखकर, पुनर्मूल्यांकन का प्रयास किया जाएगा। इस प्रयास में आलोचकों की दृष्टि में कबीर कैसे थे, क्या थे, इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं आदि प्रश्नों पर ध्यान देने की कोशिश की जाएगी।

एक बात यह भी है कि 'हिंदी आलोचना : मध्यकालीन काव्य पर पुनर्विचार' यह अध्याय आलोचकों के दृष्टिकोण का भी पुनर्मूल्यांकन है और कबीर के साथ-साथ रैदास को भी देखने-समझने का प्रयास। इस पूरे अध्याय के केंद्र में कँवल भारती की आलोचना है, जो कबीर एवं रैदास पर केंद्रित है। वह कबीर एवं रैदास के संबंध में क्या नया जोड़ती है, किन नए तथ्यों से हमें अवगत कराती है, वह कितने स्पष्ट हैं? इन प्रश्नों को ध्यान में रखकर मूल्यांकन करने की कोशिश इस अध्याय में की जाएगी। साथ ही दलित आलोचना के अंतर्विरोधों को भी सामने लाने का प्रयास इस अध्याय में किया जाएगा।

1.1.1 आ. रामचंद्र शुक्ल और कबीर

हिंदी साहित्य के इतिहास पर बात करनी हो या हिंदी आलोचना पर, इस नाम के बग़ैर पूरी बातचीत ही आधी-अधूरी एवं आधारहीन हो जाती है, वह नाम है - 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल'। यहाँ योगेंद्रनाथ मिश्र का कथन याद आता है जो रामचंद्र शुक्ल की विद्वता का परिचायक है। वे आ. शुक्ल के बारे में लिखते हैं- "आचार्य शुक्ल हिंदी के अप्रतिम साहित्य-चिंतक, आलोचक, निबंधकार और साहित्य के इतिहास लेखक के रूप में ख्यात हैं। वे कुशल अनुवादक भी थे। उन्होंने हिंदी सहित्य के विश्लेषण और मूल्यांकन के जो प्रतिमान स्थापित किए, उनके आगे आज तक कोई बढ़ नहीं पाया। उनके समर्थन या विरोध की दिशा में जाने वाले रास्ते उनसे होकर ही गुजरते हैं। उन्होंने जिसे जहाँ बिठा दिया, वहाँ से उसे अभी तक कोई ऊपर-नीचे नहीं कर सका है। कोशिश बहुतों ने की। हिंदी समीक्षा को वैज्ञानिक तथा प्रौढ़ स्वरूप देने वाले वे प्रथम समीक्षक हैं। वे हिंदी के सही मायने में आचार्य हैं।"[1]

नि:संदेह उन्हें हिंदी के आचार्यों में सर्वोच्च पद पर देखा जा सकता है। पर उनके साहित्य विषयक मूल्यांकन को पत्थर की लकीर नहीं माना जा सकता है। जिसे मान कर चलने से आ. शुक्ल का वैज्ञानिक रूप में मूल्यांकन होना न के बराबर है। आ. शुक्ल द्वारा मध्ययुगीन कवियों पर किया गया मूल्यांकन विशेषत: निर्गुण कवियों पर; वह आज विमर्श के दौर में पुनर्मूल्यांकन की माँग कर रहा है। कबीर के विशेष संदर्भ में इसे देखने की यहाँ कोशिश की जा रही है।

आ. शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में कबीर पर जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे भले ही संक्षिप्त हैं, पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। कबीर एवं उनकी कविता का मूल्यांकन कर, वे उन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में स्थान देते हैं। यह अपने-आप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। पर वह स्थान कबीर को क्या एक कवि के रूप में मिला है? इसका उत्तर 'नहीं' आता है।

---

[1] आ. रामचंद्र शुक्ल – त्रिवेणी, पृ. सं. 5 (भूमिका)

कबीर को पंथ प्रवर्तक के रूप में आ. शुक्ल देखते हैं। जिसके कारण कबीर की कविताओं का यथोचित मूल्यांकन कम ही मिलता है। आ. शुक्ल साहित्य के मूल्यांकन में शास्त्र पर जोर देते हैं। सुंदरदास के मूल्यांकन में इस बात को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि वे (आ. शुक्ल) किस प्रकार के काव्य के पक्षधर रहें हैं। वे लिखते हैं- "भक्ति और ज्ञानचर्चा के अतिरिक्त नीति और देशाचार आदि पर भी इन्होंने बड़े सुंदर पद कहे हैं। और संतों ने केवल गाने के पद और दोहे कहे हैं, पर इन्होंने सिद्धहस्त कवियों के समान बहुत-से कवित्त, सवैये रचे हैं। यों तो छोटे-मोटे इनके अनेक ग्रंथ हैं पर 'सुंदरविलाप' ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसमें कवित्त, सवैये ही अधिक हैं। इन कवित्त-सवैयों में- यमक, अनुप्रास और अर्थालंकार आदि की योजना बराबर मिलती है। इनकी रचना काव्य-पद्धति के अनुसार होने के कारण और संतों की रचना से भिन्न दिखाई पड़ती है। संत तो ये थे ही पर कवि भी थे।"[2] कबीर की कविता शास्त्र विरोधी कविता रही है। जिसके कारण कबीर की कविता को काव्य तथा उन्हें कवि की कोटि में आ. शुक्ल नहीं रखते हैं। जिसमें कबीर का अशिक्षित होना भी आ. शुक्ल को सहायक होता है। गुरु नानक एवं सुंदरदास का जब वे मूल्यांकन करते हैं, तब वे कबीर के पढ़े-लिखे न होने को बार-बार इंगित करते हुए दिखाई देते हैं।

कबीर की भाषा, शास्त्र पर चलने वाली भाषा नहीं थी, कहने का आशय यह है कि वे शास्त्र सम्मत भाषा के अनुरूप अपनी बात को कविता में अभिव्यक्त नहीं करते थे। वे स्वयं शास्त्र का खंडन करने वाले थे। उनके काव्य की भाषा लोक में प्रचलित आम बोलचाल की भाषा है। जिसका मूल्यांकन शास्त्र सम्मत व्याकरण के आधार पर करने से, वह मूल्यांकन उस कविता को न्याय नहीं दे पाता है और ना ही उसके मर्म तक पहुँच पाता है। कबीर की भाषा लोक की, जन की भाषा है। यह 'आँखिन देखी' को उजागर करनेवाली भाषा है। कबीर कहते हैं-

---

[2] आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 79

"मेरा-तेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की देखी॥"[3]

आ. रामचंद्र शुक्ल मूलत: काव्य के समीक्षक थे। नामवर सिंह की माने तो शुक्ल का जीवन-दर्शन अभिव्यक्तिवादी रहा है। जिसके कारण उन्होंने "काव्य को केवल व्यक्त जगत से सम्बद्ध माना और निर्णय दिया कि अव्यक्त सत्ता संबंधी काव्य नहीं हो सकता।"[4] ऐसे में कबीर के काव्य का विरोध नहीं होगा तो क्या होगा। कबीर की कविता में जहाँ आ. शुक्ल की माने तो – कठोरता एवं कर्कशता, टेढ़े-मेढ़े रूपकों का प्रयोग और खंडन-मंडन के साथ वाद-विवाद आदि बातें दिखाई देती हैं। ध्यान देने लायक बात यह है कि आ. शुक्ल शास्त्र की कसौटी पर कबीर की कविताओं को कसते हैं, जिससे उन्हें वे (कबीर) किसी भी रूप में कवि दिखाई नहीं देते हैं।

निर्गुणधारा का मूल्यांकन भी उनका स्थूल जान पड़ता है। उनके ये शब्द ध्यान देने लायक हैं। वे लिखते हैं- "'निर्गुण मार्ग' के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण कीं और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ीचक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्त्व की, कहीं पैगंबरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्विकता से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है।"[5] यहाँ शुक्ल जी निर्गुणधारा को कई वादों का मिलाजुला रूप मानते हैं। इस बात से वे कबीर को उसके इतिहास एवं परम्परा से ही अलगाते हैं। जो अवैदिक परम्परा

---

[3] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 247
[4] नामवर सिंह – हिंदी का गद्यपर्व, पृ. सं. 117
[5] आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 67

पर खड़ी है। इसका कारण हजारीप्रसाद द्विवेदी की माने तो शुक्ल जी का कबीर को अशिक्षित जुलाहा एवं उल्टी-सीधी अटपटी बानियों से साधारण जनता पर प्रभाव जमानेवाला मानने से रहा है।

निष्कर्ष रूप में जो बात कहनी है वह यह कि हिंदी साहित्य में कबीर की प्रतिभा एवं व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातों का नोटिस आ. शुक्ल लेते हैं, पर उन्हें साहित्य में जगह इसलिए देते प्रतीत होते हैं क्योंकि, "कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था।"[6] कबीर के प्रति आ. शुक्ल का मूल्यांकन अपूर्ण ही रहा है। जिसके पीछे वह भय रहा है जिसे नामवर सिंह रेखांकित करते हैं- "उन्होंने जायसी को ढाल बनाकर कबीर को इसलिए ठुकरा दिया कि कबीर को अपनाने से वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा को धक्का लगने का भय था।"[7] वहीं शुक्ल जी के कबीर संबंधी चिंतन का रवैये संक्षिप्त शब्दों में कहें तो, "कबीर का मान घटाने और विरोध करने का रवैया"[8] दिखाई देता है।

1.1.2 आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी और कबीर

कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समग्र रूप में अध्ययन कर 'कबीर' नामक आलोचना की किताब आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य में ले आए। इस किताब के बारे में कहा जाता है कि 'यह किताब कबीर के संपूर्ण व्यक्तित्व का सम्यक मूल्यांकन करती है।'

आ. रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं या कसौटियों पर कबीर, एक कवि के रूप में खरे नहीं उतरते हैं। कबीर को वे पंथ-प्रवर्तक, अटपटी वाणी में अशिक्षित लोगों पर प्रभाव जमाने

[6] आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 64
[7] नामवर सिंह – हिंदी का गद्यपर्व, पृ. सं. 117
[8] संपा. राजकिशोर - कबीर की खोज, वीर भारत तलवार - दलित आलोचना की कसौटी (लेख), पृ. सं. 166

वाला, टेढ़े-मेढ़े रूपकों का प्रयोग करने वाला तो मानते हैं पर उनकी कविता को कविता नहीं मानते ना ही कबीर को कवि मानते हैं।

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पहली बार हिंदी में कबीर को लेखक (व्यंग्यकार) के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। नामवर सिंह की बातों को उधार लेकर कहा जा सकता है कि – "हिंदी में द्विवेदी जी पहले आदमी हैं जिन्होंने यह घोषणा करने का साहस किया कि 'हिंदी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर-जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंद्वी जानता है : तुलसीदास।' यदि हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'कबीरदास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे।' तो 'कबीर' के हजारीप्रसाद में भी यह साहस कम नहीं है।"[9]

यहाँ आ. रामचंद्र शुक्ल के संदर्भ में उनकी मान्यताओं एवं स्थापनाओं का आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अस्वीकार कर, नई मान्यताओं और स्थापनाओं को निर्मित किया है। यह अस्वीकार का साहस उनकी 'कबीर' नामक किताब में भली-भाँति देखा जा सकता है। आ. शुक्ल अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' एवं 'त्रिवेणी' में कबीर को जायसी, सूर, तुलसी के समकक्ष नहीं मानते हैं और कवियों में सबसे ऊपर तुलसी को स्थान देते हैं। वहीं उपर्युक्त कथन में नामवर सिंह की माने तो यह देखा जा सकता है कि आ. द्विवेदी 'तुलसी' के समकक्ष 'कबीर' को खड़ा करते हैं।

आलोचना की परम्परा में हजारीप्रसाद द्विवेदी किस रूप में कबीर का मूल्यांकन करते हैं और वह मूल्यांकन कबीर के किस रूप को सामने लाता है यह देखा जाना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा। आ. द्विवेदी कबीर के जुलाहा-वंश का अन्वेषण करते हैं। वे पाते हैं "नाथ-मतावलंबी गृहस्थ योगियों की एक बहुत बड़ी जाति थी, जो न हिंदू थी और न मुसलमान।...कबीरदास

[9] www.hindisamay.com/content/3105/1/नामवर-सिंह-आलोचना-अस्वीकार-का-साहस.cspx

जिस जुलाहा-वंश में पालित हुए थे वह उसी प्रकार के नाथ-मतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।"[10]

यहाँ आ. द्विवेदी यह बात मानते हैं कि कबीर जुलाहा-वंश में पालित हुए न कि उस वंश में उनका जन्म हुआ। वे मानते हैं कि, जो ब्राह्मणों से असंतुष्ट थी और वर्णाश्रम के नियमों की कायल नहीं थी। ऐसे नाथपंथी योगी गृहस्थों का मुसलमानी रूप कबीर की जुलाहा जाति का है। प्रकारांतर से द्विवेदी जी कबीर के पालन-पोषण के बारे में जो प्रवाद है, उसी के पक्ष में दिखाई देते हैं। जो इस प्रकार है- "काशी में स्वामी रामानंद का एक भक्त ब्राह्मण था जिसकी किसी विधवा कन्या को स्वामी जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी। उली या नीरु नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पालने लगा। यही बालक आगे कबीरदास हुआ।"[11]

कबीर का मुसलमान परिवार में पालन-पोषण हुआ इस बात तक आ. द्विवेदी सहमत हैं साथ ही वे कबीर को नाथपंथी सिद्ध योगियों से प्रभावित भी मानते हैं। इस बात को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में वे उदधृत भी करते हैं। वे लिखते हैं कि – "कबीरदास ने भी पोथी, पढ़-पढ़ कर मरने वाले और फिर भी राम को न जान सकने वाले ज्ञान-मूढ़ों की कुछ ऐसी ही खिल्ली उड़ाई है। कबीरदास का स्वर बिलकुल इन योगियों से मिलता-जुलता है। योगियों के पूर्ववर्ती सहजयानी साधकों में भी यह बात पाई जाती है और टटोला जाए तो यह परंपरा बहुत पुरानी प्रतीत होगी।"[12] आगे वे इस बात को अस्वीकार कर जाते हैं कि सूफियों के प्रेमतत्त्व का प्रभाव कबीर पर है। वे लिखते हैं – "जो लोग कबीरदास की इस प्रकार की उक्तियों को विदेशी साधकों से प्रभावित बताते हैं वे न जाने क्या सोचते रहते हैं...। कबीर ने जब कहा था

[10] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 21
[11] आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 71
[12] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 39

कि पोथी पढ़-पढ़ कर सारा संसार मर गया मगर पंडित कोई नहीं हुआ, केवल प्रियतम को मिलनेवाला, एक ही अक्षर पढ़नेवाला पंडित हो जाता है; तो वे गोरखपंथी योगमार्गियों के ही स्वर में बोल रहे थे।"[13] आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि नाथपंथ में स्मार्त आचारों का कोई महत्त्व नहीं, हिंदू-धर्म के बिलकुल विरुद्ध नाथपंथ खड़ा है। वे उदाहरण देते हैं – "लोग आचार-आचार कहा करते हैं। भला यह आचार अत्याचार होकर कैसे निभाता है? भोजन में जो घी देते हो तो वह चर्म-भाग से ही आता है। चलते समय जो पैर में जूता देते हो, वह भी तो चमड़े का ही है...।(गो.सि.सं.पृ.60-61) ... क्या ये युक्तियाँ कबीरदास की युक्तियों की भाँति ही चकनाचुर कर देनेवाली नहीं हैं? फिर बड़े नामी-गरामी पंडित किस मुँह से कहा करते हैं कि भारतवर्ष में कबीरदास के पहले ऐसी युक्तियाँ अपरिचित थीं और कबीरदास में जो इस प्रकार की युक्तियाँ मिलती हैं वे विदेशी प्रभाव के कारण?"[14]

यहाँ इन उदाहरणों से इस बात का पता चलता है कि आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर को सिर्फ़ नाथपंथी सिद्ध योगियों से प्रभावित मानते हैं। इसके बरक्स पुरुषोत्तम अग्रवाल की बात याद आती है, जो इसे और पुख़्ता करती है, वह यह है कि – "'कबीर' पढ़ते तो भी 'देख' पाते कि द्विवेदी जी कबीर का ब्राह्मणीकरण नहीं, नाथीकरण (चूँकि द्विवेदी जी ही नहीं, सभी इतिहासकार नाथों को महायान बौद्ध परम्परा के लोकप्रिय रूप से विकसित मानते हैं, इसलिए असल में बौद्धीकरण) कर रहे थे।"[15]

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल की बात से पूर्णतः सहमत या असहमत नहीं हुआ जा सकता है। आ. द्विवेदी, कबीर को रामानंद का शिष्य मानते हैं, उसका आधार 'वे सभी परंपराएँ जो इस बात का समर्थन करती हैं कि कबीर और रामानंद का संबंध था' को मानते हैं। वे लिखते हैं कि, "सभी परंपराएँ इस बात का समर्थन करती हैं कि कबीरदास का रामानंद के साथ संबंध

[13] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 39
[14] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 43
[15] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 206

था। कबीरदास ने स्वयं स्वीकार किया है रामानंद ने उन्हें चेताया था, पर क्या चेताया था और स्वयं क्या चेते हुए थे इस विषय में नाना मुनियों के नाना मत हैं।"[16] यहाँ इस प्रश्न को सुलझाने के बजाय आ. द्विवेदी उसे गौण बनाकर छोड़ देते हैं। वे लिखते हैं, "अनन्य भक्ति ही मोक्ष का अव्यवहित उपाय है प्रपत्ति या शरणागति ही मोक्ष का परम साधन है।... ऐसी हालत में यह प्रश्न बहुत कुछ गौण हो जाता है कि कबीर ने जो कुछ रामानंद से चेता था वह रामानंद के चेते हुए ज्ञान का कौन-सा रूप है।"[17] यहाँ वे (आ. द्विवेदी) कबीर को नाथ-योगियों की परम्परा से दूर कर देते हैं और कबीर का संबंध रामानंद से जोड़कर देते हैं। और तुरंत यह बात सिद्ध करने में लग जाते हैं कि कबीर-रामानंद का संबंध था और वे भक्त थे। वे लिखते हैं – "रामानंद के प्रधान उपदेश अनन्य भक्ति को कबीर ने शिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकि तत्त्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, छवि और शिक्षा के अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था।"[18] इस उद्धरण पर डॉ. धर्मवीर की टिप्पणी काफ़ी महत्त्वपूर्ण है, वे कहते हैं- "इस कथन में अचरज की बात है कि डॉ. द्विवेदी मूल प्रश्न को गौण बना कर छोड़ देते हैं। जो असली समस्या है, जिसके कारण कबीर अस्पृश्य कहे गए थे, उसे गौण मान कर ऊल-जलूल जनश्रुतियों को प्रश्रय दिया जा रहा है और कबीर को मात्र भक्त कहने की कोशिश है।"[19]

आ. द्विवेदी इस बात पर जो देर रहे हैं कि विद्यार्थी इस बात को माने कि, कबीर और सिद्धों की परम्परा अलग है। वे लिखते हैं कि – "कबीरदास को अक्खड़ सिद्धों और योगियों की परंपरा से अलग कर देता है। कबीर के विद्यार्थी के लिए इसका महत्त्व है।"[20] यहाँ डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल की बात 'द्विवेदी जी कबीर का नाथीकरण कर रहे थे' स्वयं ख़ारिज हो जाती है।

[16] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 43
[17] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 85
[18] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 85
[19] डॉ. धर्मवीर – कबीर : बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, पृ.सं. 149
[20] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 85

बहरहाल, आ. द्विवेदी आगे कबीर को पुराण-विरोधी भी मानने में सकुचाते हुए दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं - "कबीरदास के उन पदों का जिनमें उन्होंने बारंबार 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कर मरम है जाना।' जैसी बातें कहकर पुराण प्रतिपादित सगुण ब्रह्म का प्रत्याख्यान करना चाहा है। क्या ऐसा अर्थ भी लगाया जा सकता है कि मुँह से विरोध करते रहने पर भी कबीरदास असल में पुराण-विरोधी नहीं थे।"[21]

'कबीरदास असल में पुराण-विरोधी नहीं थे' यह बात स्वीकार करने से कबीर भक्त बने रहेंगे जिससे उनके दूसरे रूप पर पर्दा पड़ा रहेगा जो हिंदू-मुस्लिम धर्म के आडम्बरों के प्रति विद्रोही है एवं उनकी वह वाणी जिसमें समतामूलक समाज की माँग है हाशिए पर चली जाएगी। आ. द्विवेदी का कबीर के मूल्यांकन में यही रूप दिखाई देता है जो सिर्फ़ कबीर के आध्यात्मिक वाणियों का मूल्यांकन करता है।

कबीर के कठोर एवं आक्रामक रूप को आ. द्विवेदी प्रश्रय नहीं देते हैं, देते हैं तो सिर्फ़ कबीर के भक्त रूप को। कबीर एवं उनकी भक्ति को वे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं – "कबीर ज्ञान के हाथी पर चढ़े हुए थे, पर सहज का ढुलीचा डाले बिना नहीं, भक्ति के मंदिर में प्रविष्ट हुए थे, पर खाला का घर समझकर नहीं, बाह्याचार का खंडन किया था, पर निरुद्देश्य आक्रमण की मंशा से नहीं.... सर्वत्र उन्होंने एक समता (बैलेंस) रखी थी। केवल कुछ थोड़े-से विषयों में वे समता खो गए थे।"[22] यहाँ 'केवल कुछ थोड़े-से विषयों में वे समता खो गए थे' इस पंक्ति पर ध्यान देना आवश्यक जान पड़ता है। वे कौन-सी बातें थी या विषय थे जहाँ वे अपनी समता खो बैठे, यह सोचने का विषय है। आगे द्विवेदी लिखते हैं, "अकारण सामाजिक उच्च-नीच मर्यादा के समर्थकों को वे भी क्षमा नहीं कर सके, भगवान के नाम पर पाखंड रचनेवालों को उन्होंने कभी छूट नहीं दी, दूसरों को गुमराह करने वालों को उन्होंने कभी तह

[21] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 98
[22] हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं. 135

देना उचित नहीं समझा। ऐसे अवसरों पर वे उग्र थे, कठोर थे और आक्रामक थे।"[23] तत्क्षण उद्धृत इन पंक्तियों का यह अर्थ तो नहीं कि सामाजिक जड़ता पर प्रहार करने वाले कबीर जब सामाजिक कुरीतियों, बाह्याचार पर प्रहार करते हैं, तब क्या इन्हीं विषयों पर कबीर ने समता (बैलेंस) खो दी? कहीं ऐसा तो आ. द्विवेदी का मानना नहीं? इन प्रश्नों का उत्तर मिलता है इन पंक्तियों से जब कबीर के मूल्यांकन में वे लिखते हैं- "कबीर धर्मगुरु थे। इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही अस्वाद्य होना चाहिए, परंतु विद्वानों ने नाना रूपों में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया।"[24] यहाँ आ. द्विवेदी सामाजिक उत्थान के लिए संघर्षरत कबीर के रूप की अनदेखी करते हैं और जवाब अप्रत्यक्ष रूप में दे जाते हैं कि कबीर जब सामाजिक कुरीतियों, बाह्याचार पर प्रहार करते हैं तभी अपनी समता (बैलेंस) खो देते हैं। कबीर के इसी रूप को हाशिए पर डालकर आ. द्विवेदी उन्हें आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रखने एवं महत्त्वपूर्ण मानने के प्रयास में दिखाई देते हैं।

कबीर की भाषा का मूल्यांकन करते हुए आ. द्विवेदी कहते हैं कि, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नज़र आती है।"[25] प्रकारांतर से आ. द्विवेदी आ. शुक्ल से कोई अलग या नई बात नहीं कह रहे हैं। आ. शुक्ल लिखते हैं, "यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे पर उसकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।"[26] यहाँ हम देख सकते हैं आ. द्विवेदी ने इसी बात को प्रकारांतर से और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा है- "सच पूछा जाए तो आज तक हिंदी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। ...व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठों में हँस

---

[23] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. 135
[24] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. 170
[25] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. 170
[26] रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 73

रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।"[27] यहाँ दोनों आचार्यों का कबीर की भाषा पर जो मूल्यांकन है समान है। यहाँ डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल की एक बात ध्यान देने योग्य है, वे कहते हैं कि, "शुक्ल जी की अश्रद्धा और द्विवेदी जी की श्रद्धा दोनों ही कबीर के समय की विशेषता और उनकी कविता के मर्म की उपेक्षा करती है।"[28]

आ. द्विवेदी का कबीर विषयक मूल्यांकन जुलाहे जाति के उद्भव विकास, सिद्ध नाथ योगियों की साधना पद्धति से होते हुए वैष्णव भक्ति तक आकर कबीर को रामानंद का शिष्य बनाता है। साथ ही कबीर को एक व्यंग्य-लेखक के रूप में स्थापित करता है। लेकिन इस मूल्यांकन में कबीर का वह रूप जो सामाजिक-धार्मिक बुराईयों, जातिगत-कुलगत विषमताओं एवं बाह्य-आड्म्बरों के दुरूह दुर्गों को नेस्तनाबूद करता है अदृश्य ही रहा। 'कबीर' नामक किताब में आध्यात्मिक रस में भिगा हुआ भक्त कबीर और उस आध्यात्मिक रस में डुबी हुई उनकी वाणियों एवं कुसुमादपि कोमल उनका रूप सामने आता तो है लेकिन वज्रादपि कठोराणी एवं आक्रामक समतामूलक समाज की नींव रखने वाला सृजनकर्ता रूप नहीं।

1.1.3 डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल और कबीर

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल की 'अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय' यह किताब कबीर, उनकी कविता एवं उनके समय के पुनर्मूल्यांकन पर लिखी गयी किताब है। नामवर सिंह इस किताब के बारे में कहते हैं– "पुरुषोत्तम को हजारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान मिला है, लेकिन उनकी किताब का प्रस्थान पंडित जी की किताब के प्रस्थान से सर्वथा भिन्न है... सैकड़ों किताबें कबीर पर लिखी गई हैं, लेकिन मुझसे कोई पूछे तो दो ही

[27] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. 131
[28] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 158

किताबों का नाम लूँगा– पंडित जी की ‘कबीर’ और पुरुषोत्तम की ‘अकथ कहानी प्रेम की’।”[29] इस उद्धरण में ‘प्रस्थान से सर्वथा भिन्न’ इसके आशय को स्वयं अग्रवाल जी स्पष्ट करते हैं और लिखते हैं– “‘भिन्न प्रस्थान’ से उनका आशय मुख्यतः भक्ति को भागीदारी के रूप में परिभाषित करने और कबीर के कवित्व पर दिए गए बल से था।”[30] इस उद्धरण से हम देख सकते हैं कि क्यूँ आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की किताब ‘कबीर’ से ‘अकथ कहानी प्रेम की’ विशेष है। यह किताब ‘भक्ति’ को भागीदारी के रूप में परिभाषित करती है और कबीर को ‘कवि कबीर’ में स्थापित करने के लिए बल देती है।

‘अकथ कहानी प्रेम की’ यह दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में कबीर के समय को जानने-समझने-विश्लेषित करने का प्रयास है। दूसरे भाग में कबीर की कविता का मूल्यांकन है। पहले भाग में ‘देशज आधुनिकता’, ‘औपनिवेशिक आधुनिकता’ और ‘औपनिवेशिक ज्ञानकांड’ आदि बातों से परिचय प्राप्त होता है। अग्रवाल पहले भाग में कुछ स्थापनाएँ देते हैं उसके पश्चात् कबीर का मूल्यांकन करते हैं। इन स्थापनाओं को देखा जाना काफ़ी महत्त्वपूर्ण होगा। वे यह स्थापना देते हैं कि– “औपनिवेशिक आधुनिकता को श्रेय जाता है देशज आधुनिकता को अवरुद्ध करने का, वर्णाश्रम में नस्लवाद को जोड़ देने का, मनु के धर्मशास्त्र को एकमात्र धर्मशास्त्र बना देने का, मनुवाद की पुनः प्रतिष्ठा करने का, वाद-विवाद से भरपूर उस समय को स्तब्ध मनोवृत्ति के जड़ समय के रूप में पेश करने का। चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी से आरंभ हुई आधुनिकता को केवल यूरोप की विशेषता बताते हुए, उसी समय के भारत को ‘मध्यकालीन’ बनाने का।”[31]

एक स्थापना यह भी रही कि, कबीर व्यापारियों और दस्तकारों की आकांक्षाओं की आवाज़ बन चुके थे। आरंभिक आधुनिक काल के भक्ति आंदोलन और भक्ति-लोकवृत्त में

---

[29] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. xix(दूसरे संस्करण की भूमिका से)
[30] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. xix(वही)
[31] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं.79

बनियों-व्यापारियों द्वारा निभाई गयी भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते हैं- डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल। वे लिखते हैं– "दसवीं सदी से व्यापार का जो पुनरोदय हो रहा था, कबीर के समय तक वह काफ़ी आगे बढ़ चुका था। व्यापारियों, दस्तकारों की आर्थिक ताक़त और सामाजिक हैसियत बढ़ रही थी। नगर विकसित हो रहे थे, भक्ति का लोकवृत्त प्रभावी भूमिका निभा रहा था। कबीर और उनके जैसे अन्यों के आत्मविश्वास का संरचनात्मक कारण यही था कि चंद ब्राह्मण और मौलवी जो भी कहते रहें, कबीर जैसे लोग इस वक्त हाशिए की आवाज़ नहीं, समाज के महत्त्वपूर्ण तबकों-व्यापारियों और दस्तकारों की आकांक्षाओं की आवाज़ बन चुके थे।"[32] देखा जाए तो वे किताब में समय-समय पर कबीर में दस्तकार-व्यापारियों की आकांक्षा का स्वर दिखाने एवं स्पष्ट करने की कोशिश भी करते हैं। भारत में वैचारिक जड़ता के विरोध में उठनेवाले स्वरों का संरक्षण और समर्थन करने वाले व्यापारियों-दस्तकारों के महत्त्व को प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं- "...आरम्भिक आधुनिक काल में ब्राह्मणवादी विचारधारा का सक्रिय प्रतिरोध करनेवाले अध्यात्म-पंथ की स्थापना जवाहरात व्यापारी बनारसीदास ने ही की थी, और कबीर-पंथ की स्थापना 'धनी' धर्मदास ने। कबीर ने तो अपने 'सांई' को ही बनिया कहा था- सांई मेरा बांणियां सहजि करै ब्यौपार।"[33]

व्यापारियों एवं दस्तकारों की भक्ति-आंदोलन में जो भूमिका रही उसे उद्धृत करते हुए अग्रवाल जी भक्ति-आंदोलन का सबसे ज़्यादा श्रेय व्यापारियों एवं दस्तकारों की झोली में डालते हुए दिखाई देते हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि यहाँ भारतीय जड़ता पर प्रहार करनेवाले स्वरों की अपेक्षा तथा उसके संरक्षण एवं समर्थक वर्ग को महत्त्वपूर्ण एवं भक्ति आंदोलन के नायक की भूमिका में दिखाने का प्रयास दिखाई देता है।

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल यह मानते हैं कि– 'जिस मनुस्मृति को देशज आधुनिकता कब की पीछे छोड़ चुकी थी उसे 'हिंदू विधि-निर्माण' ने केंद्रीयता प्रदान की।' कहने का तात्पर्य

[32] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 73
[33] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 99

उनका यह रहा कि विकसित परम्परा को फिर से जड़ बनाने की कोशिश औपनिवेशिकता या अंग्रेजों ने की है। उन्हीं के शब्दों में कहा जाए तो, "1794 को मनुवाद के पुनर्जन्म का वर्ष माना जा सकता है। इसके पहले, मनुस्मृति बीस में से बस एक स्मृति थी। निश्चय ही थोड़ी अधिक महत्त्वपूर्ण, लेकिन अंतिम रूप से निर्णायक और हर स्थिति में, हर स्थान पर बाध्यकारी कदापि नहीं। 1794 में अंग्रेज बहादुर द्वारा कराए गए 'हिंदू विधि निर्माण' ने मनुस्मृति को वह केंद्रीयता प्रदान की, जो उसे आरम्भिक आधुनिक काल में तो क्या, हिंदू चिंतन के इतिहास में कभी भी हासिल नहीं थी।"[34]

यहाँ अग्रवाल जी एकांगी दिखाई देते हैं। अंग्रेजों के पहले से ही यहाँ 'जाति' एवं जातिभेद को शास्त्रबद्ध करने वाली 'मनुस्मृति' कई सालों से समाज पर हावी थी और चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी में भी। इस बात का प्रमाण स्वयं रामानंद के सामाजिक स्तर पर उनसे किया जाने वाला व्यवहार ही है। 'जाति', जातिभेद का बीज ब्राह्मणवाद ने बोया और उसके ज़्यादा या कम असर को 1794 में कराए गए कार्य से आँकना ज़्यादा समीचीन दिखाई नहीं पड़ता है। 14वीं, 15वीं सदी में जाति का प्रभाव समाज पर किस तरह था स्वयं रामानंद समाज में जाति-भेदभाव का किस तरह पालन करते हैं, आ. रामचंद्र शुक्ल इस पर लिखते हैं- "रामानंद जी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रय की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न-भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया। भगवद्भक्ति में वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र में शास्त्रमर्यादा इन्हें मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबंध ये नहीं मानते थे।..."[35] यहाँ भली-भाँति देखा जा सकता है कि सिर्फ़ उपासना के क्षेत्र में सब जाति के लोगों को समान माना गया है। अन्य क्षेत्रों में निम्न समझी जानेवाली जातियों का प्रवेश वर्जित ही रखा जाता था। कबीर का समय ही नहीं बल्कि आज भी जातिगत

[34] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 77
[35] आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 101

भेदभाव का शिकार दलित समाज होता रहता है। उदाहरण स्वरूप, 20वीं सदी में हुए जातिगत भेदभाव के शिकार, डॉ. आंबेडकर को देख सकते हैं। यही कारण है कि जाति-उन्मूलन के लिए दोनों (कबीर, आंबेडकर) ने ही अपने-अपने समय में संघर्ष कर मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा के लिए प्रयास किये हैं–“जाति न पूछो साधो की, पूछ लीजिए ज्ञान। मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान ।।”[36] इसलिए सिर्फ़ सन् 1794 को केंद्र में रखकर समाज की जड़ता पर पर्दा नहीं डाला जा सकता है। और यह कहना ‘आरम्भिक आधुनिक काल में तो क्या, हिंदू चिंतन के इतिहास में कभी भी हासिल नहीं थी’ अतार्किकता की पराकाष्ठा है।

डॉ. अग्रवाल के इस कथन से कि ‘उस समय व्यापारियों एवं बनियों की आकांक्षाओं की आवाज़ कबीर बन चुके थे’ सहमत होना काफ़ी मुश्किल लगता है। कबीर के इन पदों को देखा जाना महत्त्वपूर्ण है–

“मन बनियाँ बनिज न छौडै ।।टेक।।
जनम जनम का मारा बनियाँ, अजहूँ पूरा न तौलै ।
पासँग कै अधिकारी लै लै, भूला भला डोलै ।।1।।
घर में दुबिधा कुमति बनी है, पल पल में चित तोरै ।
कुनबा वाके सकल हरामी, अमृत में विष घोरै ।।2।।”[37]

यहाँ मनुष्य मन की तुलना कबीर, बनियों से करते हैं और वे दोनों उनकी दृष्टि में कैसे हैं, उपर्युक्त बात से समझा जा सकता है। यहाँ ‘उस समय व्यापारियों एवं बनियों की आकांक्षाओं की आवाज़ कबीर बन चुके थे’ यह अग्रवाल जी की बात निरस्त हो जाती है।

डॉ. अग्रवाल इन बातों को असत्य मानते हैं – रामानंद को 14वीं सदी का मानना, कबीर को जुलाहे के घर में पालित मानना, कबीर को धर्मगुरु मानना। और इन बातों की समीक्षा करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि रामानंद को 14वीं सदी से 15वीं

[36] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 247
[37] कबीर साहब की शब्दावली (भाग-1), बेलवीडियर प्रिंटिग वर्क्स, इलाहबाद, पृ. सं. 27

सदी का सिद्ध करना है और इसके पीछे के कारणों को सामने लाना है। देख सकते हैं, ब्राह्मण सर्वोच्चता, ऊँच-नीच एवं आचार-विचार में रूढ़िवादी रामानुज का श्रीसंप्रदाय था, इससे रामानंद को अलगाने के लिए रामानंदियों ने आन्दोलन चलाया था। इस आंदोलन से हुआ यह कि, "रामानुजियों से दु:खी कुछ रामानंदियों ने बीसवीं सदी में बाकायदा आन्दोलन चलाकर रामानुजी परम्परा से अपने संप्रदाय को ही नहीं, स्वयं रामानंद को भी काट दिया। इस आन्दोलन के दौरान ही रामानंद का समय पंद्रहवीं की बजाय चौदहवीं सदी 'सिद्ध' किया गया। रामानंद को 'शास्त्र सिद्ध' बल्कि भाष्यकार आचार्य 'प्रमाणित' करने वाले 'साक्ष्य' उत्पन्न किये गए।"[38]

डॉ. श्यामसुंदर दास से लेकर आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी तक की आलोचना की परम्परा ने कबीर को जुलाहे परिवार में पालित माना है। यहाँ अग्रवाल जी अलग दिखाई देते हैं, वे कबीर को जुलाहे परिवार में पालित नहीं मानते हैं। वे कबीर का जन्म ही जुलाहे परिवार में हुआ एवं उनके माता-पिता के रूप में नीरू-नीमा को मानते हैं। वे एक जगह लिखते हैं- "जुलाहे के घर में जन्मे कबीर, नीरू-नीमा के मेधावी पुत्र कबीर अपनी खोज-यात्रा में शाक्त, नाथपंथी और सूफी साधनाओं से गुजरकर 'भगति नारदी' में मगन होने की व्यवस्था तक पहुँचे थे।"[39] पर जो पालित एवं जन्म के बारे में प्रवाद था, कबीर के संदर्भ में उसके तह तक अग्रवाल जी जाने का प्रयास करते नहीं दिखाई देते हैं।

कबीर के समकालीन रामानंद थे एवं वे कबीर के गुरु थे इस बात को अग्रवाल जी लिखते हैं और साथ में यह भी लिखते हैं कि, 'कबीर वैष्णव थे और उनकी पहचान वैष्णव की ही थी।' उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है - "शाक्त-साधना कबीर की जिज्ञासा का आरम्भ या एक पड़ाव ही हो सकती थी, परिणति नहीं। वहां से शुरू करके वे नाथों, सूफियों के रास्ते से भी गुजरे और आख़िरकार जो पहचान उनके साथ चली,

---

[38] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 236
[39] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 176

जिसे उन्होंने खुद भी अपनाया, वह वैष्णव की ही थी। जाति-कुल-संप्रदाय निरपेक्ष वैष्णवता के साथ कबीर का विशेष सम्बन्ध वे स्वयं भी स्वीकार करते थे, और दूसरे भी।"[40]

ऐसा लगता है, यहाँ अग्रवाल जी जोर देकर यह कहना चाहते हैं कि कबीर की पहचान 'वैष्णव की ही थी', रामचंद्र शुक्ल से लेकर हजारीप्रसाद द्विवेदी तक जो अस्पष्ट रूप में कबीर को वैष्णव मानने की चेष्टा दिखाई देती है यहाँ स्पष्ट रूप में अग्रवाल जी सिद्ध करने के प्रयास में दिखाई देते हैं।

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल उस कबीर का मूल्यांकन करते हैं, जहाँ वे स्त्री रूप में अपने प्रियतम को पुकारते हैं। स्त्री रूप में प्रेमाभिव्यक्ति करते कबीर एवं उनकी कविता ही अग्रवाल जी के मूल्यांकन का केंद्र बिंदु दिखाई देती है। अतः केंद्र में कबीर की वे सारी कविताएँ आ जाती हैं जिनमें नारी रूप में प्रेमाभिव्यक्ति करते कबीर हैं। इस स्त्री रूपी कबीर के इर्द-गिर्द जितनी भी बेड़ियाँ पुरुषवादी मानसिकता एवं सत्ता ने बिछाई है, वे सारी टूटती हुई नज़र आती हैं। अग्रवाल जी ऐसे ही कबीर को पाठकों के सामने लाते हैं। कबीर का यह रूप अनोखा है जहाँ पुरुषसत्ता की बेड़ियों के परे अपने स्वाधीन तन, मन की अभिव्यक्ति करते स्वयं स्त्री रूप में कबीर हैं-

"बाल्हा आव हमारे गेहु रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोकौ इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूँ कामी कौ काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कूं नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।

[40] पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं. 186

ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे ।।307।।"[41]

कबीर के मूल्यांकन में जो बात अग्रवाल जी कहना चाहते हैं लगता है, वह बात पाठक एवं समाज के लिए संदेश है। वे कहते हैं- "ज़रूरत 'साधनात्मक स्त्रीत्व' को सामाजिक स्त्री-विमर्श तक ले जाने की है जो काम कबीर का समय नहीं कर सका; ज़रूरी नहीं कि हमारा समय न कर सके।"[42]

कबीर के संदर्भ में, डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल के मूल्यांकन की अपनी सीमाएँ भी हैं – प्रेम एवं मृत्यु पर कबीर की अभिव्यक्ति का मूल्यांकन कर ही अग्रवाल जी कबीर को कवि मानते हैं। यहाँ भी वे कविताएँ मुख्य केंद्रबिंदु बन जाती हैं जहाँ कबीर स्त्री रूप में प्रेमाभिव्यक्ति करते हैं। डॉ. अग्रवाल कबीर की उन कविताओं का मूल्यांकन करते हैं, जिसे आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी 'कबीर' नामक किताब में लिखते हैं- "उनकी (कबीर) वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए।"[43] अग्रवाल जी ने कबीर के उस रूप पर बात नहीं की जहाँ वे एक समतामूलक समाज-व्यवस्था की बात करते हैं। जहाँ धर्म, जाति, लिंग आदि से ऊपर उठाकर मनुष्य के गुणों पर उसका मूल्यांकन होता हो। जहाँ मूलतः सामाजिक समानता के लिए आग्रह है।

निष्कर्षतः हिंदी आलोचना की परम्परा में कबीर कहीं कवि नहीं बने ना ही उन्हें कवि माना गया, पर इसी आलोचना की परम्परा में पुरुषोत्तम अग्रवाल कबीर के कवि रूप को उजागर करते हैं। कबीर की कविताओं के संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि "वह प्रेमाभिव्यक्ति के धरातल पर नारी की कविता है– नारी के बारे में कविता नहीं।"[44] और उनकी आलोचना 'प्रेमाभिव्यक्ति के धरातल पर जो नारी की कविता' है इसी का मूल्यांकन कहा जा सकता है।

---

[41] सम्पा. डॉ. श्यामसुंदर दास – कबीर ग्रंथावली, पृ. सं. 144

[42] पुरुषोत्तम अग्रवाल - अकथ कहानी प्रेम की, पृ. सं. 391

[43] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 170

[44] पुरुषोत्तम अग्रवाल - अकथ कहानी प्रेम की, पृ. सं. 368

1.1.4 डॉ. धर्मवीर और कबीर

कबीर से संबंधित आलोचना की परम्परा में दो धाराओं को देखा जा सकता है। एक – मुख्यधारा (हिंदी आलोचना), दो- हाशिए की धारा (दलित आलोचना)। मुख्यधारा में पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डॉ.श्यामसुंदर दास, आ. रामचंद्र शुक्ल, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल तक को देखा जा सकता है। इस मुख्यधारा की आलोचना में एक बात महत्त्वपूर्ण यह है कि इसमें कबीर वैष्णव हैं एवं उनके गुरु रामानंद हैं। दूसरी धारा जो कि दलित आलोचना की है, जिसमें डॉ. धर्मवीर एवं कँवल भारती ये दो नाम प्रमुख रूप से आते हैं।

यहाँ डॉ. धर्मवीर की आलोचना दृष्टि में कबीर को समझने का प्रयास किया जाएगा। हिंदी दलित साहित्य की लड़ाई मुख्यत: अस्तित्व से जुड़ी लड़ाई है। इस बात को समझने के लिए इतिहास में घटित उन संघर्षों को समझना होगा जो वैदिक-अवैदिक परम्पराओं के बीच में हुआ था। यहाँ डॉ. मैनेजर पाण्डेय की बात को उद्धृत करना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा, एक – "चार्वाक और बौद्ध परम्परा का जो उग्र विरोध वैदिक पौराणिक परम्परा द्वारा हुआ, उसका एक परिणाम यह हुआ कि उनकी अधिकांश रचनाएँ भारतीय समाज से गायब हो गईं।"[45] यह देखा जा सकता है कि अवैदिक परम्परा ने इस संघर्ष में क्या खोया है। यह संघर्ष कबीर के समय तक चलता रहा है। जिसके शिकार कबीर भी हुए हैं, इस बात को डॉ. मैनेजर पाण्डेय रेखांकित करते हैं। वैदिक परम्परा के इस उग्र विरोध की पूरी प्रकिया को वे विरोध, विकृति और समाहार की सर्वग्रासी प्रक्रिया का नाम देते हैं।

कबीर संबंधी विकृतिकरण को ओम पी. गुप्ता भी रेखांकित करते हैं। जिसका आधार रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा का यह विचार है- "उदारवादी तथा गहन सहानुभूति की भावना रखने वाले वैष्णवपंथी संत साहित्य के निर्माताओं (हैजियोग्राफर्स) ने उन कथाओं के चित्रण में

[45] संपा. सर्वेश कुमार मौर्य - साहित्य और दलित दृष्टी : मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. 39

पहल प्रारम्भ की तथा कथाओं को वैष्णव रंग में रंग दिया।"[46] इस बात को आगे बढ़ाते हुए गुप्ता लिखते हैं- "वास्तव में वैष्णव पंथी संत-साहित्य के निर्माताओं का दृष्टिकोण कबीर समर्थक कम था, मूल मंतव्य कबीर को वैष्णव सिद्ध करके उन्हें हिन्दू घेरे में घेरे रखने का था।"[47]

कबीर को वैष्णव रंग में रंगने की बात हिंदी आलोचना में भी दिखाई देती है। विशेष बात यह है कि इसके लिए प्रवाद, किंवदन्तियों एवं परम्पराओं का आश्रय हिंदी आलोचना लेती है। जिसके ख़िलाफ़ डॉ. धर्मवीर का आलोचना कर्म दिखाई देता है। डॉ. धर्मवीर का जो आलोचना-कर्म है उसमें मूलतः दो बिन्दुओं को देखा जा सकता हैं, एक - कबीर का अध्ययन, दो – उन लोगों का अध्ययन जिन्होंने कबीर की वाणी को प्रक्षिप्त किया है।

कबीर का अध्ययन : इसमें डॉ. धर्मवीर ने कबीर संबंधी जन्म, परिवार, गुरु एवं धर्म संबंधी मान्यताओं को तोड़ने का प्रयास किया है। जैसे की पहले भी कहा गया हिंदी आलोचना कबीर के जन्म, परिवार, गुरु एवं धर्म संबंधी बिंदुओं पर प्रवाद, किंवदंतियों एवं परम्पराओं का आश्रय लेती है। हरिऔध लिखते हैं- '…पुनीत काशीधाम कबीर साहब का जन्मस्थान, उनकी माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। दोनों जाति के जुलाहे थे। कहा जाता है की वे इनके औरस नहीं पोष्य पुत्र थे।' आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर के गुरु संबंधी लिखते हैं - "सभी परम्पराएँ इस बात का समर्थन करती है कि कबीरदास का रामानंद के साथ सम्बन्ध था।"[48]

डॉ. धर्मवीर की आलोचना के आधार 'प्रश्न' एवं 'तर्क' हैं। जिसके कारण कई सारी पूर्व-मान्यताएँ टूटती हुई दिखाई देती हैं। उनके ये प्रश्न काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं, एक - "जो कौम तीन हजार साल के पुराने अपने वेदों को बिना मात्रा और वर्ण बढ़ाए या घटाए कंठस्थ रखती

[46] ओम पी. गुप्ता (ओमराज) – कबीर और समकालीन इतिहास, पृ. सं. 56
[47] ओम पी. गुप्ता (ओमराज) – कबीर और समकालीन इतिहास, पृ. सं. 56
[48] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 83

है वह कौम कुल पांच सौ वर्षों के पहले कबीर के समय को परम्परा, प्रसिद्धि और किंवदंती के अँधेरे में क्यों झोंक देती है?"[49] जाति के आधार पर विभाजित इस देश को जब दलित चेतना के दृष्टिकोण से देखते हैं तब स्वयं ही उत्तर देते हैं - "डॉ. द्विवेदी की इस ब्राह्मणी मानसिकता में माना यह गया है कि शूद्र को बिना ब्राह्मण की कृपा के अपने आप या अपनी परम्परा से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार के दृष्टिकोण में ब्राह्मण की शूद्र को हर दृष्टि से नीचे गिराने की मनोवृत्ति काम कर रही है।"[50] दूसरा प्रश्न - "शिष्य बनने या बनाने का एक खास अर्थ होता है। इसका खास अर्थ यह होता है कि गुरु द्वारा शिष्य को अपने खेमे में ले लिया जाता है। यदि रामानंद ने कबीर को अपना शिष्य बनाया था तो कबीर को हिन्दू बन जाना चाहिए था। क्या बात है कि तमाम जिन्दगी कबीर अपने आप को 'ना हिन्दू' कहते रहे? ऐसा क्यों हुआ कि यदि रामानंद ने कबीर को अपना शिष्य बनाया था तो जिन्दगी भर कबीर खुद को जुलाहा कहते रहे? शिष्य बनाने में रामानंद ने कबीर को क्या दिया था? क्या रामानंद ने कबीर को अपना ब्राह्मणत्व दे दिया था? क्या शिष्य होने में कबीर की जाति बदल गई थी? क्या शिष्य बनने के बाद कबीर रामानंद के सम्प्रदाय में गद्दी के अधिकारी बन गए थे?"[51] डॉ. धर्मवीर के ये प्रश्न कबीर एवं रामानंद संबंधी पूर्व मान्यताओं को कमज़ोर करते हैं।

कबीर से संबंधित हिंदी की आलोचना परम्परा में डॉ. धर्मवीर पहले हैं, जिन्होंने हिंदी में 'आजीवक कबीर' को स्थापित किया। वैदिक परम्परा के विरोधी धारा में कबीर को माना। कबीर में इन बातों की पहचान करवाई जो अवैदिक आजीवक परम्परा में देखी जा सकती हैं। वे बातें हैं- स्वर्ग-नरक, बैकुण्ठ, मूर्तिपूजा, बाह्याडम्बर एवं पुनर्जन्म आदि का विरोध। कबीर वैष्णव अगर होते तो वे शायद ही इस तरह दस हिन्दू देवताओं के अवतारों का विरोध करते दिखाई देते –

---

[49] डॉ. धर्मवीर – कबीर के कुछ और आलोचक, पृ. सं. 17

[50] डॉ. धर्मवीर – कबीर : नई सदी में तीन (कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी), पृ. सं. 151

[51] डॉ. धर्मवीर – कबीर : नई सदी में दो (कबीर और रामानंद किंवदंतियाँ), पृ. सं. 26

"दस औतार निरंजन कहिए, सो अपना ना होई।

यह तो अपनी करनी भोगैं, कर्ता औरहि कोई ।।"[52]

पुनर्जन्म पर कबीर का बिलकुल भी विश्वास नहीं है। भौतिकवादी, चार्वाकों का भी पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं था। कबीर पुनर्जन्म का खंडन करते हैं। वे कहते हैं –

"बहुरि नहिं आवना या देस। / जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेस।"[53]

कबीर को वैष्णव सिद्ध करने वाली आलोचना की परम्परा में कबीर के इस रूप का मूल्यांकन होता ही नहीं जिससे यह भय बना रहता है कि वर्ण-व्यवस्था, बैकुंठ, पुनर्जन्म आदि का विरोध करने वाले कबीर किसी भी स्थिति में वैष्णव हिंदू सिद्ध नहीं हो पाएँगे।

प्रक्षिप्त की पहचान : डॉ. धर्मवीर का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य वे कबीर वाणी में प्रक्षिप्त को निकाल बाहर करते हैं। उदाहरण के रूप में देखा जाए –

"देखौ कर्म कबीर का, कुछ पूरब-जनम का लेख।

जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख।।"[54]

कबीर का चिंतन पुनर्जन्म के विरोध का है न कि उसके समर्थन का। इसलिए यहाँ जो 'पूरब जनम' की बात है वह भी उनके चिन्तन के विपरीत ही लगती है।

"मसि कागद छूयो नहिं, कलम गही नहिं हात।

चारिउ जुग के महातम, मुखहि जनाई बात।।"[55]

इस पर डॉ. धर्मवीर लिखते हैं – "यह कबीर की भाषा और शैली नहीं है। कबीर चारों युग का महातम लिखने नहीं बैठे थे। माहात्म्य सुनना और सुनाना वैष्णवों की परम्परा और

[52] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 186
[53] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 238
[54] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 269
[55] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 224

आदत है, कबीर की नहीं। ऐसा किसी और ने कबीर के बारे में लिखा है। अपनी बात समझाने के लिए कबीर को ऐसा कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी।"[56]

"जैसे सती चढै आगिन पर, प्रेम वचन न टारा हो।
आप जरै औरनि को जारै, राखै प्रेम-मरजादा हो।।"[57]

दलित समाज में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। यह पद भी कबीर का नहीं माना जा सकता है इस बात को डॉ. धर्मवीर स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। इस तरह के प्रक्षिप्तों के कारण ही कबीर का चिंतन विकृतिकरण की ओर बढ़ा, जिसे सुधारने का प्रयास डॉ. धर्मवीर अपने पूरे आलोचना कर्म में करते हैं।

डॉ. धर्मवीर के इस पूरे मूल्यांकन में यह दिखाई देता है कि यह दलितों के धर्म पर हिन्दू धर्म थोपे जाने के विरुद्ध की गयी वैचारिक लड़ाई है। दलित धर्म का अलग अस्तित्व न मानकर उसे हिन्दू धर्म में ही ज़ज्ब किये जाने के ख़िलाफ़ लड़ी जा रही लड़ाई है। यह थोपना ही किसी के अस्तित्व को नकारना है। डॉ. धर्मवीर इसी के ख़िलाफ़ या कहे सारा दलित साहित्य ही इसके ख़िलाफ़ है। जिस कबीर को लेकर डॉ. धर्मवीर हिंदी आलोचना में आते हैं, वह कबीर अपने साथ दलित समाज का चिन्तन लेकर आता है। जातिभेद के ख़िलाफ़ उनकी लड़ाई व्यक्तिगत नहीं बल्कि समाजगत है। दलित धर्म की परम्परा एवं चिंतन के साथ आया हुआ कबीर ब्राह्मण-मुसलमान दोनों धर्मों के पाखंड एवं धर्मों से दलितों की रक्षा करता हुआ कबीर है। जिसका अपना धर्म है, वैचारिकी है जो उन्हें परम्परा से प्राप्त है। डॉ. धर्मवीर का यह चिंतन कबीर को अवैदिक परम्परा से जोड़ता है वहीं विकृतिकरण एवं प्रक्षिप्त के जाल से उन्हें छुड़ाने का प्रयास करता दिखाई देता है। इसे वैचारिक लड़ाई कह सकते हैं जो अस्तित्व की पहचान पर आधारित है, जिसके लिए दलित साहित्य के चिंतक एवं आलोचक वैचारिक

[56] डॉ. धर्मवीर – कबीर : नई सदी में एक (कबीर डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन),पृ.सं. 55
[57] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 195

संघर्ष करते नज़र आ रहे हैं। डॉ. धर्मवीर की आलोचना कबीर के अस्तित्व को लेकर किया गया वैचारिक संघर्ष नज़र आती है।

1.1.5 कँवल भारती और कबीर

हिन्दी दलित साहित्य की वैचारिकी एवं आलोचना विधा को सशक्त बनाने में 'कँवल भारती' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कँवल भारती ने हिंदी दलित साहित्य में कविता, आलोचना, वैचारिकी एवं पत्र-कारिता आदि विधाओं में अपनी क़लम चलाकर दलित साहित्य की सीमाओं को विस्तृत कर, उसे सशक्त बनाने का यत्न किया है। उनका 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' कविता संग्रह हिंदी साहित्य में काफ़ी प्रसिद्ध रहा है। इसके बाद कविता के क्षेत्र में कम पर वैचारिकी एवं आलोचना में उनका सृजन-कार्य अनवरत दिखाई देता है।

कँवल भारती का मध्ययुगीन दलित कवि, रैदास एवं कबीर पर किया हुआ आलोचनात्मक सृजन-कार्य काफ़ी सारी उलझनों को दूर करने में सफल रहा है। ऐसा भी नहीं कि कबीर और रैदास पर इससे पहले आलोचनात्मक कार्य हुआ ही नहीं, हुआ है - डॉ. धर्मवीर इस विषय पर लिखनेवाले दलित साहित्य के प्रमुख आलोचक रहें हैं। डॉ. धर्मवीर पहले ऐसे दलित आलोचक रहे हैं जिन्होंने ब्राह्मणवादी विचारधारा के पोषक आलोचकों से वैचारिक संघर्ष कर कबीर के अस्तित्व को बचाकर उनके (कबीर) इतिहास, दर्शन एवं धर्म को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया है।

उन्हें यह कार्य करने की क्यों ज़रूरत पड़ी ? इसका जवाब, भारतीय इतिहास में दलित अस्तित्व की तलाश है। डॉ. बी. आर. आंबेडकर भारतीय इतिहास को समझने के लिए क्रांति-प्रतिक्रांति का विचार दे चुके हैं। जिससे भारतीय इतिहास को जानने में काफ़ी आसानी हो जाती है और साथ ही उन परम्पराओं को जानने की जिनका संघर्ष वैदिक परम्परा से रहा

है। वैदिक परम्परा के इतिहास को जब हम देखते हैं, तो यह बात पता चलती है कि इस परम्परा ने अपनी विरोधी परम्परा (आजीवक, बौद्ध) को नष्ट करने का प्रयास किया है। अत: इस प्रयास के कारण हमें आजीवक एवं बौद्धों के साहित्य एवं इतिहास का ज्ञान काफ़ी अल्प रूप में उपलब्ध है और जो है उसका ज़्यादातर हिस्सा विकृतिकरण का शिकार है। अत: कबीर भी इसका शिकार बने हैं। इस बात को प्रो. मैनेजर पाण्डेय भी रेखांकित करते हैं। वे लिखते हैं – "प्राय: वैदिक-पौराणिक परम्परा के प्रतिनिधि अपने विरोधी और विकल्पी विचारों के साथ जो व्यवहार करते रहे हैं, उसकी प्रक्रिया ध्यान देने लायक है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले विरोधी विचार का उग्र विरोध होता है। अगर वह विरोध के बाद भी नष्ट नहीं होता तो उसे विकृत करके बदनाम करने की कोशिश होती है। इसके बाद भी यदि विरोधी विचार जीवित रहता है, तो उसके विरोध की धार की तेजी को नष्ट करके अपने भीतर समेट लेने का प्रयत्न चलता है। विरोध, विकृति और समाहार की इस सर्वग्रासी प्रक्रिया के शिकार चार्वाक, आजीवक और बौद्ध ही नहीं, कबीर जैसे कवि भी हो चुके हैं।"[58]

अत: हम देख सकते हैं कि, विरोध, विकृति और समाहार की सर्वग्रासी प्रक्रिया जिसके शिकार अवैदिकों के साथ-साथ कबीर भी हुए हैं। अत: इस बात को और स्पष्ट रूप में रेखांकित करने का काम दलित आलोचना कर रही है। इस आलोचना कर्म में डॉ. धर्मवीर के बाद एक नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, वह है – कँवल भारती।

जहाँ डॉ. धर्मवीर विरोध, विकृति और समाहार की सर्वग्रासी प्रक्रिया को निरंतर चलाए रखनेवाले तथा कबीर के अस्तित्व को नकारनेवाले चेहरों को सामने ले आते हैं, वहीं वे हिंदी में आजीवक कबीर को स्थापित करते हैं। वहीं दूसरी ओर कँवल भारती आजीवक एवं कबीर परम्परा की अदृश्य हुई संबंधों की डोर को अपनी आलोचना से दृश्यमान कर उसे मज़बूती देने का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं।

[58] मैनेजर पाण्डेय – भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, पृ. 113

यह कैसी विडम्बना है जहाँ आजीवन कबीर अपने अस्तित्व को पुरज़ोर तरीके से हिंदू एवं मुसलमान दोनों धर्मों से अलगाते हैं। उन्हीं को आज तक हिंदी आलोचना ने हिंदू धर्म में समाहित कर उनके अस्तित्व को नकारने की कोशिश की है। जिसका आधार काल्पनिक कथा-परम्पराएँ रहीं हैं।

आजीवक कबीर की पहचान करने निकले कँवल भारती, आजीवकों के बारे में लिखते हैं – "आजीवक वे लोग थे, जो घूम-फिरकर अपनी जीविका कमाते थे। दूसरे शब्दों में, अपनी जीविका के लिये भ्रमण करनेवाले आजीवक कहलाते थे।"[59] पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केश कम्बल, प्रक्रुध कात्यायन एवं संजय बेलट्ठिपुत्त इसी आजीवक परम्परा के प्रतिनिधि हैं। इन आजीवकों के दर्शन को स्थूल रूप में इस प्रकार देख सकते हैं- चार महाभूतों का अस्तित्व, आत्मा का न होना यह अनिश्चितता का सिद्धांत जो कि अजित केस कम्बल का था, मृत्यु के बाद व्यक्ति कोई कर्मफल नहीं भोगता है यह पूर्ण काश्यप का सिद्धांत रहा है। मक्खलि गोशाल का नियतिवाद का विचार था। नियतिवाद को कँवल भारती व्याख्यायित करते हैं – "गोशाल के नियतिवाद का अर्थ था सभी वस्तुएँ स्वभाव के अधीन हैं। उसके स्वभाव को कोई नहीं बदल सकता – पराक्रमी पुरुष भी नहीं।"[60]

परलोक-पुनर्जन्म का खण्डन, आत्मा का अस्वीकार, जार-कर्म का विरोध आदि बातें आजीवक धर्म में दिखाई देती हैं। जिनसे वैदिक परम्परा के जड़ पर ही आघात होता है। यही बातें कबीर में भी देखने को मिलती हैं- आत्मा, पुनर्जन्म, वेद-पुराण, बैकुंठ, ईश्वरीय अवतार, मूर्तिपूजा आदि का विरोध वे करते हुए दिखाई देते हैं।

"बहुरि नहिं आवना या देस।
जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेस।"[61]

---

[59] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. 40

[60] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. 55

[61] आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. 238

* * *

"चलन चलन सबको कहत है, नाँ जानौं बैकुंठ कहाँ है।

जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातनि ही बैकुंठ बखानैं।।

कहें-सुनें कैसें पंतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये।।"[62]

यहाँ प्रखर रूप में पुनर्जन्म-बैकुंठ का विरोध करते हुए कबीर को देखा जा सकता है। इसी तरह का विरोध वे ईश्वर के अवतार को लेकर भी करते हैं-

"दस औतार निरंजन कहिए, सो अपना ना होई।

यह तो अपनी करनी भोगैं, कर्ता औरहि कोई।।"

ये पद जो अपने आप में आजीवक धर्म के विचार लिए हुए हैं जो किसी भी रूप में कबीर को हिंदू वैष्णव होने के संकेत नहीं देते हैं। वहीं हिंदी के आलोचक कबीर को रामानंद का शिष्य एवं वैष्णव बनाने पर तुले हुए हैं। क्या इसके पीछे यही मानसिकता काम नहीं कर रही है जिसे डॉ. धर्मवीर रेखांकित करते हैं- "इस ब्राह्मणी मानसिकता में माना यह गया है कि शूद्र को बिना ब्राह्मण की कृपा के अपने आप या अपनी परम्परा से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार के दृष्टिकोण में ब्राह्मण की शूद्र को हर दृष्टि से नीचे गिराने की मनोवृत्ति काम कर रही है।"[63]

डॉ. धर्मवीर का चिंतन इस ब्राह्मणवादी मनोवृत्ति से संघर्ष करने में बिता है। इसमें उनसे 'आँखन देखी' कहने वाले कबीर की कविताओं के अनगिनत पहलूओं का मूल्यांकन रह ही जाता है, जिसे कँवल भारती के आलोचना कर्म में देखा जा सकता है।

आजीवक गोसाल की परम्परा में जार-कर्म का विरोध दिखाई देता है। यही बात कबीर में भी देखी जा सकती है। जार-कर्म में स्त्री के साथ-साथ पुरुष भी उतना ही दोषी है जितनी की

[62] आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. 245

[63] डॉ. धर्मवीर – कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, पृ. 151

स्त्री। कबीर की नज़र में कामी पुरूष कुत्ते से भी नीचले दर्जे का है- 'कामी थैं कुतो भलौ, खोलें एक जू काछ।' कामी स्त्री के बारे में वे कहते हैं-

"परनारी राता फिरै, चोरी बिढता खांहि।

दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाँहिं।।"[64]

जिन आलोचकों को कबीर स्त्री विरोधी लगते हैं उन्हें कँवल भारती की इस बात पर ध्यान देना चाहिए। वे लिखते हैं- "कबीर की लड़ाई स्त्री के विरुद्ध नहीं है, बल्कि व्यभिचार में लिप्त स्त्री के विरुद्ध है। उन्होंने 'पर नारी', 'कामी' और 'व्यभिचारी' शब्दों का प्रयोग किया है। वे ऐसी स्त्री को बिलकुल आदर नहीं देते हैं, जो व्यभिचारिणी हैं..."[65] आजीवक गोसाल से शुरू हुई बुद्ध, फुले एवं डॉ. आंबेडकर तक आनेवाली इस परम्परा में जहाँ, जितना पुरूष सम्मान एवं अधिकार का हक़दार रहा है, उतनी स्त्री भी रही है। अत: एक बार फिर रुक कर यह सोचा जाना चाहिए कि क्या सच में कबीर स्त्री विरोधी रहें हैं?

कँवल भारती ग़रीब, किसान, मज़दूर की व्यथा को अभिव्यक्त करनेवाले कबीर के इस पक्ष को भी उजागर करते हैं-

"अब न बसूँ इहि गाँइ गुसाई, तेरे नेवगी खरे सयाँने हो राम ।।टेक।।

गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।

जोरि जेवरि खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारे हो राम।।"[66]

हिंदी आलोचना में खेतों में काम करने वाले दलित, मज़दूर वर्ग की हृदय-विदारक स्थिति को उजागर करते कबीर प्राय: लुप्त ही रहे हैं।

कबीर का एक और रूप जहाँ वे ग़रीबी, दरिद्रता के दु:ख को अभिव्यक्त करते हैं –

"इब न रहूँ माटी के घर में। / इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं।।

[64] सम्पा. डॉ. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रंथावली, पृ. 30
[65] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. 60
[66] सम्पा. डॉ. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रंथावली, पृ. 121-122

छिनहर घर अरु झिरहर टाटी। / घन गरजत कंपै मेरी छाती।।"[67]

कबीर कह रहे हैं कँवल भारती के शब्द उदाहरण स्वरूप - "घर, जिसकी दीवारें मिट्टी की बनी हैं, छप्पर में जगह-जगह छेद हैं, जिससे गरमी में धूप और वर्षा में पानी आता है। इसलिये जब बादल गरजते हैं, तो उस ग़रीब की छाती काँप जाती है।"[68]

निष्कर्षत: डॉ. आंबेडकर जिस कसौटी को 'बुद्ध और उनका धम्म' में प्रयोग करते हैं वह कसौटी है- "भगवान बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नहीं पड़ना चाहा, जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो। इसलिए कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है, तो उसे 'बुद्ध वचन' स्वीकार नहीं करना चाहिए।"[69] अत: उपरोक्त आलोचना दृष्टि को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि यह कसौटी कबीर की तलाश में कँवल भारती की आलोचना का आधार रही है।

प्रतिक्रांति की परम्परा ने कबीर को भक्त एवं वैष्णव धर्म में समाहित कर उनके आजीवक धर्म पर पर्दा डाला है तो वहीं जाति-मुक्त, शोषण रहित, समाज परिवर्तन के विचारों को धुँधला करने की कोशिश भी की है, जो ब्राह्मणवादी परम्परा के लिए घातक सिद्ध हो रही थीं। अत: हम कह सकते हैं कि, कँवल भारती की आलोचना दृष्टि कबीर के उस रूप को सामने ले आती है जो जातिमुक्त, शोषणरहित समाज निर्माण के लिए कारगर है और जिसका संबंध आजीवक धर्म एवं दर्शन से है जो वैदिक परम्परा के विरोध की धारा है। इस पूरे आलोचना कर्म में कँवल भारती की आलोचना दृष्टि कबीर के अस्तित्व की तलाश ही नहीं बल्कि दलित दर्शन की अवैदिक धारा का इतिहास लेखन भी करती है।

---

[67] आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. 263

[68] कँवल भारती – कबीर : एक विश्लेषण, पृ. 71

[69] डॉ. बी. आर. आम्बेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुध्द और उनका धम्म, पृ.19

1.2 रैदास पर पुनर्विचार

1.2.1 रैदास और धर्मपाल मैनी

मध्यकालीन युग के सबसे ज़्यादा विवादित संत कवियों में कोई हैं तो वे रैदास एवं कबीर हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक हर बात पर अनगिनत अलग-अलग विचार विद्वानों द्वारा दिए गए हैं। स्पष्ट रूप में उनके जन्म एवं मृत्यु का समय तय करना बहुत दुष्कर कार्य है। इस अध्ययन के दौरान रैदास पर लिखी गई आलोचनाओं का अध्ययन कर उनसे जो रैदास पाठक वर्ग के सामने आते हैं वे किस रूप में हैं, वे कितना हमारे विवेक की कसौटी पर खरे उतरते हैं इन बातों को देखने कोशिश की जाएगी। धर्मपाल मैनी की किताब 'रैदास' कई सारे बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करती हुई दिखाई देती है। रैदास का समय, जीवन परिचय, विचारधारा, सामाजिक चेतना एवं उनके साधना के आयाम को उजागर करने का प्रयास इस किताब में देखा जा सकता है।

धर्मपाल मैनी की आलोचना रैदास के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उभारने का प्रयास करती है। तत्कालीन समय की स्थितियों को उद्घाटित कर रैदास के महत्त्व को बताने का प्रयास करती है। रैदास का समय काफ़ी उथल-पुथल का समय था चाहे वह सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र क्यूँ न हो। इस समय को रेखांकित करते हुए रैदास के महत्त्व को इस रूप में मैनी रेखांकित करते हैं – "राजनैतिक विश्रृंखलता, धार्मिक अनास्था, सामाजिक अव्यवस्था तथा आर्थिक दरिद्रता के युग में संत शिरोमणि रैदास आविर्भूत हुए थे। इस युग को अपनी नैतिक-चेतना का संबल देकर आध्यात्मिक ज्योति से आलोकित करने का श्रेय संत शिरोमणि रैदास को है। भारतीय संस्कृति को विकृत अधोमुखी वृत्तियों से बचाकर जीवित और जागृत रखने का गौरव रैदास एवं उस युग के संतों को दिया जा सकता है। इसीलिए हमने इसे भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण का काल स्वीकार किया है।"[70]

---

[70] धर्मपाल मैनी - रैदास, पृ.सं. 12

धर्मपाल मैनी यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को जोड़ देते हैं जिससे रैदास के महत्त्व को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। वे मानते हैं मध्ययुग का काल भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण काल है। हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति विकृत होकर अधोमुखी होती चली जा रही थी। ऐसे समय में रैदास नैतिक-चेतना का संबल देकर भारतीय संस्कृति को आध्यात्मिक ज्योति से आलोकित कर उसे विकृत अधोमुखी होने से बचाने का कार्य करते हैं। इसे इस रूप में कह सकते हैं कि मुस्लिम आक्रमण एवं इस्लाम धर्म के प्रभाव में आकर जो दलित जातियाँ इस्लाम धर्म अपना रही थी। यह अपनाना एक तरह से आलोचक के दृष्टि से संस्कृति का अधोमुखी होना ही कहा जा सकता है। इससे उभारने का कार्य रैदास करते हैं लेकिन यहाँ रैदास का रूप एक भक्त के रूप में अप्रत्यक्ष रूप में रेखांकित करते हुए मैनी दिखाई देते हैं।

रैदास का समय जन्म सं. 1456 के आस-पास का मैनी मानते हैं। माता, पिता, पत्नी, संतान के नाम क्रमशः रग्घु, धुरबनिया (कर्मा), लौणा (लोना) एवं संतान का नाम विजयदास मानते हैं। भविष्यपुराण में उद्धृत किंवदंतियों को आधार बनाकर, उसे इस प्रकार रेखांकित करते हैं– "रैदास का जन्म चमारों की एक उपजाति 'चमकटैया' के एक छोटे परिवार में हुआ था।"[71] रैदास की आयु के मामले में वे 128 आयु पाने वाले थे, इस बात को वे मानते हैं। रैदास के जीवन परिचय को लेकर जिन किंवदंतियों को मैनी अपनी किताब में जगह देते हैं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन किंवदंतियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। किंवदंतियों में ज़्यादातर चमत्कार को ही जगह मिलती रही है।

रैदास की विचारधारा को लेकर मैनी ने सूक्ष्म रूप में अन्वेषण कर बातों को प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया है, ऐसा प्रतीत होता है। वे रैदास को किसी भी दार्शनिक संप्रदाय या विचारधारा में बाँधकर नहीं देखते हैं। वे लिखते हैं – "संतों की अनुभूति की अभिव्यक्ति सहज होने के कारण मानवीय चेतना की जिस गरिमा को लेकर चलती है वह चिंतन से

---

[71] धर्मपाल मैनी - रैदास, पृ.सं. 17

अधिक हृदय की रागात्मिकता वृत्ति से सम्बद्ध है। इसीलिए उनकी विचारधारा को किसी दार्शनिक संप्रदाय में आबद्ध करना उनके प्रति अन्याय है।"[72] उनका यह मानना रैदास की पूरी दलित परम्परा को ही नकारने जैसा दिखाई देता है। उनमें जो जातिवाद, ब्राह्मणवाद, मूर्तिपूजा, धार्मिक पाखंड आदि के प्रति विरोध है, वह किसी एक परम्परा से आया नहीं है, किसी एक विचारधारा से नहीं आया है, यह कैसे माना जाए? चार्वाक एवं बुद्ध से आने वाली परम्परा का, विचार-दर्शन का इन पर कोई प्रभाव नहीं क्या ऐसा माना जाए?

धर्मपाल मैनी की बातों में कई जगह अन्तर्विरोध स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं। जहाँ वे किसी भी विचारधारा से रैदास को बाँधकर नहीं देखना चाहते हैं। वहीं एक ओर रैदास का यह रूप सामने लाते हैं– "रैदास ने भावहीन आवरणों और आडम्बरों का जी भरकर विरोध किया। मूर्ति-पूजा करने वालों का अंतर में बैठी हुई मूर्ति से परिचय कराया, मंदिर जाने वालों को मन-मंदिर की याद दिलाई, 'कर का मनका' फेरने वालों को 'मन का मनका' ला पकड़ाया, तीर्थों के भ्रमण करने वालों को सत्गुण-रूपी तीर्थ के दर्शन करवाए, गंगा-स्नान करने वालों को अन्तः स्नान का पाठ पढ़ाया, व्रत रखने वालों को वास्तविक व्रत का महत्त्व बताया।"[73] यह जो विचारधारा है वह लोकायत और बुद्ध की परम्परा में दिखाई देती है। इसी का प्रभाव रैदास पर दिखाई देता है, इस बात को नज़र-अंदाज नहीं किया जा सकता है।

रैदास के भक्त रूप को धर्मपाल मैनी प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं– "जगत् और जीवन को सत्य स्वीकार करते हुए रैदास ने सत्संगति, सत्कर्म, सत्गुण एवं सत्गुरु के माध्यम से भगवत्-कृपा की प्राप्ति को ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य स्वीकार किया है।"[74] रैदास दलित जाति के होने के कारण सामाजिक भेदभाव को मिटाना उनके जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक रहा है। इसलिए उनकी वाणी में जातिप्रथा पर कठोर प्रहार भी

---

[72] धर्मपाल मैनी - रैदास, पृ.सं. 29
[73] धर्मपाल मैनी – रैदास, पृ.सं. 60-61
[74] धर्मपाल मैनी – रैदास, पृ.सं. 37

दिखाई देते हैं – 'जात पांत के फेर मंहि, उरझि रह्यो सभ लोग', साथ ही साथ बुद्ध की शिक्षा का भी प्रभाव दिखाई देता है। बुद्ध के विचारों का प्रभाव उनके पूरे जीवन पर दिखाई देता है। उदाहारण के रूप में अपनी इन्द्रियों पर काबू पाना सबसे महत्त्वपूर्ण विचार बुद्ध का है, जिसे आजीवन रैदास अपने जीवन ने आपनाते हुए दिखाई देते हैं।

रैदास कहते हैं– "जैसे कुरंक नहीं पाईओ भेदु/ सनि सुगंध ढूंढे प्रदेसु।" यहाँ अंतःकरण को नियंत्रित कर उसे पहचान कर निखारने की बात रैदास करते हुए प्रतीत होते हैं। वहीं इन पदों की व्याख्या मैनी इस रूप में करते हैं– "जीव के देह-धारण की सफलता इसी में है कि वह अपने में अंतर्निहित उस प्रभु-ज्योति से आलोकित हो और उसे अनुभव करे, अन्यथा रैदास की शब्दावली में वह तो मात्र 'माटी का पुतरा है'।"[75] इस रूप की उनकी व्याख्या एकांगी प्रतीत होती है। सीधी बातों को मोड़-तोड़ कर अलौकिक व्याख्या करते हैं।

जो बात सामने आती है वह यही है कि रैदास एक भक्त हैं, जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति के पतन को रोक कर, आध्यात्मिक ज्योति से उसे आलोकित करने का प्रयास किया। इसमें उनका सबसे बड़ा आधार उनका नैतिक-संबल एवं जीवन था। बाह्य आडम्बरों से दूर सरल, सहज नैतिक जीवन जीकर लोगों को प्रभावित कर उनका आत्मिक उन्नयन किया, इस रूप में रैदास को धर्मपाल मैनी प्रस्तुत करते हैं। जिनके सपनों का गाँव 'बेगमपुरा' है, ऐसे व्यक्तित्व की धर्मपाल मैनी अनदेखी कर देते हैं।

1.2.2. रैदास और डॉ. योगेन्द्र सिंह

डॉ. योगेन्द्र सिंह की लिखी एक किताब का नाम है – 'संत रैदास'। 'संत रैदास' यह किताब विशेषतः रैदास का व्यक्तित्व, विचारधारा, साहित्य और बानियों में विभाजित है। रैदास अपने नाम से लेकर मृत्यु तक विवादित रहे हैं। उनके नाम को लेकर योगेन्द्र सिंह अपना

[75] धर्मपाल मैनी – रैदास, पृ.सं. 31

एक विशेष मत रखते हैं– "वस्तुतः मूलरूप में यह नाम 'रविदास' ही था। बाद में उसके अनुयायियों के द्वारा ही अपभ्रंश रूप में यह नाम 'रैदास' हो गया। इस बात का समर्थन 'रैदास जी की बानी' के सम्पादक द्वारा भी 'रैदास जी का जीवन-चरित्र' लिखते समय किया गया है।"[76] रैदास का मूल नाम 'रविदास' मानने के पीछे सिंह के आधार 'रैदासजी की बानी' एवं 'गुरु ग्रन्थ साहब' रहे हैं।

योगेन्द्र सिंह रैदास को रामानंद का समकालीन मानते हैं पर शिष्य नहीं मानते, इसका कारण वे साक्ष्यों के अभाव बताते हैं। लेकिन वे रैदास संबंधी किंवदंतियों का गहराई में जाकर विश्लेषण करते हैं– "पुरोहितवाद, थोथे कर्मकांड तथा वर्ण-व्यवस्था के नाम पर सामाजिक अन्याय के विरुद्ध, उसमें सुधार लाने के लिये, सम्पूर्ण संत विचारधारा खड़ी हुई थी; जिस संत विचारधारा में व्यक्ति-लिंग-भेद से स्वतंत्र अनेक भक्त केवल अपनी भक्ति तथा साधना मात्र के बल पर महान सिद्ध पुरुष माने गये, उसी संत परम्परा के महान भक्त संत रैदास की सफलता के कारण उनके पूर्व-जन्म के ब्राह्मण होने में खोजने की चेष्टा सम्पूर्ण आन्दोलन की आत्मा को समाप्त करने का प्रयास तथा सामाजिक अन्याय को जीवित रखने का षड्यंत्र ही कहा जा सकता है।"[77] ये बातें काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं और डॉ. धर्मवीर का चिंतन इसी वृत्ति को उजागर करने के प्रयास में दिखाई देता है।

योगेन्द्र सिंह मूलतः रैदास को भक्त मानते हैं। लेकिन वे किसी विशेष साधना पद्धति से रैदास को नहीं जोड़ते हैं। वे मानते हैं लगभग सभी साधना पद्धतियाँ रैदास की साधना पद्धति में समन्वित हैं। लेकिन रैदास की साधना पद्धति में जो विशेष है, उसे रेखांकित करते हैं– "रैदास ने तत्कालीन युग में प्रचलित सम्पूर्ण साधना पद्धतियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप एक ऐसी सर्वांगीण पद्धति दी थी जिसमें प्रत्येक विचारधारा का लाभकारी

[76] डॉ. योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, पृ. सं. 15
[77] डॉ. योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, पृ. सं. 29

स्वरूप समाविष्ट था, उसका हानिकर या अधिक वैधी रूप तथा बाह्याचरण पूर्णरूपेण बहिष्कृत कर दिया गया था।"[78]

यहाँ सिंह किसी विशेष साधना पद्धति से रैदास को नहीं जोड़ते हैं। जातिगत भेदभाव, अंधश्रद्धा, धार्मिक पाखंड, पुनर्जन्म आदि का विरोध यह सब बातें जो रैदास में दिखाई देती हैं, ये चार्वाक एवं बुद्ध की ही परम्परा का विकसित रूप प्रतीत होती हैं। रैदास की साधना में लोक कल्याण को देखा जा सकता है। यह उनके चिंतन एवं विचारधारा का अंग दिखाई देता है। इस बात को सिंह भी रेखांकित करते हुए दिखाई देते हैं। क्यूँ जाति-धर्म पर चोट करते हुए निर्गुण कवि दिखाई देते हैं? इस प्रश्न का उत्तर योगेंद्र जी की इस बात से मिल जाता है– "वास्तविकता तो यह है कि मध्यकाल में सामाजिक ढाँचा ही धर्म की भित्ति पर खड़ा था; अतः कोई भी सामाजिक विचार धर्म से स्वतंत्र नहीं चल सकता था। उसे यदि सुधार करना था तो पहले धार्मिक ढाँचे में परिवर्तन करने की आवश्यकता थी; यदि परिवर्तन करना था तो धर्म को सुधारने की आवश्यकता थी। कोई भी परिवर्तन की बात में धर्म परिवर्तन की बात पहले थी, समाज की बाद को।"[79] इसी कारण जातिभेद का विरोध वे करते दिखाई देते हैं।

योगेन्द्र सिंह के मूल्यांकन की कुछ सीमाएँ भी हैं, जिनका जिक्र करना बहुत आवश्यक होगा। वे सीमाएँ कुछ इस प्रकार हैं- वे रैदास के चिंतन को इस रूप में देखते हैं- रैदास परलोक तथा पुनर्जन्म में तथा विभिन्न योनियों में जन्म लेने में विश्वास करते थे, रैदास मृत्यु के उपरांत कर्मों का हिसाब लिया जाएगा इस बात पर वे विश्वास करते थे। ये सब बातें रैदास के चिन्तन को विकृत करने का ही प्रयत्न है। जबकि यह बात ज्ञात है कि दलित संतों का चिंतन लौकिक चिंतन था, जिसके केंद्र में मनुष्य था न की मृत्यु के उपरांत क्या होगा इस पर किया गया चिंतन। योगेन्द्र सिंह रैदास की वाणी में आए विकृतिकरण के प्रयासों को नहीं देख पाए।

[78] डॉ. योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, पृ. सं. 115
[79] डॉ. योगेन्द्र सिंह – संत रैदास, पृ. सं. 101

योगेन्द्र सिंह ने रैदास के काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर अपनी बात रखी है वह काफ़ी महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। भक्तिकाव्य के लिए जो कसौटियाँ तय की गयी वे भक्ति काव्य के साथ न्याय करती हुई प्रतीत नहीं दिखाई देती हैं। इसलिए सिंह की ये बात यहाँ महत्त्वपूर्ण हो उठती है– "भक्तिकाव्य में ऐसे बहुत से स्थल मिलेंगे कि जो कदाचित शास्त्रीय चौखटे में पूरी तरह न कसे जा सकें, उनका सौन्दर्य उससे कहीं अधिक विशाल, विस्तृत और गहरा है जिनता शास्त्रों में परिभाषित है।"[80] यह बात सच जान पड़ती है शास्त्रीय कसौटियों से भक्तिकाव्य को देखने पर उसका सौन्दर्य ही अनछुआ रह जाता है और वह रागात्मकता नहीं आ पाती है, जो उस काव्य में निहित सौन्दर्य में है।

निष्कर्ष रूप में योगेन्द्र सिंह की बात जो रैदास के संघर्ष एवं महत्त्व को भी उद्घाटित करती है, वह यह है कि, "अस्तु, रैदास ने तत्कालीन युग में परम्परा से चले आ रहे सामाजिक अन्याय के परिणाम स्वरूप तत्कालीन परिस्थितियों में हो रहे ध्वस्त भारतीय समाज के सामने सामाजिक समता तथा धर्म और भक्ति के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के समान अधिकार की बात कहकर नवयुग की सबसे बड़ी आवश्यकता का उद्घोष किया।"[81]

1.2.3 रैदास और डॉ. एन. सिंह

डॉ. एन. सिंह ने रैदास पर 'संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार' नामक किताब लिखी है। जो रैदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करती है। सिंह को दलित चेतना के पहले रचनाकार रैदास लगते हैं। रैदास के प्रति उठी मन में जिज्ञासा के कारण वे सतत रैदास पर अध्ययन करते रहे, उस अध्ययन का फल ही 'संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार' है। इस किताब के माध्यम से सिंह ने कई सारे बिन्दुओं पर विचार कर उसे प्रस्तुत किया है। स्वयं सिंह लिखते हैं – "संत रैदास के जीवनवृत्त को भी हमने प्राप्त समस्त सामग्री के आधार पर

[80] डॉ. योगेन्द्र सिंह – संत रैदास, पृ. सं. 107
[81] डॉ. योगेन्द्र सिंह – संत रैदास, पृ. सं. 101

पर्याप्त विस्तार से लिखा है। जिसमें उनके व्यक्तित्व को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि ऐसा क्या था उनके व्यक्तित्व में कि उन्होंने एक अपार जनसमूह को आकर्षित किया। रैदास काव्य में सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना का भी मैंने विवेचन किया है। रैदास की भक्ति, जन साधारण के लिए सहज थी। उसके स्वरूप का विवेचन भी मैंने इस पुस्तक में किया है।"[82]

दलित चिंतन की परम्परा में सभी चिन्तक यह मानते हैं कि कबीर एवं रैदास के गुरु रामानंद नहीं हो सकते हैं। जबकि एन. सिंह इसके ठीक विपरीत हैं और मानते हैं कि रैदास के गुरु रामानंद ही थे। वे लिखते हैं – "अतः निर्विवाद रूप से स्वामी रामानंद को रैदास का दीक्षा गुरु स्वीकार किया जा सकता है।"[83] कुछ समय के लिए एन. सिंह की बातों को माना भी जाए तो भी वे सवाल जो दलित चिंतकों (विशेषतः डॉ. धर्मवीर) ने सामने रखे हैं जिनका जवाब वे कहीं नहीं देते हैं। जैसे - मूर्तिपूजा, जाति-पांति, भेदभाव का विरोध करने वाले रैदास, कैसे इन सब बातों को मानने वाले रामानंद जी से शिष्यत्व ग्रहण किया? ऐसा क्यूँ नहीं हुआ कि रैदास के ही बारे में कोई किंवदंती नहीं गढ़ी गई जिसमें रैदास को रामानन्द के उत्तराधिकार में रामानंद की गद्दी मिल गई हो? क्यूँ सिर्फ़ रैदास एवं कबीर के ही बारे में हमें जनश्रुतियों एवं किंवदंतियों पर आश्रित होकर उनके समय को जानना पड़ रहा है, जबकि उस युग के समस्त सगुण भक्तों के बारे में हर बात इतिहास में दर्ज है। हजारों सालों से लिखने की परम्परा सिर्फ़ रैदास और कबीर के बारे में ही किन्वतंदियों पर आश्रित क्यूँ है? एन. सिंह गुरु-शिष्य विवाद का बहुत ही सरल जवाब देते हैं जो काफ़ी ऊपरी लगता है, जिसमें चिंतन की गहराई नहीं दिखाई पड़ती है। वे लिखते हैं– "मेरे शोध गुरु डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' स्वयं पुरोहित पुत्र और धार्मिक व्यक्ति हैं। उनके सान्निध्य में साहित्य का अध्ययन करने के उपरांत भी मैं दलित साहित्य की ओर चला गया। गुरु और शिष्य अपनी अलग विचारधाराओं का विकास

[82] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. भूमिका

[83] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. 41

कर सकते हैं।"[84] यहाँ रैदास के समय और धार्मिक भेदभाव, रामानंद के सामाजिक आचरण का अध्ययन करने की कमी सिंह में दिखाई देती है। वे स्वतंत्र भारत के सामाजिक स्थिति का मध्ययुग की सामाजिक स्थिति से तुलना कर बैठे, इन युगों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक रूप में बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है।

बहरहाल, एन. सिंह की दृष्टि से रैदास अपने गुणों के कारण देवत्व को प्राप्त हुए थे। इस बात में वे रैदास को ईश्वर या भगवान की श्रेणी में देखते हैं। धर्मपाल मैनी की बातों को जस का तस उद्धृत कर, रैदास के व्यक्तित्व के बारे में निष्कर्ष रूप में लिखते हैं – "रैदास सामान्य चर्मकार घर में जन्म लेकर कर्मण्य सामान्य गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी महान मानवीय गुणों से मंडित होते रहे। इसी से उनका आतंरिक मानव जागृत होता गया और वे अनायास ही जनमानस को भी आलोकित करते गये। इतना होने पर भी उनका अहं कभी उद्वेलित नहीं हुआ, अपितु उनकी विनयता, सौम्यता एवं शालीनता ने उन्हें जन-मन का कंठहार बना दिया। यही उनके जीवन और व्यक्तित्व की महिमा एवं गरिमा के पदचिन्ह हैं।"[85] यहाँ रैदास का वह रूप या व्यक्तित्व दिखाई देता है जिसने अपने आतंरिक मानव को जागृत किया या कहे अपने इन्द्रियों पर काबू पाकर वे एक जागृत इन्सान बने।

मध्ययुगीन निर्गुण कवियों के जीवन को जानने के लिए कमोबेश किंवदंतियों पर आधारित होना पड़ता है। रैदास के जीवन को जानने के लिए भी इन्हीं का आधार थोड़ा-बहुत लेना पड़ता है। पर दलित चिन्तक इन किंवदंतियों के माध्यम से जो संतों का विकृतिकरण हुआ है उसके ख़िलाफ़ दिखाई देते हैं। वे चमत्कार जैसी चीज़ों को संतों के जीवनवृत्त में जोड़कर संतों का चित्रण करने वालों के ख़िलाफ़ भी दिखाई देते हैं। वहीं एन. सिंह उन कथाओं से रैदास के इस रूप को देखते हैं – "एक सिद्ध पुरुष के रूप में वे दलित ही नहीं,

[84] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. भूमिका

[85] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. 60

दलितेत्तर जातियों में पूज्य व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।"[86] जिस बात की कमी यहाँ दिखाई देती है, वह यही है कि उनको चमत्कार से सराबोर दलित संतों के चरित्र चित्रण से कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती है। न ही वे इसके ख़िलाफ़ दिखाई देते हैं। इन किंवदंतियों के निर्माण के पीछे कुछ कारण हो सकते हैं इस बात की गहराई में जाने की कोशिश करते हुए दिखाई नहीं देते हैं।

रैदास की सामाजिक एवं धार्मिक चेतना को लेकर भी एन. सिंह दलित चिंतकों से विपरीत दिशा में ही खड़े दिखाई देते हैं। अस्तित्व की लड़ाई को लेकर जो लेखन कार्य दलित आलोचना में दिखाई देता है, वह एन. सिंह में कहीं नज़र नहीं आता है। रैदास की विचारधारा एवं चिंतन की परम्परा को स्पष्ट करते समय भी वे बिलकुल अलग नज़र आते हैं। वे लिखते हैं– "भक्त रैदास के लिए निर्गुण और सगुण ब्रह्म समान रूप से उपास्य देव थे। क्योंकि ब्रह्म का कोई भी वह रूप जो शरणागत वत्सल, पतित-पावन, उद्धारक और ग़रीब निवाज है, वह रैदास को ग्राह्य है।"[87] यहाँ इस बात की प्रमाणिकता पर तो नहीं पर एकांगी होने पर संदेह किया ही जा सकता है। निर्गुण संतों का चिंतन जहाँ ऐसे ईश्वर को स्थापित करता है जिसका कोई गुण ही नहीं है। इसे इस रूप में भी कह सकते हैं कि उनका ईश्वर कोई अवतार लिया हुआ भी नहीं है क्योंकि उसमें गुण नहीं होते हैं। यह निर्गुण ईश्वर की कल्पना ही कबीर और रैदास की, ईश्वर के ख़िलाफ़ दिखाई देती है। जिसमें ईश्वर नहीं बल्कि मनुष्य महत्त्वपूर्ण है। निर्गुण के साथ चलने की इस दलित संतों की परम्परा का सटीक विश्लेषण डॉ. धर्मवीर करते हैं। दलित संतों का निर्गुण की ओर जाना, उनका चुनाव नहीं बल्कि उनकी वह मज़बूरी थी। जातिभेद के दंश को दलित संतों ने सहा है। सामाजिक भेदभाव के कारण उनके लिए मंदिर के द्वार बंद किये गए थे। अतः अध्यात्म के क्षेत्र में वे सगुण ईश्वर की भक्ति के अधिकारी नहीं थे इसलिए उन्हें अपने आत्म की उन्नति से होते हुए निर्गुण की और जाना पड़ा।

[86] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. 74
[87] डॉ. एन. सिंह – संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. 101

देश की परम्परा यह मानती है कि उच्च कुल उत्पन्न ईश्वर तुल्य होता है। इसके विरुद्ध निर्गुण ईश्वर की स्थापना दलित संतों ने की है। इस ईश्वर की सामाजिक व्याख्या डॉ. धर्मवीर इस प्रकार करते हैं– "निर्गुण भगवान अजन्मा है। जब यह अजन्मा है तो इतने भर से ब्राह्मणों का पाले श्रेष्ठ वर्ण में जन्म लेने का घमंड चूर-चूर हो जाता है। फिर यह बात समाप्त हो जाती है कि भगवान किसी उच्च कुल में जन्म लेता है। अजन्मा भगवान ब्राह्मण और शूद्र के लिए एक समान हो जाता है। वह सगुण भगवानों की तरह ब्राह्मणों का हित करने के लिए धरती पर जन्म नहीं लेता। ब्राह्मण की सारी लड़ाई अपने श्रेष्ठ जन्म की है। इसलिए निर्गुण के रूप में अजन्मा भगवान ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था को और उसकी श्रेष्ठता को चुनौती देता है।"[88] अब यहाँ एन. सिंह की बात को मानना उचित जान नहीं पड़ता है। जो वे लिखते हैं 'भक्त रैदास के लिए निर्गुण और सगुण ब्रह्म समान रूप से उपास्य देव थे।' इस लड़ाई में रैदास निर्गुण ही हो सकते हैं। सामाजिक भेदभाव की परिस्थिति उन्हें सगुण ब्रह्म उपासक नहीं बना सकती थी। आज भी जातिभेद के दंश को प्रखर रूप में देखा जा सकता है। रैदास की दार्शनिक चेतना को लेकर एन. सिंह लिखते हैं – "रैदास उपनिषद् और अद्वैत वेदांत और तथा कुछ अंश तक रामानुज के विशिष्ट द्वैतवाद से प्रभावित प्रतीत होते हैं।"[89] यहाँ भी रैदास पर हिन्दू विचारधारा के प्रभाव को एन. सिंह दिखाने की कोशिश करते हुए नज़र आते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि एन. सिंह रैदास के 'भक्त' रूप को ही विश्लेषित करने के प्रयास में दिखाई देते हैं। वेद, स्मृति और पुराणों का विरोध करने वाले रैदास को उन्हीं से प्रभावित मानते हैं। जबकि रैदास कहते हैं – 'वेद कतेब मरम के भांडे।'/ 'जग में वेद बैद मानी। इनमें और, अगथ कछु औरें, कहा कौन पर कीजै।'[90] जातिभेद का विरोध करने वाले, समतामूलक समाज (बेगमपुरा) का सपना देखने वाले, एक ऐसे समाज निर्माण के लिए

[88] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 21
[89] डॉ. एन. सिंह - संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, पृ. सं. 105
[90] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 57

प्रयत्नरत जहाँ मनुष्य-मनुष्य में भेद न हो, ऐसे रैदास का मूल्यांकन यहाँ अछूता ही रह गया ऐसा प्रतीत होता है।

1.2.4 रैदास और डॉ. धर्मवीर

मध्ययुगीन कवियों पर बात करते समय विशेषतः दलित संतों पर बात करते समय अस्पष्टता का अँधेरा ही छाया हुआ-सा प्रतीत होता है। अँधेरा इस अर्थ में कि रैदास और कबीर पर बात करते समय उनका जन्म-मृत्यु, जीवन-क्रम, उनकी विचारधारा आदि के बारे में किसी भी प्रकार का स्पष्ट मत अभी तक नहीं बना है। विद्वानों में अभी भी इन बातों को लेकर विवाद दिखाई पड़ते हैं। डॉ. धर्मवीर मध्ययुगीन संतों विशेषतः कबीर-रैदास एवं उनसे सम्बंधित किंवदंतियों एवं परम्पराओं पर हजारीप्रसाद द्विवेदी की तरह विश्वास कर आगे नहीं बढ़ते बल्कि उनकी समाजशास्त्रीय व्याख्या कर, उसे विश्लेषित कर, सत्य के करीब पहुँचने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं।

रैदास पर डॉ. धर्मवीर ने एक आलोचनात्मक किताब लिखी है जो पहले "गुरु रविदास" नाम से छपी थी और बाद में इसे पुनः प्रकाशित एवं विस्तृत कर "संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय" शीर्षक से प्रकाशित किया गया। रैदास पर लिखी गई अब तक की आलोचनात्मक किताबों में से यह एक महत्त्वपूर्ण किताब है। कई आलोचकों ने रैदास की कविता का मूल्यांकन कर उनके व्यक्तित्व को ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। डॉ. धर्मवीर की आलोचना इससे बिलकुल अलग है। रैदास पर लिखी गयी इस किताब में समाजशास्त्रीय पद्धति से विचार करने का प्रयास दिखाई देता है।

क्रांति और प्रतिक्रांति की परम्परा इस देश की रही है। इसे डॉ. धर्मवीर स्पष्ट शब्दों में विश्लेषित करते हैं। वे लिखते हैं– "वह व्यवस्था प्रतिक्रांति की है जिसमें अस्पृश्यता का बर्ताव होता है। यह अस्पृश्यता वर्ण व्यवस्था से, जाति व्यवस्था से या स्वयं अपने आपसे निकलती

है, लेकिन किसी भी रूप में यह प्रतिक्रांति है। अस्पृश्यता के विरुद्ध क्रांति जन्म लेती है। यह क्रांति अस्पृश्यता का नाश करती है, जाति व्यवस्था पर कुठाराघात करती है या वर्ण व्यवस्था को कोसती है, लेकिन किसी भी रूप में यह क्रांति है।"[91] यहाँ यह देखा जाए, डॉ. धर्मवीर क्रांति और प्रतिक्रांति को कैसे विश्लेषित कर रहे हैं। अब इसे मध्ययुग पर लागू किया जाए तो निर्गुण परम्परा क्रांति के पक्ष में आती है और जो अस्पृश्यता, वर्ण व्यवस्था को मानने वाले वे सभी प्रतिक्रांति के पक्ष में दिखाई देते हैं।

डॉ. बी. आर. आंबेडकर के सामने क्रांति और प्रतिक्रांति को लेकर जो कसौटी बनी हुई दिखती है, वह सामाजिक सुधार को लेकर दिखती है। इसी के आधार पर वे प्राचीन भारत के इतिहास को देखते हैं तथा उसे विश्लेषित कर पुनः इतिहास को रचते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय समाज सुधार के इतिहास के बारे में डॉ. आंबेडकर लिखते हैं– "प्रथम समाज सुधारक और उनमें सबसे महानतम गौतम बुद्ध थे। समाज सुधार का इतिहास ही बुद्ध से शुरू होता है और कोई भी इतिहास उनकी उपलब्धियाँ बताए बिना अधूरा रहेगा।"[92] यहाँ देखा जा सकता है कि डॉ. आंबेडकर भारतीय समाज सुधार का इतिहास किससे और कब से मानते हैं।

बुद्ध के समाज सुधार में सबसे प्रमुख एवं ज़रूरी बातें वर्ण-व्यवस्था का विरोध, धार्मिक पाखंड का विरोध, वर्ण-व्यवस्था के कारण बने ऊँच-नीच का विरोध आदि दिखाई देती हैं। यही बातें निर्गुण संतों में भी दिखाई देती हैं। अस्पृश्यता, वर्ण-व्यवस्था के विरोध में जो आन्दोलन हुए वही क्रांति के परिधि में आते हैं और उन्हें ही 'क्रांति' की संज्ञा दी गई है। क्रांति की परम्परा बुद्ध से भी पहले से माननी होगी जिसमें चार्वाक भी आते हैं। क्रांति और प्रतिक्रांति के डॉ. धर्मवीर दो रूप मानते हैं, एक देशी और विदेशी। वे लिखते हैं – "क्रांति के भी देशी और विदेशी दोनों रूप हैं। कभी यह चार्वाक, बौद्ध और जैन मतों के अनुसार भीतर से जन्म लेती है और कभी यह विदेशी प्रभाव के कारण भारतीय समाज की मज़बूरी बन जाती

[91] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 15

[92] डॉ. बी. आर. आम्बेडकर – क्रांति तथा प्रतिक्रांति (बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय, खंड 7), पृ.सं. 30

है।"[93] यहाँ यह देखा जा सकता है कि कबीर और रैदास क्रांति के पक्ष में हैं। उनका समाज सुधार आन्दोलन क्रांति की परिधि में आता है जिसका रूप देशी है।

डॉ. धर्मवीर की आलोचना रैदास के निर्वर्ण संप्रदाय को स्पष्ट करने के प्रयास में तत्कालीन परिस्थितियों को देखने-समझने का प्रयास करती है। सगुण और निर्गुण के सिद्धांतों की सामाजिक व्याख्या यह आलोचना प्रस्तुत करती है। अब तक की हिंदी आलोचना में इस बारे में सोचा ही नहीं गया कि क्या दलित संतों को निर्गुण एवं सगुण दोनों में से किसी का भी चुनाव करने की स्वतंत्रता थी? कई इतिहासकार इस बात को मानते हैं कि तत्कालीन परिस्थिति में छुआछूत थी। रामानंद भी वर्ण-व्यवस्था को मानते थे इसलिए वे भी अपने सामाजिक जीवन में अस्पृश्यता का पालन करते थे। इस परिस्थिति में दलित समाज को मंदिर में प्रवेश कर भक्ति करना क्या सहज स्वीकार्य था? नहीं था। जातिभेद इतना प्रखर था जिसके कारण रैदास को यह कहना पड़ा – 'जात पाँत के फेर मंहि, उरझि रह्यो सब लोग, / मानुषता कूँ खात हई, रविदास जात कर लोग।'

जातिगत भेदभाव के कारण समाज में दलितों को यह अधिकार नहीं था कि वे जाकर सगुण ईश्वर की उपासना कर सके। इस भेदभाव के ही कारण वे निर्गुण की ओर चले गए। डॉ. धर्मवीर लिखते हैं – "यह निर्गुणी संतों की प्राप्ति नहीं बल्कि उनकी मज़बूरी थी कि वे निर्गुण उपासना पर पहुँचे। उन्होंने राम और कृष्ण की पूजा करनी चाही थी पर उन्हें यह अधिकार नहीं मिल सका। अंत में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वे निर्गुण की खोज करके रह गए।..."[94] यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है कि सगुण एवं निर्गुण का भेद सामाजिक भेद रहा है। दलित संतों के पास सगुण एवं निर्गुण के चुनाव का अधिकार ही नहीं था। वे सिर्फ़ निर्गुण का ही चुनाव कर सकते थे। कहीं कोई अछूत या शूद्र सगुण की उपासना करता हुआ नहीं

---

[93] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 15

[94] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 17

दिखाई देता है। इस सामाजिक भेद को नज़र-अंदाज़ करने से दलित संतों के आन्दोलन को नहीं समझा जा सकता है।

रैदास श्रमिक संस्कृति से आते हैं। इस बात को डॉ. धर्मवीर सामने लाते हैं– "निर्गुण के सभी उपासकों ने अपनी जीविका आप कमाने की नीति अपनाई थी। इन्होंने कमा कर ही नहीं खाया बल्कि कमा कर खाने का अपना जीवन दर्शन घोषित किया।"[95] इस बात के प्रमाण रैदास-कबीर की वाणी में जगह-जगह दिखाई देते हैं।

सामाजिक भेदभाव के कारण वे निर्गुण तक गए और अपना अलग दर्शन भी खड़ा किया है। उनका ईश्वर सगुण ईश्वर नहीं है इसलिए रैदास हो या कबीर अपनी वाणी में दशरथ के राम को अपना ईश्वर नहीं मानते हैं। इस बात का प्रमाण दोनों की वाणी देती है। रैदास कहते हैं – "रविदास हमारो राज जी दशरथ करि सुत नाहि।"[96] इस बात को कहकर वे जन्मगत श्रेष्ठता के ब्राह्मण घमंड को ही तोड़ देते हैं। सामाजिक भेदभाव के कारण सगुण एवं निर्गुण में बहुत बड़ी खाई दिखाई देती है। दोनों विपरीत दिशा में दिखाई देंगे। वर्ण-व्यवस्था के कारण मनुष्य को मनुष्य का दर्जा नहीं मिलता है। ऐसी व्यवस्था का विरोध निर्गुण काव्य में सर्वोपरि दिखाई देता है, वहीं सगुण में कोई कवि वर्ण-व्यवस्था का विरोध करता हुआ दिखाई नहीं देता है। डॉ. धर्मवीर परम्परा और संभावना के बीच रैदास को देखते हैं। वह इस रूप में – "चिंतन के नाते रैदास की सी देश में एक परम्परा है। इससे यह भी तय होता है कि रैदास के चिंतन का एक भविष्य और उसकी एक सम्भावना भी है। परम्परा और सम्भावना के बीच में रैदास पड़ते हैं। रैदास की परम्परा शम्बूक और एकलव्य की परम्परा है। रैदास की सम्भावना डॉ. आंबेडकर और उनका आन्दोलन है।"[97]

---

[95] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 26
[96] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 33
[97] डॉ. धर्मवीर – संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, पृ. सं. 53

डॉ. धर्मवीर दलित चिंतन की सीमाओं के साथ-साथ संभावनाओं को भी रेखांकित करते हैं। उनकी आलोचना समाजशास्त्रीय होने के कारण जात, वर्ग, धर्म आदि बातें उसके आधार हो जाते हैं। रैदास की जिस दार्शनिक परम्परा को डॉ. धर्मवीर स्पष्ट करते हैं वह काफ़ी महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। चार्वाक, बुद्ध, रैदास, कबीर, स्वामी अछुतानंद, डॉ. आंबेडकर आदि उस परम्परा के हैं जिन्हें क्रांति की संज्ञा में रखा जा सकता है। मध्ययुग में दलित संतों का जो आन्दोलन रहा है वह मूलतः वर्ण-व्यवस्था के ख़िलाफ़ किया गया आन्दोलन रहा है। दलित समाज की मुख्य समस्या भेदभाव की रही है, जिसके कारण इसके ख़िलाफ़ वे लड़ते दिखाई देते हैं और एक समतामूलक समाज को खड़ा करने का प्रयास अपने काव्य के माध्यम से भी अभिव्यक्त करते हैं जिसका नाम 'बेगमपुरा' है। वही सपना आगे चलकर डॉ. आंबेडकर के कार्यों में दिखाई देता है- समतामूलक राष्ट्र का सपना। जिसके लिए सबसे पहले जातिप्रथा को मिटाना ज़रूरी है, इसके बग़ैर हर प्रगति महत्त्वहीन बनी रहेगी।

1.2.5 रैदास और कँवल भारती

दलित संतों के साहित्य का विकृतिकरण हुआ है, उसे कँवल भारती 'घोटाले' का नाम देते हैं। साहित्यिक घोटाले करने वालों में वे चार नामों को प्रमुख मानते हैं, जिसमें आ. रामचंद्र शुक्ल, परशुराम चतुर्वेदी, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं रामविलास शर्मा हैं। कँवल भारती इनके बारे में लिखते हैं – "ये हिंदी साहित्य में सबसे बड़े घोटाले बाज हैं। इन्होंने हर स्तर पर वैचारिक प्रदूषण पैदा किया है।"[98] दरअसल यह वैचारिक प्रदूषण विशेषतः हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में दलित संतों को लेकर देखा जा सकता है। कँवल भारती के अनुसार यह वैचारिक प्रदूषण यह है कि – "कबीर और रैदास के बारे में अन्य ब्राह्मणवादी आलोचकों ने बड़े घपले किये हैं। उन्होंने इन्हें ब्राह्मणवादी संत रामानंद का शिष्य बनाने से लेकर वेदांती

[98] कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 7 (निवेदन)

तक बना दिया है। उनके व्यक्तित्व का विकृतिकरण तो किया ही है, उनके कृतित्व का भी भरपूर ब्राह्मणीकरण करने की कोशिश की गयी है।"[99]

इस वैचारिक प्रदूषण से दलित समाज को दूर रखने के प्रयास दलित चिंतकों ने समय-समय पर किये हैं। 'संत रैदास' यह किताब भी इसी उद्देश्य के तहत लिखी गई है- "दुर्भाग्य से इन ब्राह्मणवादी लेखकों की स्थापनाएँ ही दलित वर्गों के मानस पर भी संस्कार बनकर छा गयी हैं। अतः इन मिथ्या संस्कारों के प्रभाव से दलित संतों के चरित्रों को मुक्त करने के लिये दलित लेखकों को ही प्रभावी भूमिका निभानी होगी।"[100]

भक्ति काव्य के उदय के जो कारण रहे हैं, उसके बारे में कई विद्वानों के कई सारे मत दिखाई देते हैं। कँवल भारती भी अपनी ओर से भक्ति काव्य के उदय के कारणों की तलाश करते हैं। जिसके केंद्र में संत काव्य धारा है। वे लिखते हैं- "यदि संत काव्य की पृष्ठभूमि में कोई मुख्य कारण है तो वह है बौद्धधर्म का विकास और उसके पतन के बाद हुआ परिवर्तन।"[101]

संत काव्य की पृष्ठभूमि में कोई मुख्य कारण रहा है तो वह - बौद्ध धर्म का विकास और पतन के बाद का परिवर्तन ऐसा कँवल भारती मानते हैं। इस बात को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं – "बौद्धधर्म के पतन के बाद काफ़ी भिक्षुओं ने गृहस्थों का वेश ग्रहण कर लिया था। वे सुदूर ग्रामों में जाकर धर्मदेशना करते थे। उनके देशना ग्रहण करने वालों में मुख्यतया वे लोग थे, जो दलित समाज के थे। यह एक तो सुरक्षा की दृष्टि से भी ज़रूरी था, और दूसरे ब्राहमणादि द्विज समाज में उनको सम्मान भी प्राप्त नहीं था। कालान्तर में इन्हीं प्रच्छन्न बौद्ध उपदेशकों की शिष्य परम्परा में दलित जातियों में अनेक प्रभावशाली संतों का उदय हुआ, जिन्होंने पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति-साहित्य में निर्गुणवाद की क्रांतिकारी काव्यधारा प्रवाहित की।"[102]

---

[99] कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 7 (निवेदन)
[100] कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 8
[101] कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 19
[102] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 22

यह जस-का-तस हुआ हो ऐसा कहा नहीं जा सकता पर इस बात से इंकार भी नहीं किया जा सकता कि 15वीं शताब्दी तक बुद्ध के विचारों का समाज पर प्रभाव न रहा हो। यह प्रभाव कई परम्पराओं से होता हुआ आया है, पर उसी रूप में नहीं जिस रूप में यह बुद्ध कालीन समाज पर रहा है।

भाषा की दृष्टि से यह बात सहज ही दिखाई देती है कि सिर्फ़ रैदास ही नहीं निर्गुणधारा के सभी कवि शास्त्र सम्मत भाषा का विरोध करते रहे हैं। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अध्ययन करने पर हम बुद्ध की परम्परा तक पहुँचते हैं, जहाँ बुद्ध शास्त्र सम्मत भाषा को छोड़ जन भाषा (पाली) का धर्मोपदेश करने के लिए प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। कँवल लिखते हैं– "...उन्होंने (संत) कृत्रिम, दुरूह और शब्दाडम्बर से पूर्ण भाषा का प्रयोग कदापि नहीं किया। इसी आधार पर विद्वानों ने संतों के साहित्य को लोक साहित्य और उनके धर्म को लोक धर्म की संज्ञा दी है।"[103]

बुद्ध की क्रांति का विस्तृत रूप निर्गुणधारा का आन्दोलन रहा है। बुद्ध की क्रांति में वेदों को आप्त वचन मानने से इंकार दिखाई देता है और यही विरोध जस-का-तस निर्गुणधारा में भी देखने को मिलता है। रैदास कहते हैं - 'चारिउ बेद किया खंडौती' वे यह भी कहते हैं कि-

"बेद कतेब जब कछु नहीं थे, नहीं थे पंडित काजी।
मैं बूझूं तुझ पंडित ज्ञानी, कहां रची थी बाजी?"[104]

बुद्ध की परम्परा अनीश्वरवादी परम्परा पर आधारित है। निर्गुणधारा की परम्परा भी अनीश्वरवादी परम्परा पर आधारित दिखाई देती है- "मस्जिद सो कुछ घिन नहीं, मंदिर सों नहिं प्यार। इन में अल्लाह राम नहिं, कहै रैदास चमार।।"[105]

---

[103] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 25
[104] डॉ. धर्मवीर – महान आजीवक : कबीर, रैदास और गोसाल, पृ. सं. 506
[105] डॉ. धर्मवीर – महान आजीवक : कबीर, रैदास और गोसाल, पृ. सं. 502

बुद्ध के उपदेश में 'अपना स्वामी स्वयं बनो' तथा 'अपने इन्द्रियों पर संयम' ये बातें देखने को मिलती हैं। जिसका पालन रैदास अपने जीवन में करते हुए दिखाई देते हैं- "तोडूँ न पाती, पूजूँ न देवा। सहज समाधि करूँ हरि सेवा।"[106] चंचल चित्त को स्थिर करना, इन्द्रियों को संयमित करना यही बौद्ध दर्शन का सार रहा है। इस बात को स्पष्ट करते हुए कँवल भारती 'धम्मपद' को उद्दृत करते हैं – "धम्मपद में उपदिष्ट है – 'चाहे कोई कितनी ही संहिताओं का पाठ करे, वर्षों यज्ञ करे, पूजापाठ करे, किन्तु परिशुद्ध मन वाले की स्मृति भावना के आगे सब व्यर्थ है।'"[107]

निष्कर्षत: कँवल भारती जिस बात को अपनी आलोचना के माध्यम से सामने ले आते हैं, वह यह कि निर्गुणवाद की स्थापना कबीर और रैदास ने की है। जिसका श्रेय उन्हीं को जाता है, पर वे (रैदास एवं कबीर) उसमें (निर्गुण धारा में) निहित चिंतन की धारा के प्रणेता नहीं थे। बुद्ध इस धारा के आदिस्रोत रहें। अतः बुद्ध के ही चिन्तन को आगे बढ़ाने का, प्रसारित करने का, जीवित रखने का कार्य रैदास ने किया है। रैदास के वाणी में बुद्ध के चिन्तन की गूंज ओशो को भी दिखाई देती है। ओशो की बात को कँवल भारती रेखांकित करते हैं– "रैदास चमार हैं। जैसे किसी गहन अन्तस्तल में बुद्ध अब भी गूंज रहे हैं। वही आग। लेकिन रैदास ने उस आग को आग नहीं बनने दिया। उस आग को रोशनी बना दिया। आग जला भी सकती है और प्रकाश भी दे सकती है। बुद्ध के वचन अंगारों जैसे हैं। बड़ा साहस चाहिए उन्हें पचाने का। अंगारे पचाओगे तो साहस तो चाहिए ही चाहिए। रैदास के वचन फूलों जैसे हैं। पचा जाओगे, तब पता चलेगा कि आग लगा गये। आग के फूल हैं। आग की फुलझड़ियाँ हैं। देखने में फूल लगते हैं।"[108] कँवल भारती की आलोचना रैदास की चिन्तन धारा को स्पष्ट करते हुए बुद्ध के चिंतन से जोड़ती है। रैदास को 'भक्त' की श्रेणी से निकाल कर 'संत' में

[106] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 56
[107] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 55
[108] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 67

स्थापित करती है। रैदास की चिन्तनधारा में बुद्ध की चिन्तन धारा है एवं दर्शन है। इस बात को ओशो तक ने माना है।

1.3 दलित आलोचना के अंतर्विरोध का रेखांकन :

हिंदी दलित आलोचना भले ही किसी एक विचारधारा को लेकर आगे बढ़ रही हो पर उसमें समानताओं के साथ-साथ अंतर्विरोधों को भी देखा जा सकता है। दलितों का सबसे ज़्यादा शोषण आत्मा, बैकुंठ, ईश्वर, पुनर्जन्म और धार्मिक ग्रंथ आदि का भय दिखाकर किया गया। फिर भी डॉ. धर्मवीर का यह उद्धरण देखिए- ''कबीर में भारतीय सन्दर्भ के भगवान तथा विदेशी सन्दर्भ के पैगम्बर के सारे गुण मौजूद हैं। वे भक्त के रूप में भगवान की खोज करने नहीं गए बल्कि भगवान के रूप में अपना आपा खोज कर गए हैं। इसके अलावा, भगवान जब आता है तो वह किसी शास्त्रीय भाषा में नहीं बोला करता है बल्कि अपना शास्त्र खुद लेकर आता है।''[109] जिसके कारण दलितों का शोषण हुआ उसी रूप में कबीर को बैठाना, वैचारिक पतन नहीं है तो क्या है? कबीर की वाणी ही ईश्वरीय सत्ता का विरोध करती है- 'दस औतार निरंजन कहिए, सो अपना ना होई।'

कँवल भारती और डॉ. धर्मवीर इन दोनों में कबीर वाणी के प्रक्षिप्त दोहे को लेकर भी साफ़ अंतर्विरोध दिखाई देते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा संकलित 'कबीर वाणी' में 106 वें पद में, यह साखी है। जिसे कबीर की माना जाता है-

''मसि-कागद छूयो नहिं, कलम गही नहिं हात।
चारिउ जुग को महातम, मुखहि जनाई बात ।।''

इस साखी को डॉ. धर्मवीर प्रक्षिप्त मानते हैं। वे कहते हैं- 'माहात्म्य सुनना और सुनाना वैष्णवों की परम्परा और आदत है, कबीर की नहीं। ऐसा किसी और ने कबीर के बारे में लिखा

[109] डॉ. धर्मवीर - कबीर : बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, पृ. सं. 110

है।’ आजीवक परम्परा से तुलना कर देखने पर डॉ. धर्मवीर सही प्रतीत होते हैं। कँवल भारती इस साखी से सम्बन्धित जो विश्लेषण करते हैं, वह बहुत कमज़ोर दिखाई देता है। कँवल भारती लिखते हैं – “इस साखी से यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि कबीर अनपढ़ थे। ...यदि काग़ज़ पर क़लम से लिखना ही किसी के शिक्षित होने की पहचान है तो इस आधार पर बुद्ध को भी अशिक्षित मानना होगा, महावीर को भी अनपढ़ मानना होगा, क्योंकि इनमें से किसी ने भी न क़लम हाथ में पकड़ी थी और न काग़ज़ छुआ था।”[110] हर जगह कबीर को सही सिद्ध करने के प्रयास में वे अपनी आलोचना कमज़ोर बना देते हैं। बुद्ध के बारें में कहें तो वे क्षत्रिय पैदा हुए थे और वर्ण-व्यवस्था में वेदों का अध्ययन करने का अधिकार उन्हें था। इस बात को वे भूल जाते हैं।

कबीर की परम्परा आजीवकों से आयी हुई परम्परा है, यह बात सिद्ध करती हुई कँवल भारती की आलोचना में भी कई जगह अंतर्विरोध है और इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनकी किताब ‘संत रैदास (एक विश्लेषण)’ में वे लिखते हैं- “बौद्ध धर्म के दो संप्रदाय हुए- हीनयान और महायान। महायान ने बुद्ध को अलौकिकता प्रदान की। इसी से आगे चलकर वज्रयान सम्प्रदाय पैदा हुआ और इसी संप्रदाय से चौरासी सिद्ध हुए। सिद्ध परम्परा ने कालान्तर में नाथ परम्परा का रूप लिया और नाथ परम्परा का ही परिष्कृत रूप है दलित संतों की निर्गुणवादी चिंतन धारा। अत: कबीर और रैदास संतों को निर्गुणवाद की स्थापना का श्रेय ज़रूर जाता है, क्योंकि यह परिवर्तन उनके युग की तात्कालिक आवश्यकता थी, परन्तु वे उस चिंतनधारा के जन्मदाता नहीं थे, अपितु उन्होंने उस धारा का विकास किया था, जिसके आदिस्रोत बुद्ध थे।”[111] वे जब ‘आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज’ किताब लिखते हैं इसके ठीक विपरीत अपना मत रखते हैं। वे लिखते हैं- “सिद्ध-नाथ परम्परा एक बौद्ध परम्परा है और कबीर की परम्परा आजीवक परम्परा है। उनके बीच

---

[110] कँवल भारती – कबीर : एक विश्लेषण, पृ. सं. 16

[111] कँवल भारती – संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 47

समानताएँ कम हैं और अंतर अधिक है।.... कबीर भी, बौद्ध परम्परा के प्रवक्ता नहीं हैं। उनका धर्म आजीवक है और आजीवक कबीर का भेद न्यारा है।"[112]

आजीवक परम्परा हो या बौद्ध परम्परा इन अवैदिक परम्पराओं का इतिहास मौखिक ही रहा है। जिसके कारण इनके लिखित साहित्य पर विश्वास कर अगर निष्कर्ष निकाले जाए तो कहा नहीं जा सकता वे ठीक हीं निकलते हों। कँवल भारती का चिंतन कबीर को आजीवक परम्परा से तो जोड़ता है, जिसके कारण बहुत हद तक वे विवेक सम्मत निष्कर्ष निकालते हैं, पर बौद्ध परम्परा से वे कबीर को जोड़ते दिखाई नहीं देते इसलिए यहाँ अंतर्विरोध दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में, बौद्ध परम्परा का संघर्ष वैदिक परम्परा से रहा है। जिसके कारण उसे विरोध, विकृति एवं समाहार की सर्वग्रासी प्रक्रिया का शिकार होना पड़ा है। इसी कारण बुद्ध के मूल वचन के रूप में उसका ज़्यादातर हिस्सा सुरक्षित नहीं रहा है। बग़ैर बुद्ध के कबीर और आजीवकों का रिश्ता जुड़ते हुए दिखाई नहीं देता है। इसलिए फिर एक बार दलित आलोचक एवं चिंतकों को इस बात पर सोचना चाहिए। कँवल भारती का पूर्व मत ही निष्कर्ष रूप में सही प्रतीत होता है- "लोकायत का विकास पहले बौद्धधर्म में हुआ और बौद्धधर्म का विकास संतमत में हुआ है।...इसका अर्थ सिर्फ़ यह है कि बौद्ध धर्म के काफ़ी सिद्धांतों पर लोकायत के दर्शन का प्रभाव है। बुद्ध ने लोकायत के कुछ विचारों को स्वीकार किया है, कुछ विचारों को अस्वीकार किया है और कुछ विचारों में परिवर्तन किया है। इसी तरह संतमत में भी पूरी तरह बौद्धधर्म का समागम नहीं है, बल्कि संतों के धर्म में दोनों का समावेश है, लोकायत के मुकाबले संतों ने बौद्धधर्म से ज़्यादा ग्रहण किया है।"[113]

[112] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 154
[113] कँवल भारती – दलित धर्म की अवधारणा और बौध्दधर्म, पृ. सं. 43

कँवल भारती की आलोचना में दो प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। एक जगह, दलित आलोचना के संदर्भ में वीर भारत तलवार ने रेखांकित किया है, वे दो प्रवृत्तियाँ हैं- "पहली प्रवृत्ति हिंदी साहित्य में प्रगतीशील समझे जानेवाले बड़े साहित्यकारों के बारे में अब तक मान्य कुछ स्थापनाओं को चुनौती देने की है।"[114] यहाँ विशेष रूप से मध्ययुगीन दलित कवियों को केंद्र में रखा गया है। और दलित आलोचना की दूसरी प्रवृत्ति "अपने बड़े कवियों को द्विज आलोचकों के कब्जे से छुड़ाने की है।"[115]

ये बातें महत्त्वपूर्ण हैं पर हिंदी दलित आलोचना की कमियाँ भी हैं। कबीर एवं रैदास के अस्तित्व एवं दर्शन-परंपरा की पहचान में वे बुद्ध से लोकायत की आजीवक परंपरा तक पहुँच तो जाते हैं, पर उनके (कबीर-रैदास) अनुभव एवं जीवन संघर्ष से जो आदर्श समाज या लोक की कल्पना उनकी कविताओं में प्रस्तुत हुई है, उसका मूल्यांकन छूट जाता है। आदर्श समाज की इस कल्पना को 'Seeking Begumpura' नामक किताब में गेल ओमवेट ने बड़ी सूक्ष्मता से चिन्हित किया है। इस संदर्भ में विशेष बात यह भी है कि "Utopias were not available in Sanskrit. Rather they are found in the vision of dalit-bahujan intellectuals of the radical bhakti movement of the fifteenth to seventeenth centuries."[116] रैदास को आदर्श समाज की कल्पना का सबसे पहले श्रेय जाता है। ओमवेट ने लिखा है, "The bhakti radical, Sant Ravidas (c. 1450-1520), was the first to formulate and Indian version of utopia in his song *Begumpura*."[117]

'बेगमपुरा' एक ऐसा शहर है, जहाँ दुःख नहीं, वह जातिविहीन, वर्गविहीन, आधुनिक समाज है। जिसमें मंदिरों का उल्लेख नहीं; बेगमपुरा एक ऐसे ज़मीन का वर्णन करता है जहाँ कर, कठिन परिश्रम और उत्पीड़न नहीं है। किसी तरह की असमानता (पदानुक्रम) नहीं है सभी

[114] संपा. राजकिशोर – कबीर की खोज, वीर भारत तलवार - दलित आलोचना की कसौटी (लेख), पृ. सं. 163
[115] संपा. राजकिशोर – कबीर की खोज, वीर भारत तलवार - दलित आलोचना की कसौटी (लेख), पृ. सं. 163
[116] Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Pg.No. 15 (Introduction)
[117] Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Pg.No. 7 (Introduction)

समान हैं। ऐसे समाज की कल्पना रैदास ने की है और इसका मूल्यांकन हिंदी दलित आलोचना में समाधानकारक नहीं हुआ है। डॉ. धर्मवीर ने यह लिखा है कि 'रैदास की परम्परा शम्बूक और एकलव्य की परम्परा है। रैदास की सम्भावना डॉ. आंबेडकर और उनका आन्दोलन है।' तो वहीं कँवल भारती की आलोचना इस रूप में व्याख्या करती है कि "यही संतों का सुन्न महल है, जिसमें सुख-दुख, राग-मोह, संयोजन, तृष्णा, आस्रव और भव-बंधन नष्ट हो जाते हैं और साधक निर्वाण लाभ करता है।.... बौद्ध धर्म का प्रभाव ही था कि दलित संत जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति के लिये निर्वाण के आकांक्षी हुए।"[118]

गेल ओमवेट महाराष्ट्र के दलित साहित्य के संदर्भ में लिखती हैं - "Dalit literature had emerged as powerful voice oppressed - first in Maharashtra, later in other regional languages. But it has remained as a literature of protest, lacking the broad vision of the earlier 'Begumpura' intellectuals; and to a large degree its consumers, its audience, have been caste Hindus."[119] यह बात हिंदी साहित्य पर भी लागू होती है वह अपनी व्यापक दूर दृष्टि के अभाव में लगता है सिर्फ़ विरोध तक ही सीमित हो चुका है। "From Namdev, Kabir, Ravidas and Tukaram through Phule, Rambai and Ambedkar, dalit-bahujan and may women intellectuals have evoked an ideal of a casteless, classless society, and have increasingly outlined its characteristics as a prosperous, democratic, socialist, development-oriented society."[120] अतः यह साहित्य का कर्तव्य बन जाता है कि वह इस आदर्श समाज को एवं इनमें निहित जीवन मूल्यों का उचित विश्लेषण कर साहित्य एवं समाज का उचित मार्गप्रेषित करें। हिंदी दलित

---

[118] कँवल भारती - संत रैदास : एक विश्लेषण, पृ. सं. 87

[119] Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Pg.No. 269

[120] Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Pg.No. 267

साहित्य हो या हिंदी आलोचना या फिर भारत का दलित-अति पिछड़ा समाज उसे ओमवेट की इस बात पर सोचना होगा - "Dalit and bahujans themselves are only beginning to adjust to the new order, and the articulation of how to deal with it still remains caught within old shibboleths- either simple support of globalization without nuances, or an updating of the old Left paradigm of opposition to 'LPG' (Liberalization, privatization and globalization). In this sense, Begumpura remains to be translated into a vision appropriate to the new ear."[121]

[121] Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Pg.No. 275

द्वितीय अध्याय

कँवल भारती की आलोचना : हिंदी नवजागरण का दलित सन्दर्भ

'हिंदी नवजागरण' से जिस नाम को जोड़ा जा सकता है वह नाम है – डॉ. रामविलास शर्मा। प्रो. नामवर सिंह के शब्दों को उधार लेकर कहा जा सकता है कि– "भारतेंदु हरिश्चन्द्र के उदय के साथ हिंदी में एक नए युग का आरम्भ हुआ, यह मान्यता तो बहुत पहले से प्रचलित रही है; किंतु इस नए युग को 'नवजागरण' नाम देने का श्रेय हिंदी में डॉ. रामविलास शर्मा को जाता है। 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977) नामक पुस्तक के द्वारा उन्होंने 'नवजागरण' ही नहीं बल्कि 'हिंदी नवजागरण' की संकल्पना प्रस्तुत की। इससे पहले भारत में नवजागरण की चर्चा प्राय: 'बंगाल नवजागरण' के रूप में ही होती रही है।"[122] यहाँ नामवर सिंह की इस बात में देखा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने 'बंगाल नवजागरण' के बरअक़्स 'हिंदी नवजागरण' के अस्तित्व को प्रस्तुत कर एक बड़ा विमर्श खड़ा किया है।

इस विमर्श में कई सारे नाम जुड़ते चले गए - वीरभारत तलवार, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, शम्भुनाथ, कर्मेन्दु शिशिर आदि। डॉ. रामविलास शर्मा एवं वीरभारत तलवार हिंदी नवजागरण को स्पष्ट करते हुए हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों को भी प्रस्तुत करते हैं। वे हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों के साहित्य एवं चिंतन का मूल्यांकन भी प्रस्तुत करते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में हिंदी के यह आलोचक, हिंदी नवजागरण के अग्रदूत एवं उनका साहित्य, दलित प्रश्न के साथ कहीं जुड़ता है की नहीं और यदि जुड़ता है तो किस रूप में, इसे देखने की कोशिश इस अध्याय में की जाएगी। साथ-ही कँवल भारती की आलोचना हिंदी नवजागरण, हिंदी नवजागरण के अग्रदूत, हिंदी नवजागरण की दलित धारा एवं उसके रचनाकारों को किस रूप में देखती है, उसका मूल्यांकन करती है, इन बातों को भी देखने-समझने के साथ उसे विश्लेषित कर, उसका मूल्यांकन करने का प्रयास भी यहाँ किया जाएगा।

---

[122] नामवर सिंह – हिंदी का गद्यपर्व, पृ. सं. 84

2.1 हिन्दी नवजागरण की अवधारणा

'नवजागरण' के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं। जैसे – पुनर्जागरण, नवजागरण, पुनरुत्थान, नवोत्थान आदि। फिर भी ये शब्द अपने-आप में एक निश्चित अर्थ लिए हुए हैं। 'पुनर्जागरण' का जो शाब्दिक अर्थ है, वह यह है कि – "किसी लुप्त प्रायः अथवा बिसरी हुई संस्कृति एवं सभ्यता का पुन: जीवित या सचेत होना।"[123] अंग्रेजी भाषा में 'पुनर्जागरण' एवं 'नवजागरण' के लिए 'रेनेसां' (Renaissance) शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका सामान्य अर्थ यह माना जाता है कि, "प्राचीन युग की उन्नत यूनानी एवं रोमन सभ्यता जो मध्यकाल में प्राय: लुप्त हो चुकी थी, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में पुनर्जागरण काल में फिर से सजीव हो उठी। 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक के समय को यूरोप में पुनर्जागरण काल माना जाता है।"[124]

भारतीय संदर्भ में नवजागरण को क्या 'रेनेसां' कहा जा सकता है? इस बात का उत्तर नामवर सिंह की बात को आधार बनाकर कहा जाए तो 'ना' में होगा। वे लिखते हैं - "इस युग के भारतीय विचारकों और साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत यूरोप के पन्द्रहवीं शताब्दी के चिंतक और साहित्यकार न थे। बल्कि इसके विपरीत प्रेरणास्रोत के रूप में अधिकांश विचारक उस काल के थे जिसे यूरोप में 'एनलाइटेनमेंट' का काल तथा उसके बाद का काल कहा जाता है। स्वयं बंकिम की सहानुभूति रूसो और प्रूधों के साथ थी और वे कांत, जान स्टुअर्ट मिल तथा हर्बर्ट स्पेंसर से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कमोबेश यही स्थिति बंगाल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, देरेज़ियो आदि की दिखती है और हिंदी में महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल की भी। उल्लेखनीय है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' ज्ञान की पत्रिका कही गई है और उनका गद्य हिंदी साहित्य का ज्ञानकांड। इस प्रकार भारत का

[123] डॉ. अमरनाथ – हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 215

[124] डॉ. अमरनाथ – हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 215

उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण यूरोप के 'एनलाइटेनमेंट' अथवा 'ज्ञानोदय' की चेतना के अधिक निकट प्रतीत होता है और पन्द्रहवीं शताब्दी का नवजागरण 'रिनेसांस' के तुल्य।"[125]

डॉ. रामविलास शर्मा 'लोकजागरण' और 'नवजागरण' में फ़रक करते हैं। 15वीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन के लिए वे 'लोकजागरण' और 19वीं शताब्दी के लिए सांस्कृतिक जागरण के लिए 'नवजागरण' शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रो. मैनेजर पाण्डेय की यह बात इस भेद को और स्पष्ट करती है। वे लिखते हैं- "भक्ति आंदोलन और 19वीं शताब्दी से आरंभ होनेवाले नवजागरण का मुख्य अंतर यह है कि पहला जातीय निर्माण को व्यक्त करनेवाला सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसका मुख्य स्वर सामंतवाद विरोधी तथा मानवतावादी है, दूसरा राष्ट्रीय स्वाधीनता का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसका मुख्य स्वर साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामंतवाद विरोधी है।"[126]

भारत में यह सांस्कृतिक चेतना जिसे नवजागरण भी कहा जा सकता है वह एक ही समय में घटित नहीं हुई है। यह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो भारत भर में किसी प्रदेश में पहले, तो किसी प्रदेश में बाद में शुरू हुई है। भारतीय नवजागरण की परम्परा में बंगला नवजागरण को ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की गई और राजा राममोहन राय को उससे जोड़ने की। इस बात का खंडन रामविलास शर्मा करते हुए दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं- "भारत के राष्ट्रीय नवजागरण का संबंध सामान्यत: राजा राममोहन राय से जोड़ा जाता है। हो सकता है, बंगाल के लिए यह सही हो। आवश्यक नहीं कि हर प्रदेश में वैसी ही प्रक्रिया घटित हुई हो।"[127]

यहाँ देखा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा एक साथ दो काम करते हैं। एक - वे राजा राममोहन राय को हिंदी नवजागरण से जोड़ कर नहीं देखते हैं। दूसरा - साथ ही वे हर

---

[125] नामवर सिंह - हिंदी का गद्यपर्व, पृ.सं. 86

[126] मैनेजर पाण्डेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ. सं. 190

[127] रामविलास शर्मा- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 18

प्रदेश की अपनी स्वतंत्र प्रक्रिया को मानते हैं। तात्पर्य वे हिंदी के साथ-साथ मराठी, गुजराती और अन्य प्रदेशों के नवजागरण का अलग अस्तित्व मानते हैं। जिससे हर बार बंगला नवजागरण को भारतीय नवजागरण के रूप में देखने की कोशिश से बचा गया जो कि एकांगी होने का बोध कराती हुई प्रतीत होती थी।

हिंदी नवजागरण की शुरूआत ही डॉ. रामविलास शर्मा सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से मानते हैं। जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं जिसे 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' किताब में देखा जा सकता है। वे कुछ इस प्रकार हैं- "1) इस स्वाधीनता संग्राम की पहली विशेषता यह है कि यह सारे देश की एकता को ध्यान में रखकर चलाया गया था। 2) राज्यसत्ता की मूल समस्या सामंतों के हित में नहीं, जनता के हित में हल की गई थी। 3) अंग्रेजों ने जमींदारों और साहूकारों को जहाँ भी नये अधिकार दिये थे, वहाँ भारतीय सेना का प्रभुत्व कायम होते ही जनता ने अंग्रेजों की व्यवस्था उलट दी। 4) इसका नेतृत्व उन किसानों ने किया जो फौज में सिपाहियों और सूबेदारों के रूप में काम कर रहे थे। 5) इसका असाम्प्रदायिक राष्ट्रीय रूप है। 6) यह संग्राम हिंदी भाषी प्रदेश में चलाया गया।"[128] साथ-ही डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी नवजागरण को तीन चरणों में विभाजित भी करते हैं। पहला चरण जो कि 1857 के स्वाधीनता-संग्राम का है, दूसरा- भारतेंदु युग का और तीसरा- महावीरप्रसाद द्विवेदी से निराला तक का रहा है। हिंदी नवजागरण की अवधारणा को रामविलास इस रूप में स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं- "जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरम्भ हुआ वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी, सामंत-विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी-युग में और पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा उनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारी रूप में व्यक्त हुई।"[129]

[128] रामविलास शर्मा – महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 9-10
[129] रामविलास शर्मा – महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 19

2.2 हिंदी नवजागरण और भारतीय नवजागरण का अंत:संबंध

हिंदी नवजागरण की अवधारणा को जिस रूप में डॉ. रामविलास शर्मा प्रस्तुत करते हैं उससे हिंदी नवजागरण की एक स्वतंत्र पहचान बनती है। लेकिन हिंदी नवजागरण को 1857 के स्वाधीनता संग्राम से जोड़कर देखना फिर भारतेंदु युग, द्विवेदी युग एवं निराला तक इस नवजागरण की चेतना को दिखाना अपने-आप में कई सारे-सवाल पीछे छोड़ जाता है।

डॉ. रामविलास शर्मा की हिंदी नवजागरण को देखने की जो दृष्टि रही है वह सवालों के घेरे में आ जाती है जब वे हिंदी नवजागरण को भारतीय नवजागरण से काट कर देखते हैं। शम्भुनाथ जी की यह बात काफ़ी महत्त्वपूर्ण लगती है– "भारत के किसी भी क्षेत्र में नवजागरण इतने अलगाव में घटित नहीं हुआ है कि एक जगह के नवजागरण का दूसरी जगह प्रभाव नहीं पड़ा हो। ऐसा भी नहीं कि भारतीय नवजागरण के लिए यूरोपीय नवजागरण के उच्च आदर्श अछूत समझे जाएँ।"[130] यहाँ नामवर सिंह की बात को भी जोड़ कर देखने से यह पता चलता है कि कैसे हिंदी नवजागरण का अन्य प्रदेशों से संबंध रहा है। वे लिखते हैं- "हिंदी नवजागरण की विशिष्टता बतलाने के लिए सन् सत्तावन की राजक्रांति को उसका बीज मानना कठिन है। भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखक सन् सत्तावन की राजक्रांति की अपेक्षा बंगाल के उस नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे जो उससे पहले ही शुरू हो चुका था। कारण यह कि भारतेंदु और उनके मंडल के लेखकों की दृष्टि में अंग्रेजी राज की चुनौती राजनीतिक से अधिक सांस्कृतिक थी और इस सांस्कृतिक संघर्ष में बंगाल नवजागरण से अस्त्र-शस्त्र मिलने की सम्भावना अधिक थी।"[131]

1857 के स्वाधीनता संग्राम को हिंदी नवजागरण के बीज रूप में मानना कठिन ही है। नामवर सिंह का यह सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण है कि "हिंदी प्रदेश के नवजागरण के सम्मुख यह बहुत गम्भीर प्रश्न है कि यहाँ का नवजागरण हिंदू और मुस्लिम दो धाराओं में क्यों विभक्त हो

[130] शम्भुनाथ – हिंदी नवजागरण की अवधारणा : संदेह के बावजूद, आलोचना, अप्रैल-जून, 2001, पृ.सं.62
[131] नामवर सिंह – हिंदी का गद्यपर्व, पृ. सं. 91

गया? जिस प्रदेश में हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों के लोग एक साथ मिलकर सन् सत्तावन में अंग्रेजी राज के ख़िलाफ़ लड़े वहाँ दस वर्ष बाद ही जो नवजागरण शुरू हुआ वह हिंदू और मुस्लिम दो अलग-अलग खानों में कैसे बँट गया?"[132] यह काफ़ी गंभीर सवाल है जिससे हिंदी नवजागरण को 1857 से जोड़ा ही नहीं जा सकता है जब तक इसका स्पष्ट रूप में उत्तर ना मिले। हिंदी नवजागरण की तत्कालीन परिस्थिति 1857 से अधिक बंगला एवं महाराष्ट्र के नवजागरण से प्रेरणा ले रही थी। इस बात को सहज ही सिद्ध किया जा सकता है। वहीं सन् 1857 को स्वाधीनता आंदोलन कहना इतिहास के पुनर्मूल्यांकन की माँग करता है। क्या सन् 1857 का संग्राम स्वाधीनता के लिए लड़ा गया था? क्या उसे स्वाधीनता संग्राम कहा जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए सन् 1857 के पूर्व घटित कुछ घटनाओं को जानना ज़रूरी होगा। रावसाहेब कसबे सन् 1857 के संग्राम के पीछे जो कारण रहे हैं उनमें से एक, ब्रिटिशों द्वारा जो अधिनियम पारित हुए हैं, उन्हें मानते हैं। उन्होंने लिखा है- "वॉरन हेस्टिंग के काल में 'कानून के सामने सब समान' इस तत्त्व को व्यवहार में लाया गया। लॉर्ड बेंटिग ने सन् 1825 में सती प्रथा को विधि द्वारा बंद कर भारतीय स्त्रियों को न्याय दिलाया। सन् 1850 से 1856 तक इस काल में हिंदू रूढ़ियों पर आघात करने वाले कानून हुए। सन् 1850 में 'जाति निर्योग्यता' नष्ट करनेवाला अधिनियम (Caste Disability Removal Act) करने से सनातनी लोग नाराज हुए। 25 जुलाई 1856 के दिन विधवा विवाह को विधि मान्यता दी गई, जिससे वह स्त्री पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र हुई। सन् 1857 में ब्रिटिश पार्लमेंट ने तलाक देने का स्त्रियों का हक़ मान्य किया। ब्रिटिशों ने सम्मति आयु अधिनियम (consent bill act) बनाकर कम उम्र की कन्याओं को उनके पतियों के लैंगिक शोषण से बचा लिया।... यह सब अधिनियम सौ साल पहले लॉर्ड क्लाईव्ह ने गुप्तपेढिवालों को दिए गए वचनों का भंग था। 1857 के सिपाही विद्रोह के पीछे यह वचन भंग बड़े हद तक कारणीभूत था।"[133] न सिर्फ़

[132] नामवर सिंह – हिंदी का गद्यपर्व, पृ. सं. 91

[133] रावसाहेब कसबे – गांधी पराभूत राजकारणी आणि विजयी महात्मा, पृ. सं. 84

यही अधिनियम बल्कि रावसाहेब कसबे और भी विद्रोह के पीछे के कारण बताते हैं। उस समय रुहेलखण्ड के सत्ताधीशों का वारिस कह खान बहादुर को सत्ता सौंपी गई। वह ब्रिटिशों के वेतन पर गुजारा करता था। बिहार में कुवर सिंह जमींदार ने विद्रोह का नेतृत्व किया क्योंकि ब्रिटिशों ने उसे उसकी जायदाद से बेदखल कर दिया था। इस विद्रोह में रानी लक्ष्मीबाई की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कसबे लिखते हैं- "इस विद्रोह में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य का मतलब झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई। गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने उसके पति की मृत्यु के बाद उसके दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी (वारिस) के रूप में स्वीकारने से इनकार किया था। उसके संस्थान को ब्रिटिश राज्य के अधीन जोड़ दिया गया था। रानी लक्ष्मीबाई ने इस निर्णय में बदलाव लाने के लिए बहुत आवेदन-अनुरोध किए थे। इतना ही नहीं उन्होंने झाँसी को ब्रिटिशों के लिए 'सुरक्षित' रखने का प्रस्ताव भी दिया था। लेकिन वह भी ख़ारिज करने के कारण उसे विद्रोह में उतरने के लिए विवश होना पड़ा।"[134] इन दो उद्धरणों से सन् 1857 के पीछे एक ब्रिटिशों द्वारा लागू किए गए अधिनियम जो हिंदू धर्म की परम्पराओं-रूढ़ियों पर आघात थे, वहीं दूसरी ओर जिन लोगों ने इसमें हिस्सा लिया वे जमींदार, राजा लोग अपने स्वार्थ को पूरा न होने एवं सत्ता-संपत्ति को बचाने के लिए कोई और उपाय न होने के कारण विद्रोह कर चुके थे। यह इस स्वतंत्रता संग्राम के पीछे का अंधेर है।

बहरहाल, सन् 1857 के प्रेरणा लेनेवाली शर्मा की बात पर कहा जा सकता है कि भारतेंदु जहाँ बंगाल के नवजागरण से प्रभावित दिखाई देते हैं वहीं महावीरप्रसाद द्विवेदी महाराष्ट्र के नवजागरण से। उन आलोचकों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है जिन्हें हिंदी नवजागरण पर किसी भी अन्य राज्यों का प्रभाव स्वीकार्य नहीं। शम्भुनाथ लिखते हैं – "भारत में लम्बे समय तक विभिन्न क्षेत्रों के नवजागरण को लड़ाकर देखने की प्रवृत्ति रही है। आज भी बंगला नवजागरण, हिंदी नवजागरण, महाराष्ट्र नवजागरण या तमिल नवजागरण के

[134] रावसाहेब कसबे – गांधी : पराभूत राजकारणी आणि विजयी महात्मा, पृ. सं. 86

व्याख्याकार अपने-अपने जातीय-सामाजिक जागरण को लेकर अहम्मन्यता से पीड़ित हैं और उसकी विशिष्टता से बाहर कुछ भी देखना नहीं चाहते।"[135]

हिंदी नवजागरण का भारतीय नवजागरण से जो अंत:संबंध रहा है वह काफ़ी स्पष्ट है। हिंदी नवजागरण सन् 1857 की अपेक्षा बंगला एवं मराठी नवजागरण से ज़्यादा प्रभावित दिखाई देता है। हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों का साहित्य-कर्म इस बात का साक्षी माना जा सकता है। फिर भी हिंदी नवजागरण की अपनी विशेषताएँ हैं जो अन्य प्रदेशों से अलग हैं जिसे नकारा नहीं जा सकता है। समाज-सुधार, हिंदी आंदोलन, शिक्षा सुधार यह वे बिंदु हैं जो हिंदी नवजागरण को विशेष बनाते हैं।

2.3 हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों का मूल्यांकन

जिसे हिंदी नवजागरण अभिहित किया गया क्या वह नवजागरण की परिधि में आता है? हिंदी आलोचक वीरभारत तलवार हिंदी नवजागरण को एक भ्रामक नाम मानते हैं। वे लिखते हैं- "हिंदी नवजागरण एक भ्रामक नाम है। कुछ हिंदी लेखकों द्वारा एक मुहावरे की तरह चलाए गए इस शब्द का, उनकी चर्चाओं से बाहर, कहीं कोई अस्तित्व नहीं। जिसे हिंदी नवजागरण कहा जाता है, वह दरअसल ब्राह्मोसमाज और खासकर आर्यसमाज के धार्मिक सुधारों के ख़िलाफ़, उनकी प्रतिक्रिया में हुआ, सनातनी बुद्धिजीवियों का आंदोलन था जिसमें उस समय के सभी बड़े हिंदी लेखकों और संपादकों ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया – हालाँकि इन लेखकों की चेतना पर भी उस सुधार आंदोलन का कुछ प्रभाव पड़ा जिसके नतीजे में उन्होंने भी कुछ सुधारों का सीमित रूप में समर्थन किया।"[136] वीरभारत तलवार की यह बात हिंदी नवजागरण को सबसे अलग दिखाने एवं मानने वालों को सहज स्वीकार्य नहीं होगी। पर

---

[135] शम्भुनाथ – हिंदी नवजागरण की अवधारणा:संदेह के बावजूद, आलोचना, अप्रैल-जून, 2001, पृ.सं.62

[136] वीरभारत तलवार – रस्साकशी 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत, पृ. सं. 342

इस बात के प्रमाण स्वयं वीरभारत तलवार की किताब ‘रस्साकशी’ दे जाती है। हिंदी नवजागरण को दलित संदर्भों में देखने से यह बात और भी स्पष्ट होती हुई दिखाई देती है।

कँवल भारती हिंदी नवजागरण को दलित संदर्भ में देखने की कोशिश करते हैं। हिंदी नवजागरण को दलित चिंतन किस रूप में देखता है, इस बात का पता कँवल भारती के इन शब्दों से लगता है – “दलित चिंतन नवजागरण को राजभक्ति और देशभक्ति के द्वंद्व में नहीं देखता है, वरन् हिंदू समाज के पुनर्गठन में देखता है। उसके लिए नवजागरण में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की पक्षधरता ज़रूरी है। उसके लिए नवजागरण का अर्थ है – नयी सांस्कृतिक क्रांति, जिसमें निम्न वर्गों को स्वतंत्रता मिले, समानता के अधिकार मिलें और वे नागरिक के रूप में मुख्यधारा में शामिल हों, न कि प्रजा के रूप में।”[137]

इस पक्षधरता का नवजागरण में होना दलित चिंतन के लिए ज़रूरी है। बग़ैर इसके कोई भी जागरण उसके किसी काम का नहीं है। कँवल भारती इस पक्षधरता की तलाश हिंदी नवजागरण में करने का प्रयास करते हैं। शिक्षा का सवाल किसी भी नवजागरण में बहुत ही ज़रूरी सवाल होता है। दलित चिंतन में शिक्षा पर जोर देखा जा सकता है। क्योंकि दलित चिंतन मानता है शिक्षा से मनुष्य का एवं समाज का विकास हो सकता है। हिंदी नवजागरण के अग्रदूत के रूप में भारतेंदु को डॉ. रामविलास शर्मा एवं तलवार देखते हैं। पर दोनों का देखने का दृष्टिकोण अलग है। रामविलास शर्मा को वे (भारतेंदु) साम्राज्यवाद के विरोधी दिखाई देते हैं वहीं तलवार को साम्राज्यवाद के समर्थक।

कँवल भारती शिक्षा संबंधी सवाल को लेकर भारतेंदु को सही एवं तलवार का भारतेंदु के प्रति जो दृष्टिकोण रहा है उसे गलत ठहराते हैं। शिक्षा की भूमिका नवजागरण की चेतना फैलाने के लिए बुनियादी रही है इस बात को सब मानते हैं। शिक्षा पर जो नियंत्रण का सवाल

---

137 कँवल भारती- स्वामी अछूतानंदजी ‘हरिहर’ और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 19

है वहाँ भारतेंदु उसका नियंत्रण औपनिवेशिक सत्ता के अधीन ही रखने की बात रखते हैं। वे कहते हैं – "स्कूलों का प्रबंध और देखभाल पूरी तरह से सरकार के हाथों में ही रहना चाहिए। सरकारी अफसर जो कुछ करते हैं, देशी लोग उस पर निगाह रखें, उसकी समीक्षा और आलोचना करें और उसमें सुधार के उपाय बतलाएँ।"[138] इसलिए तलवार को वे साम्राज्यवाद के समर्थक लगते हैं और अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में उनकी अगाध और संपूर्ण आस्था भद्रवर्ग के बिलकुल अनुकूल लगती है। इस दृष्टिकोण के पीछे कँवल भारती छद्म मार्क्सवादी विचारधारा को मानते हैं। वे लिखते हैं – "छद्म मार्क्सवादी विचारधारा ने भारतीय लेखकों के दिमागों में यह ठूँस दिया है कि औपनिवेशिक राज्य का विरोध ही असली प्रगतिशील चिंतन है और जिनमें यह चिंतन नहीं है, उन्हें उन्होंने अँग्रेज समर्थक से लेकर अँग्रेजों का पिट्ठू तक कहने में गुरेज नहीं किया।"[139] तलवार इस बात की ओर भी ध्यान देते कि निजीकरण से क्या दलित समुदाय का तबका जातिगत भेदभाव के कारण शिक्षित हो पाता, बिलकुल नहीं।

महात्मा फुले एवं भारतेंदु के शिक्षा संबंधी विचारों में काफ़ी समानता देखने को मिलती है। दोनों भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य मानते हैं और औपनिवेशिक सत्ता का उस पर नियंत्रण चाहते थे। इस बात को कँवल भारती की आलोचना रेखांकित करती है। स्त्री शिक्षा के लिए भारतेंदु भी सहमत दिखाई देते हैं और फुले भी। हंटर शिक्षा आयोग को दिए गए निवेदन में फुले कहते हैं कि "I beg to request the Education Commission to be kind enough to sanction measures for the spread of female primary education on a more liberal scale."[140]

हिंदी नवजागरण की एक समस्या जिसने भारत को काफ़ी प्रभावित किया वह भाषा एवं लिपि को लेकर रही है। शिवप्रसाद ने 1868 में संयुक्त प्रांत की सरकार को एक मेमोरेंडम

[138] वीरभारत तलवार - रस्साकशी 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत, पृ. सं. 20
[139] कँवल भारती- स्वामी अछूतानंदजी 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 75
[140] संपा. एल. जी. मेश्राम 'विमलकीर्ति' – महात्मा जोतिबा फुले रचनावली -1, पृ.सं. 285

दिया था वहीं से एक तरफ़ हिंदू नवजागरण की शुरूआत होती है तो दूसरी तरफ़ भाषा को धर्म से जोड़ कर देखने के प्रयास शुरू होते हैं। इस बात को तलवार छिपाते नहीं हैं, "19वीं सदी में पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदी का संबंध 'हिंदू जाति' से जोड़ दिया गया। राजा शिवप्रसाद ने भी हिंदी भाषा और लिपि का संबंध हिंदू जातीयता की भावना से जोड़ा। जाहिर है, उर्दू भाषा और उसकी फ़ारसी लिपि का संबंध तब मुस्लिम जातीयता से होगा।...दूसरे प्रांतों से अलग पश्चिमोत्तर प्रांत की यही वह बुनियादी विशेषता थी जो 19वीं सदी के हिंदी नवजागरण का चरित्र तय कर रही थी।"[141] दरअसल हिंदी आंदोलन की शुरूआत ही कचहरी और दफ़्तरों में जो नौकरियाँ थी, उस पर मुसलमानों का वर्चस्व रहा जिसे दूर कर हिंदू समुदाय को भी इनमें शामिल करने के उद्देश्य से हुई ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि तत्कालीन समय में मुसलमान वर्ग का कचहरी एवं दफ़्तरों में आसानी से नौकरी पा लेने का रास्ता, उर्दू एवं लिपि फ़ारसी से होकर जाता है इसलिए हिंदू समुदाय का बड़ा हिस्सा इसमें शामिल न हो पाता था।

राजा शिवप्रसाद सिंह की नागरीलिपि के लिए माँग एवं फ़ारसी लिपि के विरोध को कँवल भारती सही लेकिन लिपि को धर्म से जोड़ना गलत मानते हैं। शिवप्रसाद सिंह के पक्ष में होकर तलवार कचहरी एवं दफ़्तरों की नौकरियों में मुसलमानों का ज़्यादा प्रतिशत मानते हैं। वीरभारत तलवार मुसलमानों की 14 प्रतिशत आबादी और हिंदुओं की 85 प्रतिशत आबादी मानते हैं। इस कारण कँवल भारती तलवार की कमियों को उजागर करते हैं। वे लिखते हैं – "...जिन हिंदुओं की वे बात करते हैं, उनमें शूद्र और अछूत जातियों के लोग शामिल नहीं हैं। द्विजों को द्विज न कहकर हिंदू कहना सच्चाई पर परदा डालना है, जबकि द्विजों की आबादी किसी भी तरह 10-12 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं हो सकती थी।"[142]

यह बात बहुत ज़रूरी है कि भाषा और लिपि का संघर्ष जिसे धर्म से जोड़ कर किया जा रहा था। जिसमें भद्रवर्ग जो एक द्विज था तो दूसरा मुसलमान। इस संघर्ष में दोनों के धर्म

[141] वीरभारत तलवार - रस्साकशी 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत, पृ. सं. 64
[142] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 83

सुरक्षित थे। इस संघर्ष में दलित और पिछड़ों के लिए कुछ था ही नहीं। शायद इसी कारण कँवल भारती इसे हिंदुत्व और इस्लाम का पुनर्जागरण[143] मानते हैं।

द्विवेदी युग में एक नयी बात जोड़ी जा सकती है वह है खड़ीबोली हिंदी में साहित्य सृजन। कँवल भारती मानते हैं कि इस युग में हिंदी साहित्य को प्रभावित करने वाले मुख्य पाँच लेखक हैं – महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'। जिनका मूल्यांकन कँवल भारती हिंदी नवजागरण के संदर्भ में करते हैं जिसे देखना ज़रूरी है।

2.3.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी (1867-1938):

दलित चिंतन नवजागरण को राजभक्ति और देशभक्ति के द्वंद्व में नहीं देखता है, वरन् हिंदू समाज के पुनर्गठन में देखता है। हिंदी नवजागरण के संदर्भ में यही बात कँवल भारती की आलोचना का आधार दिखाई देती है। इसी कारण कँवल भारती को महावीरप्रसाद द्विवेदी सुलझे हुए विचारक लगते हैं। वे लिखते हैं- "वे सुलझे हुए विचारक थे. रूढ़िवादी और दकियानूसी नहीं थे। उन्होंने वेदों को मनुष्यों की रचना माना और दयानंद आदि विद्वानों के इस मत का खंडन किया कि वेद अपौरुषेय थे। उन्होंने वेदों में पशु-हिंसा और सुरा-पान की सत्यता को भी स्वीकार किया। उनका तर्क जोरदार था कि यदि वेद ईश्वरीय रचनाएँ हैं, तो ईश्वर को गाय, भैंस, यज्ञ, दूध, मांस और सुरा की क्या ज़रूरत थी?"[144]

शिक्षा के सवाल पर द्विवेदी स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। डॉ. रामविलास शर्मा भी यह मानते हैं कि आए दिन सरस्वती में स्त्री-शिक्षा पर लेख छपते थे। परम्परावादियों में द्विवेदी नहीं दिखाई देते हैं। शिक्षा पर यह टिप्पणी काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। वे (म. द्विवेदी) लिखते हैं –

[143] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 86

[144] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 90-91

"...सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि प्रजा की शिक्षा का वह पूरा-पूरा प्रबंध करें; एक आदमी को भी अशिक्षित न रहने दे; शिक्षा के साधन सबके लिए सुलभ कर दे।"[145]

कँवल भारती का मूल्यांकन महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, इसकी सीमा है। वह सीमा है- महावीरप्रसाद द्विवेदी का प्रतिनिधि संकलन जिसे रामबक्ष संपादित कर चुके हैं। डॉ. रामविलास शर्मा की किताब 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' भी द्विवेदी के दलित-शूद्रों, विधवा, सतीप्रथा, वर्ण-व्यवस्था पर क्या विचार थे जानने के लिए कोई सहायता नहीं करती है। बहरहाल कँवल भारती की आलोचना दृष्टि में द्विवेदी का स्त्री-शिक्षा, वेदों का मनुष्य द्वारा रचा हुआ मानना, प्राकृत का समर्थन (प्राकृत बोलना और लिखना अपढ़ और अशिक्षित होने का चिन्ह नहीं है।), आदि बिंदुओं का मूल्यांकन आता हैं जिससे वे सलुझे हुए विचारक एवं रूढ़िवादी नहीं दिखाई देते हैं। अर्थात् परंपरावादी, ब्राह्मणवादी विचारधारा के पोषक नहीं हैं।

2.3.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1940) :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन हिंदी नवजागरण के युग में ही संपन्न होता हुआ दिखाई देता है। दलित चिंतकों की दृष्टि में आ. शुक्ल ब्राह्मणवादी रहें हैं। कँवल भारती भी यही मानते हैं। आ. शुक्ल के रचना-कर्म का मूल्यांकन कर यह बात सिद्ध करने की कोशिश कँवल भारती करते हुए दिखाई देते हैं।

आ. शुक्ल के लोकधर्म, लोकजीवन और लोकमंगल को जानने के लिए उनकी किताब 'तुलसीदास' को कँवल आधार बनाते हैं। जैसा हम जानते हैं आ. शुक्ल के प्रिय कवि तुलसीदास रहे हैं। तुलसीदास की चिंता वर्ण-व्यवस्था की चिंता थी। इसी कारण उनकी निर्गुणियों के प्रति चिढ़ जग जाहिर है- "साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।/भगति

[145] रामविलास शर्मा – महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 178

निरूपहिं भगति कलि, निंदहिं वेद पुरान।।"[146] आ. शुक्ल के चिंतन में भी वर्ण-व्यवस्था एवं आर्य धर्म की चिंता को देखा जा सकता है और इस बात को कँवल भारती सिद्ध करते हुए दिखाई देते हैं। उदाहरण स्वरूप आ. शुक्ल का यह कथन – "उधर शास्त्रों का पठनपाठन कम लोगों में रह गया, इधर ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखनेवाले मूर्ख बढ़ रहे थे जो किसी 'सतगुरु के प्रसाद' मात्र से ही अपने को सर्वज्ञ मानने के लिये तैयार बैठे थे। अत: सतगुरु भी उन्हीं में निकल पड़ते थे जो धर्म का कोई एक अंग नोचकर एक ओर भाग खड़े होते थे, और कुछ लोग झाँज-खँजड़ी लेकर उनके पीछे हो लेते थे। दंभ बढ़ रहा था। 'ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।' ऐसे लोगों ने भक्ति को बदनाम कर रखा था। 'भक्ति' नाम पर ही वे वेदशास्त्रों की निंदा करते थे, पंडितों को गालियाँ देते थे और आर्यधर्म के सामाजिक तत्त्व को न समझकर लोगों में वर्णाश्रम के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे थे। यह उपेक्षा लोक के लिये कल्याणकर नहीं। जिस समाज से बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान, अत्याचार का दलन करनेवाले शूरवीरों के प्रति श्रद्धा इत्यादि भाव उठ जायँ, वह कदापि फलफूल नहीं सकता; उसमें अशांति सदा बनी रहेगी।"[147]

इस कथन में आ. शुक्ल वर्ण-व्यवस्था एवं आर्य धर्म के प्रति श्रद्धा से ओत-प्रोत हैं। उनका वर्ण-व्यवस्था का समर्थन वह भी हिंदी नवजागरण के काल में, ब्राह्मणवादी मानसिकता का ही द्योतक दिखाई देता है। कँवल भारती इस कथन के बारे में लिखते हैं – "यह अशान्ति तुलसी के समय की ही नहीं थी, बल्कि शुक्ल के समय की भी थी, जिसे दलित अस्मिता के उभार ने उन जैसे हिंदुओं को अशांत कर दिया था।"[148]

वर्ण-व्यवस्था अपने आप में एक असमानता पर आधारित व्यवस्था है। जिसमें जन्म से सब कुछ तय होता है। ऐसी व्यवस्था के समर्थक से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती वह

[146] आ.रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 114

[147] रामचंद्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास, पृ. सं. 14

[148] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 99

समानता के आधार पर स्थापित व्यवस्था को मानता हो। आ. शुक्ल वर्ण-व्यवस्था को मानते थे इसलिए वे 'साम्य' शब्द से चिढ़ जाते हैं यह बात कँवल भारती सामने ले आते हैं। आ. शुक्ल को उद्धृत करते हैं – "अल्प शक्ति वालों की अहंकार वृत्ति को तुष्ट करने वाला 'साम्य' शब्द ही उत्कर्ष का विरोधी है। इस उत्कर्ष का विरोधी साम्य जहाँ हो, उसे हमारे यहाँ के लोग 'अन्धेर नगरी' कहते आये हैं।"[149]

आ. शुक्ल को रामराज्य की अवधारणा पसंद थी जिसमें शूद्रों, दलितों के लिए गुलामी, शोषण, अपमान एवं अत्याचार के अलावा कुछ नहीं था। आ. शुक्ल जिसे लोक मर्यादा कहते हैं, वह क्या है? उन्हीं के शब्दों को प्रस्तुत कर कँवल इसे स्पष्ट करते हैं– "लोक मर्यादा की दृष्टि से निम्न वर्ग के लोगों का धर्म यही है कि उस पर श्रद्धा का भाव रखें, न रख सकें तो कम से कम प्रकट करते रहें।"[150] अगर यही 'पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।' तुलसी का 'सोशल डिसिप्लिन' है और आ. शुक्ल इसके समर्थक हैं तो इन्हें ब्राह्मणवादी न कहें तो क्या कहा जाए? कँवल भारती की आलोचना हिंदी नवजागरण के संदर्भ में आ. शुक्ल का जो मूल्यांकन करती है उसका यही निष्कर्ष आता है। देख सकते हैं, शोषित वर्ग की पक्षधरता की कसौटी रखने से आ. शुक्ल का रूढ़िवादी चेहरा सामने आ जाता है।

2.3.3 जयशंकर प्रसाद (1889-1937) :

कँवल भारती को हिंदी नवजागरण सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही ज़्यादा नज़र आता है। वे लिखते हैं- "दरअसल हिंदी नवजागरण को हम गलती से विचारों का भी नवजागरण समझ लेते हैं, जबकि उसका अर्थ साहित्य और भाषा में नये प्रयोगों से है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा से खड़ीबोली में आने, कविता में छायावाद और मुक्त छंद के प्रयोग करने का नाम हिंदी

[149] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 103
[150] रामचंद्र शुक्ल – गोस्वामी तुलसीदास, पृ. सं. 29

नवजागरण है।"[151] देखा जा सकता है हिंदी नवजागरण के प्रति कँवल भारती की दृष्टि क्या है। हिंदी नवजागरण वैचारिक संघर्ष न होकर सिर्फ़ भाषा के नए-नए प्रयोगों का नाम मात्र है। दरअसल यह बात जयशंकर प्रसाद के संदर्भ में वे लिखते हैं। जयशंकर प्रसाद के पूरे साहित्य-कर्म पर विचार किया जाए तो यह देखा जा सकता है कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से उनकी कोई रचना टकराते हुए दिखाई नहीं देती है। कँवल भारती की माने तो - "…उनका (प्रसाद) अधिकांश लेखन पौराणिक कथाओं और हिंदू इतिहास पर है।"[152]

हिंदी नवजागरण की माने तो यह समय पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने एवं वैज्ञानिकता को अपनाने का रहा है। पर वहीं जयशंकर का रचना कर्म इतिहास की ओर उन्मुख है। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक जगह लिखते हैं- "जब हम बार-बार अतीत के प्रति जड़ होकर सोचने लगते हैं, अतीत को महिमा मंडित करके सामाजिक जीवन की विसंगतियों को अनदेखा करके सिर्फ़ अपनी सोच के ही रंग को उभारने की कोशिश करते हैं, तो परिणाम घातक होते हैं। धार्मिक कट्टरता, जड़ता हमारी चेतना को ढक लेती है और यही कारण है कि नवजागरण की तमाम उपलब्धियों को सीमित कर लिया है।"[153] जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में इस धार्मिक कट्टरता को देखा जा सकता है। हिंदी नवजागरण को केंद्र में रखकर देखने से जयशंकर प्रसाद पुनरुत्थानवादी ही नज़र आते हैं जिसे कँवल भारती सिद्ध करते हुए दिखाई देते हैं। जयशंकर प्रसाद के ही नाटकों से कुछ उद्धरण कँवल प्रस्तुत करते हैं– एक, प्रसाद 'स्कन्दगुप्त' में जो दिखाना चाहते थे, वह यह प्रसंग है। विजय प्राप्त करने के बाद भीम वर्मा कहता है- "आर्य साम्राज्य का उद्धार हुआ है। बहिन! सिंधु के प्रदेश से म्लेच्छ-राज ध्वंस हो गया है। प्रवीण सम्राट स्कंदगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की है। गौ, ब्राह्मण और देवताओं की ओर कोई भी आततायी (अब) आँख उठाकर नहीं देखता।"[154] दूसरा, बंदी बनाये जाने पर बंदीगृह

[151] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 111
[152] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 111
[153] ओमप्रकाश वाल्मीकि – मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ. सं. 142
[154] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 113

में चाणक्य फिर कहता है- “मैं कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचों के हाथ में इन्द्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है, उसे मैं भोग रहा हूँ।”[155]

‘तितली’ (1934) में परिवर्तन की जिस लहर ने जयशंकर प्रसाद को छुआ है, वह भूमि सुधार है। जो बात तितली उपन्यास में आयी है वह यह है- “यदि आप लोग वास्तविक सुधार करना चाहते हों, तो खेतों के टुकड़ों को निश्चित रूप में बाँट दीजिए और सरकार उन पर मालगुजारी लिया करे।”[156] यह राष्ट्रीयकरण की दिशा में कही गयी बात मानी जा सकती है। ऐसा कँवल मानते हैं। जो सबसे बड़ी समस्या रही है, वह है- जाति की समस्या जो किसान-मजदूरों को एक होने नहीं देती है, जिसका जिक्र उपन्यास में कहीं नहीं आता है। प्रसाद ने गाँव को इस उपन्यास में चित्रित किया है, पर उसमें दलित हैं ही नहीं। ऐसा गाँव कैसे हो सकता है ? वे यह सवाल उठाते हैं। जिसका वे स्वयं उत्तर देते हैं। कँवल लिखते हैं- “वास्तव में प्रसाद का साहित्य छायावादी और काल्पनिक था और दलित समाज उनकी कल्पना से बाहर था, क्योंकि वह उनके अनुभूत यथार्थ से ही बाहर था।”[157]

2.3.4 सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ (1898-1961) :

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी नवजागरण के संदर्भ में निराला को महावीरप्रसाद द्विवेदी की अगली कड़ी के रूप में देखते हैं- “...निराला ने अंग्रेजी राज, जमींदारी प्रथा, किसान-आंदोलन, वर्णाश्रम धर्म, नारी की पराधीनता, भाषा की समस्या, आदि-आदि पर जो कुछ लिखा है, उस पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि हिंदी नवजागरण के संदर्भ में निराला का यह लेखन महावीरप्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है। इस प्रकार छायावादी चिंतन सर्वत्र द्विवेदी-युग का विरोधी नहीं, उसका अनुवर्ती है।”[158]

---

[155] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 114
[156] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 115
[157] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 116
[158] रामविलास शर्मा – महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 18

हिंदी नवजागरण के समय को देखकर यह मान भी लिया जाए कि अंग्रेजी सत्ता, जमींदारी प्रथा का विरोध प्रगतिशीलता का प्रमाण है पर क्या ऐसे रचनाकार को प्रगतिशील माना जा सकता है जिसकी आस्था वर्ण-व्यवस्था में अटकी हुई हो? रामविलास ने जिन लोगों को हिंदी नवजागरण के युग में महत्त्वपूर्ण माना उसमें से ज़्यादातर वर्ण-व्यवस्था के समर्थक दिखाई देते हैं। निराला भी उनमें से एक हैं, जिनकी वर्ण-व्यवस्था एवं वेदांत में पूर्ण आस्था है। लाहौर में 'जात पात तोड़क मंडल' बनाया गया तथा उसके सचिव संतराम बी.ए. थे। उनके विरोध में निराला ने 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' शीर्षक लेख लिखा, जिससे उनके वर्ण-व्यवस्था के समर्थक होने का प्रमाण मिल जाता है, इसे उन्हीं के कथनों से कँवल भारती सिद्ध करते हैं। निराला के कुछ कथन निम्नत: हैं-

एक- "भारत वर्ष को मुक्ति की ओर ले जाने वाले आज तक जितने भी विचार देखने में आये हैं, वे राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक किसी भी दशा में झुकाये गये हों, वैदांतिक विचार की समता नहीं कर सकते। कोई भी 'मंडल' ऐसा नहीं, जिसमें कोई न कोई दोष न हो।...कोई वर्णाश्रम धर्म को माने या न माने, पर अपनी प्रगति की व्याख्या में यदि वह वेदांत को भी नहीं मानता, जैसा कि आजकल अधिकांश शिक्षितों की शिरश्चरण-विहीन युक्तियों में देखा जाता है, तो वह भारतीय कहलाने का दावा नहीं कर सकता।"[159] यहाँ उनकी वेदांत में आस्था कितनी प्रखर है, देखा जा सकता है। कँवल भारती इस पर कहते हैं- "निराला ने अपनी वेदांत की आस्था में यहाँ तक फतवा दे दिया कि जो वेदांत को नहीं मानता, वह भारतीय ही नहीं है। 'यदि हिंदू नहीं' कहते तब भी ठीक था।"[160]

डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के लेखन को महावीर प्रसाद द्विवेदी की अगली कड़ी माना है। महावीरप्रसाद स्त्री-शिक्षा के पक्षधर थे वहीं निराला को देखिए – "अँग्रेजी स्कूल और कालेजों में जो शिक्षा मिलती है, उससे दैन्य ही बढ़ता है और अपना अस्तित्व भी खो जाता

[159] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 123
[160] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 123

है। बी.ए. पास करके झींगुर लोध अगर ब्राह्मण को शिक्षा देने के लिये अग्रसर होंगे, तो संतराम ही की तरह उन्हें हास्यास्पद होना पड़ेगा।"[161] यहाँ ब्राह्मण जाति के प्रति निराला का दृष्टिकोण साफ झलकता है। शिक्षा का जो पक्षधर नहीं, वर्ण-व्यवस्था में जिसकी आस्था हो उसे किस रूप में हम प्रगतिशील माने?

निष्कर्ष रूप में कँवल भारती जो मूल्यांकन निराला का करते हैं उसे उन्हीं के शब्दों में समेटते हैं- "हिंदी नवजागरण काल के दूसरे दौर के सबसे महत्त्वपूर्ण लेखक सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की वैचारिकी वेदांतवादी थी और वर्ण-व्यवस्था उनके लिये सर्वश्रेष्ठ एवं आदर्श समाज व्यवस्था थी। वे अंग्रेजी राज के विरोधी इसलिये न थे कि वह एक साम्राज्यवादी सत्ता थी, वरन् इसलिये थे, क्योंकि उसके राजनैतिक और सामाजिक सुधारों ने हिंदू संस्कृति और वर्ण-व्यवस्था को तोड़ दिया था। जय प्रकाश ने ठीक ही लिखा था- नवजागरण की केंद्रीय समस्या को निराला ने लम्बी कविताओं में सांस्कृतिक पतन की चिंता के रूप में उठाया है।"[162]

2.3.5 प्रेमचंद (1880-1936) :

'प्रेमचंद' हिंदी साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण नामों में से एक नाम है। बग़ैर इस नाम के हिंदी गद्य साहित्य की पहचान अधूरी है। हिंदी जगत का एक बड़ा तबका चाहे वह लेखक हो या आलोचक, प्रेमचंद को यथार्थवादी लेखक मानता है।

किसान, मज़दूर, दलित एवं स्त्री आदि विषयों को लेकर किया गया उनका कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वे पहले ऐसे रचनाकार रहें हैं- जिनकी रचनाओं में दलितों को देखा जा सकता है। दलितों के दु:ख-दर्द, जीवन-संघर्ष, भूख-ग़रीबी आदि का चित्रण उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। लेकिन इसे दलित चेतना की दृष्टि से देखा जाए तो क्या उनका

[161] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 130-131

[162] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 135

दलितों पर किया हुआ रचनाकर्म यथार्थपरक है, हाँ तो किस रूप में? इससे हिंदी नवजागरण के संदर्भ में देखा जाए। कँवल भारती ने हिंदी नवजागरण को केंद्र में रखकर प्रेमचंद के रचना-कर्म का मूल्यांकन किया है।

कई हिंदी दलित रचनाकार प्रेमचंद को यथार्थवादी रचनाकार मानते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी यही मानते हैं- "जिन्होंने हिंदी साहित्य में यथार्थ को स्वीकार्य बनाया, पाठकों की रुचि विकसित की, साहित्य को प्रासंगिक बनाया। किसान, मज़दूर, दलित को साहित्य का अंग बनाया। प्रेमचंद प्रामाणिक, अनुभव जनित यथार्थ के लेखक हैं।"[163] पर कँवल भारती प्रेमचंद को इस रूप में देखते हैं- "...तथाकथित हिंदी नवजागरण के संपूर्ण दौर में कम से कम वे ऐसे लेखक हैं, जो समकालीन दलित आंदोलन से उद्वेलित थे।"[164]

कँवल भारती जब प्रेमचंद की रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं, तब उनकी आलोचना दृष्टि दलित चेतना के साथ-साथ समकालीन इतिहास को अपना आधार बनाती है। प्रेमचंद के मूल्यांकन में यही बात दिखाई देती है। कुछ उदाहरण – प्रेमचंद की कहानी है – 'सद्गति' जो 1930 में छपी थी। जिसमें दुखी चमार अपनी बेटी की सगाई के लिए साइत निकालने पंडित घासी राम के पास जाता है और उसकी बेगार करते-करते वहीं मौत हो जाती है। यहाँ जो बात कँवल भारती उठाते हैं, वह दलित समाज के यथार्थ के साथ-साथ प्रेमचंद के किए हुए दलित चित्रण को भी दिखाती है कि वह कैसा था। कँवल जनगणना का आधार लेते हैं, जो 1911 में की गई। अछूतों के लिए कुछ मापदंड तय किए गए थे वही 1921 में अछूतों की गणना के लिए अपनाये गए थे। जिसमें इन बातों को देखा जा सकता है- अछूत जातियाँ ब्राह्मणों को न ही श्रेष्ठ मानती थी, न ही उनसे दीक्षा लेती थी और न ही अपना पुरोहित एवं उनकी जजमानी करती थी। सद्गति कहानी में दुखी का सगाई के लिए साइत निकालने जाना विश्वास करने योग्य

[163] ओमप्रकाश वाल्मीकि – मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ. सं. 154
[164] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 135

कँवल भारती को नहीं लगता है। इसलिए वे कहते हैं- "इस कहानी का सारा ताना-बाना प्रेमचंद ने अपनी कल्पना से बुना है, जो सामाजिक यथार्थ से परे है।"[165]

'ठाकुर का कुआँ' कहानी और 'कर्मभूमि' उपन्यास को डॉ. आंबेडकर के आंदोलनों से जोड़कर देखते हैं। 1927 में महाड सत्याग्रह जिसका प्रभाव 1932 की कहानी ठाकुर का कुआँ पर देखते हैं और लिखते हैं- "'ठाकुर का कुआँ' सिर्फ़ गंगी और जोखी की कहानी नहीं है, वह सामाजिक अधिकारों के लिये दलितों के आंदोलन के अमूर्त समर्थन की कहानी भी है।"[166] वही कर्मभूमि में मंदिर प्रवेश की घटना में डॉ. आंबेडकर के बारे में हिंदुओं का क्या मत था, वह इस रूप में जाहिर होता है – "विलायत जाकर धर्म तो खो ही आया था, अब यहाँ हिंदू धर्म की जड़ खोद रहा है।"[167] 'कफन' कहानी दलित समाज को विकृत करने की कहानी रही है। कँवल भारती की माने तो चमार जाति मेहनतकश जाति रही है। जिस जाति की स्त्रियाँ तक काम करके खाती हैं, ऐसे में घीसू और माधव को कामचोर दिखाना कहाँ का सामाजिक यथार्थ है? कँवल भारती का यह प्रश्न काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसी कहानी में चित्रित भोज में दोनों पात्रों का जो चित्रण हुआ है उस पर कँवल प्रश्न उठाते हैं- "यह भोज की प्रशंसा है, या ग़रीबों की ग़रीबी का मजाक है?"[168] 'गोदान' उपन्यास में सिलिया का प्रसंग आता है जिसके बारे में कँवल भारती लिखते हैं – "सिलिया ने उसके गले में बाहें डाल दीं। लेकिन, प्रेमचंद ने उन दोनों का विवाह होते नहीं दिखाया। सिलिया को सम्भवत: रखैल बनकर ही रहना पड़ा। यह था प्रेमचंद का ब्राह्मण धर्म।"[169] अछूतानंद के 'आदि हिंदू आंदोलन' में जारकर्म का विरोध भी था। इस बात को कँवल रेखांकित करते हैं। पर प्रेमचंद के दृष्टि में यह आंदोलन होकर भी वे जारकर्मियों के ही हित में समाधान निकालते हैं। यह बात कँवल उठाते हैं।

---

[165] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 151
[166] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 154
[167] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 155
[168] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 159
[169] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिंदी नवजागरण, पृ.सं. 162

संक्षिप्त रूप में इस पूरे मूल्यांकन में हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों को समझा गया। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' जिन्होंने 'आदि हिंदू' आंदोलन की शुरूआत की थी और दलित उत्थान के प्रयास भी। जिसमें दलितों के राजनीतिक अधिकारों की माँग भी एक मुख्य बात थी। हिंदी नवजागरण के समय में उनकी सक्रियता को देखा जा सकता है। इसी कारण कँवल भारती दलित आंदोलनों के साथ उनके प्रभाव जो हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों पर पड़ रहे थे, उनका मूल्यांकन करने का प्रयास भी करते हैं। जिसमें ज़्यादातर हिंदी नवजागरण, हिंदुत्व के पुनर्जागरण में दिखाई देता है। कँवल की आलोचना दलित पक्षधरता को हिंदी नवजागरण के मूल्यांकन में देखने-समझने और उसे प्रस्तुत करने में दिखाई देती है।

2.4 हिंदी नवजागरण की दलित धारा

2.4.1 दलित आंदोलन :

हिंदी नवजागरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भले ही डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी नवजागरण को अन्य प्रदेशों के नवजागरण से अलग एवं विशेष मानते हैं, पर असल में वे हिंदी नवजागरण को भारतीय नवजागरण के परिदृश्य से काट कर देखने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। जिसकी आलोचना नामवर सिंह एवं मैनेजर पाण्डेय करते हुए दिखाई देते हैं। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- "रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण और उसके साहित्य की विशेषताओं का जो विश्लेषण किया है उसमें भारतीय नवजागरण से हिंदी जागरण की भिन्नता पर जितना ध्यान है उतना एकता पर नहीं है।"[170] इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा जा सकता है कि 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' किताब में कई जगह द्विवेदी का मराठी भाषा साहित्य के प्रति जुड़ाव रामविलास शर्मा दिखा चुके हैं पर वह एकता के रूप में प्रस्तुत नहीं हो पाया है।

[170] मैनेजर पाण्डेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ. सं. 191

कँवल भारती जब हिंदी नवजागरण का मूल्यांकन करते हैं तब उनकी आलोचना भारतीय नवजागरण के परिदृश्य में ही, हिंदी नवजागरण को उसका अंग समझकर मूल्यांकन करती हुई दिखाई देती है। 19वीं सदी में हुए हिंदी नवजागरण को कँवल भारती हिंदू एवं इस्लाम धर्म के पुनर्जागरण के रूप में देखते हैं। वीर भारत तलवार की भी लगभग यही मान्यता दिखाई देती है। क्योंकि भारतीय नवजागरण में जहाँ धर्म एवं समाज सुधार लक्ष्य रहा वहीं हिंदी नवजागरण में धार्मिक सुधारों के प्रति विरोध दिखाई देता है। यही कारण है कि वीर भारत तलावर हिंदी नवजागरण को नवजागरण कहने के पक्ष नहीं हैं। वे लिखते हैं – "उनके (हिंदी आंदोलन) आंदोलन को नवजागरण कहना धार्मिक-सामाजिक सुधारोंवाली भारतीय नवजागरण की धारा से उन्हें गड्डमड्ड कर देना होगा। भारतीय नवजागरण मुख्यत: धर्म और समाज के सुधार का आंदोलन था जबकि हिंदी नवजागरण का मुख्य लक्ष्य यह कभी नहीं रहा। उलटे इसके नेता धर्म के परंपरागत स्वरूप में बुनियादी सुधारों का विरोध करते थे।"[171]

दलित आलोचना दलित पक्षधरता की बात करती है, जो हिंदी नवजागरण में दिखाई नहीं देती है। वहाँ दिखाई देता है हिंदू-इस्लाम धर्म का पुनर्जागरण। इसी कारण कँवल भारती 19वीं सदी के हिंदी नवजागरण को नहीं बल्कि 20वीं सदी के हिंदी नवजागरण को मानते हैं जिनके उद्भावक और नायक शूद्र-दलित वर्गों के लेखक रहे हैं। वहीं भारतीय नवजागरण में वे बंगाल के नवजागरण को नहीं महाराष्ट्र के नवजागरण को मानते हैं जिसके उद्भावक एवं नायक महात्मा फुले रहे हैं। वे लिखते हैं- "वास्तव में जिसे हम 'नवजागरण' कह सकते हैं उसकी लहर महाराष्ट्र से पैदा हुई थी और यह लहर थी दलित-मुक्ति के आंदोलन की, जिसने न सिर्फ़ भारत का बल्कि पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट किया था। इस लहर को पैदा करने वाले थे महात्मा ज्योतिबा फुले..."[172]

[171] वीरभारत तलवार – रस्साकशी 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत, पृ. सं. 342
[172] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 51-52

20 वीं सदी के हिंदी नवजागरण की पृष्ठभूमि को बनाने में जिन आंदोलनों को श्रेय जाता है वे दलित आंदोलन हैं, जिन्हें कँवल भारती रेखांकित करते हैं- महात्मा ज्योतिबा फुले के आंदोलन को वे किस रूप में नवजागरण के संदर्भ में देखते हैं इसे देख चुके हैं। पर महात्मा फुले के समकालीन आंदोलनों पर भी एक नज़र डालनी ही चाहिए। एक हिंदू जागरण की धारा रही है और वह महात्मा फुले द्वारा चलाए गए आंदोलनों के विरोध में प्रतिक्रांति के रूप में सामने आती है। कँवल भारती इसे स्पष्ट करते हुए महात्मा ज्योतिबा फुले (1827-1890) के समकालीनों को रेखांकित करते हैं जिनमें दयानंद (1824-1883), तिलक (1856-1920), विवेकानंद (1863-1902) और रानाडे (1842-1901) आते हैं। वे म. फुले के आंदोलन के विरोध में चली प्रतिक्रांति को इस रूप में स्पष्ट करते हैं- "महात्मा फुले ने 1873 में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की थी और इसी वर्ष उनकी क्रांतिकारी पुस्तक 'गुलामगीरी' प्रकाशित हुई थी। इस समय तक रानाडे का 'प्रार्थना समाज' अस्तित्व में आ चुका था। इसके दो साल बाद 1875 में दयानंद ने 'आर्य समाज' की स्थापना की थी। इससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि ये आंदोलन ज्योतिबा फुले की क्रांति की प्रतिक्रांति में पैदा हुए थे। महात्मा फुले ने जिन चीज़ों का खंडन किया था दयानंद ने उन्हीं का मंडन किया था।"[173]

जो दूसरी धारा आंदोलन की चली वह दलित आंदोलन का ही एक अंग रही है। जिनमें केरल के नारायण गुरु (1854) का आंदोलन देखा जा सकता है। जिसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं। यह आंदोलन जाति-प्रथा के विरुद्ध किया गया आंदोलन था। जिसका लोकप्रिय नारा था, "जाति मत पूछो, जाति मत बताओ और जाति के बारे में मत सोचो।"[174] नारायण गुरु द्वारा चलाए गए आंदोलन का साहित्य पर भी काफ़ी प्रभाव दिखाई देता है। इस बारे में कँवल भारती लिखते हैं- "नारायण गुरु के आंदोलन ने केरल के साहित्य में नई

[173] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 52

[174] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 54

रचनाशीलता को जन्म दिया था। करूप्पन और कुमार आशान जैसे रचनाकार इसी आंदोलन की देन थे, जिन्होंने जाति-प्रथा पर प्रहार करने वाली रचनाएँ लिखी थीं।"[175]

एक और आंदोलन जो दलित आंदोलन के इतिहास को मज़बूती देता है। जाति-प्रथा एवं वर्ण-व्यवस्था का विरोध कर नई चेतना भारतीय समाज में भर देता है। वह आंदोलन 'पेरियार रामास्वामी नायकर' (1879-1973) का है। पेरियार ने जोरदार रूप में ब्राह्मणवाद का विरोध किया साथ ही उस ईश्वर के अस्तित्व को भी नकार कर ईश्वर के आस-पास रचे गए शोषण के चक्र को तोड़ने का प्रयास भी उन्होंने किया, क्योंकि इस चक्र के कारण सदियों से दलितों-शोषितों का शोषण होता आया है इस बात से वे परिचित थे। कँवल ने पेरियार की इस बात को उद्धृत किया – "ईश्वर नहीं है, जिसने ईश्वर का आविष्कार किया वह मूर्ख है, जिसने ईश्वर का प्रचार किया वह दुष्ट है और जिसने ईश्वर की पूजा की वह असभ्य है।"[176]

शिक्षा के प्रति पेरियार रामास्वामी नायकर के विचार भी ध्यान देने लायक हैं। वे वर्ण-व्यवस्था को मिटाने के लिए शिक्षा पर बल देते हैं। साथ ही शिक्षा से दूर रखे गए दलित-शोषित वर्ग की उन्नति के लिए उनका कहना था- "कम से कम पंद्रह वर्षों तक ब्राह्मणों और उच्च वर्गों का कालेज तथा तकनीकी संस्थानों में प्रवेश रोक देना चाहिए, तभी वर्ण व्यवस्था को ख़त्म किया जा सकता है।"[177] एक और विशेष बात पेरियार में दिखाई देती है, जो कँवल भारती के लेखन में रेखांकित हो न सकी। वह है- वे (पेरियार) स्त्री स्वतंत्रता के पक्षधर रहे हैं। वे सभ्य जीवन का वास्तविक आधार स्त्री का पुरुष के साथ समान दर्जे का संबंध मानते हैं। स्त्री 'शुचिता' को लेकर समाज व्यवस्था बहुत क्रूर रही है। इस बारे में उनका कहना है- "शुचिता के नाम पर पति द्वारा पत्नी के प्रति बरती जाने वाली क्रूरता को, जिसे पत्नी को हिंसा के रूप में भी सहन करना पड़ता है, समाप्त कर देना चाहिए।"[178] वे स्त्री स्वाधीनता के कठोर

[175] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 54
[176] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 55
[177] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 56
[178] पेरियार ई. वी. रामासामी, संपा. प्रमोद रंजन - जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता, पृ. सं. 25

पक्षधर रहे हैं। उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं, वे एक जगह कहते हैं- "महिलाओं को दासों की तरह घरेलू काम-काज, जैसे-फर्श की सजावट (उत्तर भारत में रंगोली तथा दक्षिण भारत में कोलम), उपले बनाना, बर्तन माँजना, सामूहिक नृत्य (कुम्मी) और कोलाट्टम के साथ नृत्य करने का प्रशिक्षण मत दीजिए।"[179]

वर्ण-व्यवस्था एवं जातिवाद का विरोध कर जन-जागरण का कार्य चांद गुरु जो कि बंगाल से थे, इन्होंने 1891 में 'चंडाल' शब्द के विरुद्ध आंदोलन चलाकर किया था। मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ इलाकों में ज्योति गुरु घासीदास ने 'सतनामी संप्रदाय' चलाकर जातिगत भेदभाव को दूर करने का काम किया था। गुरु घासीदास के आंदोलन के बारे में कँवल लिखते हैं- "उनके आंदोलन के तीन सूत्र थे – सतनामी बनो, संगठन बनाओ और संघर्ष करो। उनका समय 1800 के आसपास का है। कहना न होगा कि दलितों को संगठन और संघर्ष के मार्ग पर ले जाने वाले आंदोलन का जन्म डॉ. आंबेडकर से भी एक शती पहिले छत्तीसगढ़ में हो चुका था।"[180]

देखा जा सकता है कि कँवल भारती न सिर्फ़ डॉ. आंबेडकर के पूर्व हुए आंदोलनों का यहाँ मूल्यांकन कर रहें हैं बल्कि अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से दलित आंदोलन को क्रमबद्ध भी कर रहे हैं। जितने आंदोलन डॉ. आंबेडकर के पहले हुए उनमें जातिगत भेदभाव के प्रति विद्रोह है, साथ-ही-साथ इन आंदोलनों का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि ये आंदोलन दलितों को संगठित कर रहे थे और उन्हें अन्याय के विरोध में संघर्ष के रास्ते पर ले जा रहे थे।

हिंदी नवजागरण के मूल्यांकन की बात करें तो हम यह देख चुके हैं कि कँवल भारती 19वीं सदी के नहीं बल्कि 20वीं सदी के हिंदी नवजागरण को मानते हैं। इस नवजागरण के उद्भावक एवं नायक दलित-पिछड़ी जातियों से रहें हैं। जिनका लक्ष्य हिंदू धर्म को बचना नहीं था ना ही उसका पुनरुत्थान बल्कि अपने हक़ अधिकार को स्थापित करने का रहा है। चाहे

[179] पेरियार ई. वी. रामासामी, संपा. प्रमोद रंजन - जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता, पृ. सं. 26
[180] कँवल भारती – दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 57-58

वह अधिकार सामाजिक क्षेत्र में हो या राजनीतिक, या शिक्षा के क्षेत्र में। कह सकते हैं यह अस्तित्व के लिए लड़ा गया संघर्ष है।

इस हिंदी नवजागरण के मूल्यांकन में जो नाम प्रमुख रूप से कँवल भारती सामने ले आते हैं वह नाम है – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर'। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' ने हिंदी प्रदेश में दलितों, अति-पिछड़ों के लिए सामाजिक के साथ-साथ राजनीतिक अधिकारों के लिए सशक्त आंदोलन खड़ा किया था। जिसका नाम – 'आदि हिंदू आंदोलन' था। इस आंदोलन पर तत्कालीन अस्तित्व के लिए लड़े गए आंदोलनों का प्रभाव रहा है। इस बात को कँवल भारती सामने लाते हैं। कँवल लिखते हैं- "उन्नीसवीं शताब्दी में मद्रास में गैर ब्राह्मणों का द्रविड़ आंदोलन अस्तित्व में आया। इसी समय वहाँ के अछूतों ने अपने को 'आदि द्रविड़' कहा और एक दलित दार्शनिक इयोथी टास (Iyothee Thass) ने 1892 में आदि द्रविड़ जनसभा की स्थापना की। यह आंदोलन बाद में कर्नाटक में 'आदि कर्नाटक' तथा आंध्रप्रदेश में 'आदि आंध्रा' के रूप में स्थापित हुआ।"[181]

इन आंदोलनों का रूप राष्ट्रीय नहीं था यह अलग-अलग राष्ट्रीयताओं में विभक्त रहे हैं। जैसा कि कँवल भारती मानते हैं इन आंदोलनों को राष्ट्रीय स्वरूप मिला बीसवीं शताब्दी में "जब हैदराबाद, पंजाब और उत्तरप्रदेश में 'आदि हिंदू आंदोलन' आरम्भ हुए।"[182] स्वामी अछूतानंद के आंदोलन की हिंदी प्रदेशों में काफ़ी प्रभावी भूमिका रही है। इनके आदि हिंदू आंदोलन के प्रभाव का एक परिणाम यह हुआ कि उसी समय संयोग से पंजाब में 'आदि धर्म आंदोलन' खड़ा हो गया। जिसके संस्थापक रहे हैं बाबू मंगूराम मूगोवालिया (1886-1980)। लेकिन 'हिंदू' शब्द को लेकर दोनों आंदोलनों में फ़रक है। जिसे कँवल भारती स्पष्ट करते हैं- "बाबू मंगूराम ने 'हिंदू' शब्द को नहीं अपनाया। उन्होंने 'आदि धर्म' को मुसलमानों, हिंदुओं

[181] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 35-36
[182] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 36

और सिखों तीनों से पृथक और स्वतंत्र धर्म का रूप दिया। किंतु स्वामी अछूतानंद ने 'हिंदू' शब्द को 'मूल निवासी' के अर्थ में स्वीकार किया था।"[183]

अतः दलित आंदोलनों के परस्पर अंत:संबंधों को देखने के बाद हिंदी नवजागरण में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' के 'आदि हिंदू आंदोलन' का सूक्ष्म रूप से मूल्यांकन किया जाना आवश्यक होगा और यह भी देखा जाना कि वह किस रूप में हिंदी प्रदेशों में जागरण का कार्य कर रहा था।

2.4.1.1 स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और उनका आंदोलन :

स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' का जन्म 6 मई 1879 ई. में हुआ था। उनके पूर्वज सौरिख गांव तहसील छिबरामऊ, उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। गांव के जातिगत भेदभाव और शोषण के कारण वे वहाँ से 'उमरी' आ बसे। वहीं अछूतानंद का जन्म हुआ और उनके पिता ने अपने पिता का नाम पुत्र को दे दिया। वह नाम था – 'हीरालाल'। आर्य समाज संन्यासी होने के बाद अछूतानंद का नाम 'हरिहरानंद' हुआ। कुल सात साल तक हरिहरानंद ने आर्य समाज का प्रचार किया। अछूतानंद ने आर्य समाज संन्यासी एवं इसके नेताओं को ब्राह्मणवाद से ग्रस्त पाकर आर्य समाज को छोड़ दिया। इसके बाद इन्होंने कबीर पंथ को अपना लिया और फिर अपना नाम बदल कर 'हरिहर' नाम रख लिया था।

अछूतानंद के आंदोलन के लिए ज़मीन तैयार करने काम आदि कर्नाटक, आदि आंध्रा जैसे आंदोलनों ने किया है। सन् 1912 से ही आदि हिंदू सम्मेलन का आयोजन करने वाले भाग्यरेड्डी वर्मा के आंदोलन का प्रभाव अछूतानंद के आदि हिंदू आंदोलन पर स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। दरअसल इस पूरे दलित जागरण को उभारने में अंग्रेजी सत्ता की पृष्ठभूमि कारक के रूप में दिखाई देती है। इस बात को स्पष्ट रूप में समझने के लिए गेल आमवेट की

[183] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 185

बात पर ध्यान देना होगा, जिसमें वे तत्कालीन दलित परिस्थिति एवं आंदोलनों के साथ दलितों में आए परिवर्तन को अंग्रेजी सत्ता को कारक मानती हैं। गेल आमवेट लिखती हैं – "मांगू राम, अछूतानंद, भाग्यरेड्डी वर्मा तथा किसन बंसोडे आंबेडकर से जरा पहले की पीढ़ी के थे। उन्होंने एक नये आंदोलन का प्रतिनिधित्व किया तथा उनके संगठन का मुख्य आधार ग्रामीण अछूत लोगों में आयी प्रगति था। कुछ अछूत नयी फैक्ट्रियों तथा उद्योगों में लग गये थे, कुछ विदेशी बागानों में या भारतीय सेना में सिपाहियों के रूप में जा रहे थे तथा कुछ अन्य गाँव में अपने पारम्परिक पेशे से मिली ज़मीन या कारखानों में लगने से या अन्य प्रकार की आमदनी से खरीदी गयी ज़मीन पर खेती में लग गये थे। दलित संगठनों के नेतृत्व की बागडोर एक विकासशील किंतु छोटे शिक्षित या यों कहें कि अर्द्धशिक्षित वर्ग के हाथ में थी।"[184]

अछूतानंद उम्र में डॉ. आंबेडकर से बड़े थे। अछूतानंद के आंदोलन को दो भागों में विभाजित कर के देखा जा सकता है। कँवल भारती ऐसा मानते हैं कि अछूतानंद का आंदोलन पहले धार्मिक रहा फिर राजनीतिक हुआ। कहने का तात्पर्य यह कि अछूतानंद का 'आदि हिंदू आंदोलन' धार्मिक कम राजनीतिक ज़्यादा रहा है। वह कैसे रहा कँवल भारती की आलोचना के माध्यम से देखने की कोशिश करते हैं।

'आदि हिंदू आंदोलन' का धार्मिक आधार देखा जाए तो यह आंदोलन अपने तत्कालीन आंदोलनों की तरह अपने दलित समाज को इस देश की मूल जाति या मूलनिवासी के रूप में स्थापित करने का प्रयास करते हुए दिखाई देता है। अछूतानंद न सिर्फ़ दलितों को भारत के मूलनिवासियों के रूप में सिद्ध करने की कोशिश करे रहें थे बल्कि सामाजिक एवं धार्मिक रूप से उन्हें जागृत भी कर रहे थे। उनका यह कार्य कैसा रहा कँवल भारती के ही शब्दों में – "1912 से 1922 तक स्वामी ने जाति-सुधार का काम किया। इस सम्बद्ध में उन्होंने सात बातों पर जोर दिया। ये थीं 1) शिक्षा, 2) गंदे पेशों का त्याग, 3) मृतक पशुओं के

[184] गेल ओमवेट – दलित दृष्टि, अनु. रमणिका गुप्ता एवं अक़ील क़ैस, पृ. सं. 46

सड़े मांस को खाने से रोकना, 4) बेगार के विरुद्ध संघर्ष, 5) सत बसना का परित्याग – यह एक ऐसी प्रथा थी, जिसमें दाई का काम करने वाली चमार महिला को सात दिन तक सवर्ण जच्चा के घर में रहकर साफ-सफाई करनी होती थी, 6) नशा त्याग और 7) पाखंड, अंधविश्वास का खात्मा।"[185] देखा जा सकता है कि अछूतानंद हिंदी नवजागरण के समय कितना महत्त्वपूर्ण काम कर रहे थे। पर पूरे हिंदी नवजागरण में उनके नाम तक से दूर रहने का कार्य हिंदी आलोचना की परम्परा में रहा है, यह काफ़ी चिंता का विषय है।

अछूतानंद के आदि हिंदू आंदोलन का जो राजनीतिक पक्ष है, वह भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा है। इसकी ओर ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है। इंग्लैड के युवराज 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' जब भारत यात्रा पर आए उस समय हिंदू समाज के साथ काँग्रेस पार्टी भी उनका विरोध कर रही थी। जबकि अछूतानंद एवं उनके साथी 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' के स्वागत के लिए युवराज स्वागत समिति का गठन कर एक विशाल जन सभा का आयोजन करते हैं। इस सभा में अछूतानंद जो कार्य करते हैं, उसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं- "इस समारोह में स्वामी ने प्रिन्स को 17 सूत्री माँग-पत्र दिया, जिसमें नगरपालिकाओं, टाउन एरिया, परिषद आदि में अछूत जातियों को प्रतिनिधित्व दिये जाने की माँग की गयी थी। काँग्रेस और हिंदुओं ने इस आयोजन की आलोचना की। उन्होंने स्वामी और उसके साथियों को अँग्रेजों का पिट्ठू आदि कहकर उनके विरुद्ध खूब जहर उगला।"[186]

'आदि हिंदू आंदोलन' के संदर्भ में सन् 1930 से जो परिवर्तन हुए वह यह कि - डॉ. आंबेडकर ने दलितों के लिए राजनैतिक अधिकारों की माँग की। अत: यह आंदोलन डॉ. आंबेडकर को अपने राजनैतिक अधिकारों को लेकर समर्थन देता रहा और तभी से इसमें जाति-सुधार के साथ-साथ राजनीति का विषय भी जुड़ गया।

[185] कँवल भारती - स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 178
[186] कँवल भारती - स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 181

डॉ. आंबेडकर और अछूतानंद साइमन कमीशन के साथ कुछ दलित एवं पिछड़ी जातियों के बस्तियों का अवलोकन करने साथ गए थे। डॉ. आंबेडकर सभी आदि आंदोलनों के, सभी दलित संगठनों के मान्य नेता थे, इसलिए 'पूना पैक्ट' को उन्होंने स्वीकारा और इस पर अछूतानंद के हस्ताक्षर भी हैं। इस बात को भी कँवल सामने ले आते हैं। अछूतानंद का आंदोलन राजनीतिक अधिकारों के लिए भी संघर्ष करता रहा है। अब अछूतानंद के साहित्य का मूल्यांकन हिंदी नवजागरण के संदर्भ में कँवल किस रूप में करते हैं इसे देखा जाना और उसका मूल्यांकन आवश्यक है।

2.4.2 हिंदी नवजागरण और दलित रचनाकार :

स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' की यह बात 'आदि हिंदू आंदोलन' के राजनीतिक संघर्ष को स्पष्ट कर देती है, जहाँ वे आदि हिंदू सभा में कहते हैं- "हमारे मुल्की हक़ों का ईमानदारी से बंटवारा कर दिया जाए। हमारी संख्या के अनुपात से हमारे सारे मुल्की हक़ हमें मिलने चाहिए। यही हमारी माँग है। और अगर सरकार समझती है कि हमारे साथ ज्यादती हुई है, और हम बहुत गिर गये हैं, तो हमारी शिक्षा आदि के लिये सरकार खास तौर से इंतजाम करे।"[187] अब हिंदी नवजागरण के संदर्भ में उनके साहित्यिक कर्म को भी देखा जाना समीचीन होगा। पर इससे पहले हीरा डोम की कविता का मूल्यांकन करना आवश्यक लगता है।

2.4.2.1 हीरा डोम :

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' को सन् 1914 में 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। इसे हिंदी दलित साहित्य की पहली कविता का मान मिला है। जिस समय यह कविता प्रकाशित हुई, वह समय हिंदी नवजागरण का समय रहा है।

---

[187] संपा. कँवल भारती - स्वामी अछूतानंदजी 'हरिहर' संचयिता, पृ. सं. 148

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है कि अछूतानंद पर उस समय चल रहे आदि आंदोलनों का प्रभाव रहा है। इन आंदोलनों का मुख्य संघर्ष अस्तित्व के साथ रहा है। इसलिए उन आंदोलनों में सामाजिक एवं धार्मिक रूप से अपनी तलाश दिखाई देती है। कँवल भारती जब हिंदी दलित नवजागरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं, तब वे हीरा डोम की कविता को रेखांकित करते हैं, साथ ही उस समय के तत्कालीन परिस्थितियों में हीरा डोम तथा उनकी कविता का मूल्यांकन भी करते हैं।

हीरा डोम की कविता का समय कँवल भारती के शब्दों में – "'अछूत की शिकायत' का रचना काल भारत का औपनिवेशिक काल है – भारत में अंग्रेजी राज था, जिसके अधीन देश की सारी रियासतें थीं। महात्मा गांधी के नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई का दौर अभी शुरू नहीं हुआ था, परंतु दलित आंदोलन की शुरूआत हो चुकी थी। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिराव फुले, उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानंद और बंगाल में चाँद गुरू दलित वर्गों में नवजागरण कर रहे थे।"[188]

इन आंदोलनों से हीरा डोम की कविता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। 'अछूत की शिकायत' में उपर्युक्त बात को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है और कँवल भारती ने इसी बात को दिखाने की कोशिश आलोचना के माध्यम से की है। कविता के बारे में वे कहते हैं- "एक अछूत अंग्रेज सरकार के सामने अपनी 'याचिका' अथवा 'अपील' प्रस्तुत कर रहा है। वह सरकार के दरबार में यह बता रहा है कि इस देश के अछूत रात-दिन कैसे-कैसे दु:ख भोगते हैं। इसी अपील से कविता शुरू होती है– हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी, हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबी।"[189] जैसे कि कविता के शीर्षक से ही यह अंदाजा हो जाता है कि कविता अछूत की शिकायत से संबंधित है। पर यह कविता सिर्फ़ दलितों के दु:खों का ही चित्रण नहीं

[188] कँवल भारती – दलित कविता क संघर्ष, पृ. सं. 36
[189] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 37

करती है बल्कि अपने अस्तित्व की तलाश में वह उन मान्यताओं का विरोध भी करती है जिसकी वजह से दलित समाज को शोषण का शिकार होना पड़ा।

कँवल भारती इस कविता में उस बात को रेखांकित करते हैं जो कबीर के 'न हिंदू न मुसलमान' वाली बात से हुबहु मिलती है जिसमें कबीर अपने अलग अस्तित्व को रेखांकित करते हैं वैसे ही कवि भी अपने धर्म को छोड़ना (बे धर्म होना) नहीं चाहता। वह हिंदू धर्म से अलग है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

"पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजां
बे धरम होके रंगरेज बनि जाइबि।
हाय राम, धरम न छोड़त बनत बाजे
बे धरम होके कैसे मुहवां देखाइबि।"[190]

कविता के 'बे धरम' वाली पंक्ति पर कँवल भारती लिखते हैं- "कवि किस धर्म की बात कर रहा है? यह हिंदू धर्म तो नहीं हो सकता, क्योंकि इसी धर्म ने उन्हें अछूत बनाया है। फिर बेधर्म होने का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है कि कवि बेधर्म नहीं है। वह एक ऐसे धर्म को मानता है, जो दलितों का अपना धर्म है। यह निर्गुण धर्म हो सकता है। जिसकी परम्परा में कबीर और रैदास आते हैं।"[191]

कवि कविता में ईश्वर पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा कर देता है। जब कवि कहता है- 'डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।' सिर्फ़ इतना ही नहीं कबीर और रैदास की परम्परा जैसे कि श्रम पर आधारित रही है। जिसके प्रमाण उनके काव्य से भी मिलते हैं वही श्रम की परम्परा हीरा डोम अपनी कविता में उद्धृत करते हुए दिखाई देते हैं-

"बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,
ठकुरे के लेखे नाहिं लउरि चलाइबि।..

[190] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 38
[191] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 38

अपने पसिनवा कै पइसा कमाइबजां,

घर भर मिलि जुलि बांटि चोंटि खाईबि।"[192]

कँवल भारती जिस सूक्ष्म दृष्टिकोण से दलित साहित्य को देखने-समझने का प्रयास करते हैं, वह काफ़ी सूक्ष्मता के साथ ही संतुलित भी दिखाई देता है। इन पंक्तियों का सार कँवल के इन शब्दों से मिलता है- "उसकी (कवि) दृष्टि में श्रम का महत्त्व है और बिना श्रम के, भीख, चोरी और अत्याचार करके खाने वाला मनुष्य सम्मान का अधिकारी नहीं है।"[193]

हिंदी नवजागरण की अवधारणा को स्पष्ट करने वाली हिंदी आलोचना की परम्परा में हीरा डोम का और दलितों के आदि आंदोलनों का कोई नामोनिशान नहीं है। इसलिए दलित पक्षधरता के लिए कँवल की आलोचना महत्त्वपूर्ण लगती है जो हिंदी दलित साहित्य का इतिहास भी क्रमशः रखती हुई दिखाई देती है। अतः अब स्वामी अछूतानंद साहित्य को भी देखना काफ़ी ज़रूरी है।

2.4.2.2 स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' :

स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' का व्यक्तित्व काफ़ी विशाल रहा है। वे न सिर्फ़ कवि थे बल्कि नाटककार, संपादक एवं समाज सुधार के लिए संघर्ष करने वाले नायक भी रहे हैं। जिनके राजनीतिक संघर्ष को हम पहले ही देख चुकें हैं। अब उनके साहित्यिक योगदान पर भी कँवल भारती की आलोचना के संदर्भ में विचार करना आवश्यक है।

कँवल भारती की यह बात सच के करीब दिखाई देती है जब वे कहते हैं- "स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' के बारे में हिंदी साहित्य का इतिहास उसी तरह मौन है, जिस तरह भारतीय राजनीति का इतिहास डॉ. आंबेडकर के बारे में। इसका इसके सिवाय क्या कारण हो सकता है कि इतिहास के ब्राह्मण लेखकों ने दलित वर्ग के इन दोनों नायकों को ब्राह्मणवाद का विरोधी

[192] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 40
[193] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 42

मानकर इतिहास में जानबूझ कर स्थान नहीं दिया।"[194] हिंदी नवजागरण की अवधारणा को स्पष्ट करने वाले डॉ. रामविलास शर्मा भी अछूतानंद के आंदोलन एवं उनके साहित्य पर कोई बात नहीं रखते हैं। जबकि हिंदी प्रदेश में आदि हिंदू आंदोलन का राजनीति संघर्ष दलित, पिछड़ी जातियों में नवजागरण की चेतना भर रहा था और अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर रहा था। बहरहाल, अछूतानंद के साहित्य में भी ब्राह्मणवाद का विरोध प्रखर रूप में दिखाई देता है। कँवल भारती ने उनके साहित्य का संचयन कर दलित साहित्य के साथ-साथ हिंदी साहित्य को भी समृद्ध किया है।

स्वामी अछूतानंद का बचपन से ही कबीर के दोहों से वास्ता रहा है। इसी कारण उन के साहित्य में भी अन्याय, अत्याचार, शोषण, भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष दिखाई देता है। दलित परम्परा हमेशा से ही वर्ण-व्यवस्था के विरोध की परम्परा रही है। इसी कारण उनके साहित्य में भी यह विरोध दिखाई देता है। मनु के मनुस्मृति का विरोध अछूतानंद इन शब्दों में करते हैं –

"निश दिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।।
ब्राह्मण व क्षत्रियों को सबका बनाया अफसर।
हमको 'पुराने उतरन पहनो' बता रही है।।"[195]

कहा जा सकता है कि मनुस्मृति शूद्र, दलित एवं स्त्रियों के लिए अमानवीय एवं अन्यायकारक रही है। इसी कारण डॉ. आंबेडकर मनु को भूत/शैतान की उपाधि देते हैं। वे (डॉ. आंबेडकर) लिखते हैं- "मैं मनु के विषय में कठोर लगता हूँ, परंतु यह निश्चित है कि

[194] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 171
[195] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी 'हरिहर' संचयिता, पृ. सं. 128

मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसका भूत उतार सकूं। वह एक शैतान की तरह जिंदा है, किंतु मैं नहीं समझता कि वह सदा जिंदा रह सकेगा।"[196]

एक समतामूलक समाज निर्माण के लिए मनु के शैतान का जिंदा होना बहुत बड़ी बाधा है। दलित साहित्य का यह भी एक उद्देश्य रहा है- इस मनु के भूत को उतार सके। क्योंकि इसी मनु द्वारा लिखित मनुस्मृति पर जाति-व्यवस्था खड़ी है जो देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। डॉ. आंबेडकर लिखते हैं – "जातपांत आध्यात्मिक और राष्ट्रीय विकास, दोनों के लिए हानिप्रद है।"[197] यही कारण है कि स्वामी अछूतानंद ही नहीं समस्त दलित साहित्य एवं आंदोलन जातिभेद एवं ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ है।

स्वामी अछूतानंद की कविताओं में सिर्फ़ वर्ण-व्यवस्था एवं जातिभेद का ही विरोध नहीं है, बल्कि दलित समाज के इतिहास, दर्शन की भी गवेषणा मिलती है। वे दलितों को भारत का मूल निवासी मानते हैं। जिन्हें छल-बल से बाहर से आयी आर्य जाति ने जीतकर अपना राज्य स्थापित किया था। अछूतानंद के इस पक्ष को कँवल भारती अपनी आलोचना के माध्यम से उद्घाटित करते हैं और अछूतानंद की कविता को प्रस्तुत कर इस पक्ष को पुख़्ता करते हैं-

"हमारे पुरखे थे सीधे-सच्चे, न जानते थे कपट व छल को।
इसी के दक्षिण में हट गये वे, ये शोक-उच्छ्वास, पढ़ के देखो।।
बचे जो जकड़े गये वही फिर गुलामी करने को आर्यों की।
वही है 'हरिहर' हमारे नेशन बनी जो यों दास, पढ़ के देखो।।"[198]

स्वामी अछूतानंद ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पुनर्जन्म, कर्मफल का खंडन एवं गांधी जी द्वारा अछूतों के

[196] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय खंड-1, भारत में जातिप्रथा, पृ. सं. 29
[197] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय खंड-1, जातिप्रथा-उन्मूलन, पृ. सं. 118
[198] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 232

लिए किया गया 'हरिजन' शब्द प्रयोग, उसका भी विरोध स्वामी 'कियौ हरिजन-पद हमैं प्रदान' कविता लिखकर किया। निर्गुण संतों के धर्म को दलितों का धर्म अछूतानंद मानते हैं उसी की ओर ले जाने का प्रयास उनके आंदोलनों से दिखता है। कबीर के काव्य का प्रभाव उन पर भली-भाँति देखा जा सकता है। स्वामी अछूतानंद का ही एक पद जो कबीर की छाप लिए हुए है, जिसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं-

"बहुत मिले मोहिं नेमी धरती प्रात करैं असनाना।
आतम छोड़ि पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना।"[199]

अछूतानंद ने खंड काव्य का सृजन भी किया है जिसमें अछूतों के इतिहास, दर्शन की बात की गई। साथ ही कबीर की तरह उन सभी बातों का विरोध किया गया जो अछूतों के विकास के लिए बाधक रहे हैं।

स्वामी अछूतानंद के नाटकों का भी कँवल भारती मूल्यांकन करते हैं। अछूतानंद ने दो नाटकों का सृजन किया है– 'राम राज्य न्याय' और 'मायानन्द बलिदान'। ये दोनों नाटक 'साँगीत' विधा में लिखे गए हैं। नाटकों के दो प्रकार रहे हैं एक – साहित्यिक एवं दूसरा – लोक नाटक। साँगीत विधा में लिखे गए अछूतानंद के नाटक लोक नाटक की धारा में आते हैं। लोक नाटकों के बारे में कँवल भारती लिखते हैं- "लोक नाटक सीधे लोक से जुड़े होते हैं। यद्यपि उनका उद्देश्य लोक का मनोरंजन करना होता है, पर इसके बावजूद वे उद्देश्यपरक होते हैं, जिसमें वे धार्मिक और सामाजिक शिक्षा को अपने केंद्र में लिये होते हैं।...आमतौर पर, इन्हें खुले में ही एक तख्त डालकर बिना पर्दे के खेला जाता था। आज इनका रूप नुक्कड़ नाटकों में देखा जा सकता है।"[200]

स्वामी अछूतानंद के नाटक 'राम राज्य न्याय' पर कँवल भारती विशेष रूप से कुछ लिखते नहीं हैं। इसका कारण इस नाटक में किए गए बदलाव रहे हैं, जिसे चंद्रिकाप्रसाद

---

[199] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 234-235
[200] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 252

जिज्ञासु ने किए हैं। जो स्वामी अछूतानंद के साथी, साहित्यकार एवं प्रकाशक रहे हैं। इस बारे में कँवल लिखते हैं- "जिज्ञासु जी ने स्वामी जी की मूल रचना का सम्पादन न किया होता और उसे उसी रूप में प्रकाशित किया होता, जिस रूप में वह लिखी गयी थी, तो स्वामी जी के भाषा और शिल्प को समझने में आज आसानी होती। पर, जिज्ञासु जी ने स्वामी जी की मूल रचना की हत्या करके उनकी एक मौलिक कृति से हिंदी जगत को वंचित कर दिया।"[201]

कँवल भारती की आलोचना एक ईमानदार आलोचक की आलोचना रही है। इस बात का प्रमाण ऊपर देखा ही जा सकता है कि मूल कृति में बदलाव होने पर वे उस रचना की हत्या समझते हैं। इसी कारण उनकी आलोचना में इस नाटक का मूल्यांकन दिखाई नहीं देता है। जो एक नाटक बचता है उसका वे मूल्यांकन करते हैं। वह नाटक है – 'मायानंद बलिदान'। जो कि उनके पास मूल रूप में विद्यामान रहा है और इसका 'स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' संचयिता' में संकलन भी किया है।

'मायानंद बलिदान' यह नाटक हिंदू संस्कृति में विद्यमान नरबलि प्रथा को रेखांकित करता है। जिस की कहनी गुजरात प्रदेश की है, जहाँ एक दलित साधु को ब्राह्मणशाही के नियंत्रण से पालित राजशाही मौत के घाट उतारती है। मायानंद नाम का साधु वेद-पुराण आदि के विरोध में प्रचार करता है। राज्य में बाँध का निर्माण बार-बार किया जाता है, पर सफल नहीं होता है। विप्र गण जो वेद विरोधी मायानंद पर क्रोधित हो उसे ही इसमें नरबलि बनाने की योजना बनाते हैं। राजा के आदेश अनुसार उसकी नरबलि दी जाती है। पर वह अपनी अंतिम इच्छा में अछूत जातियों की आज़ादी माँगता है। यह इस नाटक की कहानी रही है।

'मायानंद बलिदान' नाटक की एक विशेषता यह है कि उसमें दोहा, चौबोला, दौड़, बहरे तबील, ग़ज़ल, ख्याल, भँवर धुनि, आल्हा धुनि, भजन, कुण्डली, सवैया और कवित्त का प्रयोग किया गया है। जिसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं।

---

[201] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 256

नाटक में दलितों के मुक्ति के लिए प्राणों की बलि देने वाले मायानंद को प्रस्तुत किया है। स्वामी अछूतानंद के इस नाटक एवं मायानंद के बारे में कँवल लिखते हैं- "मायानंद ने इतिहास का निर्माण किया था। और स्वामी अछूतानंद ने इस लोक नाटक की रचना करके इतिहास के निर्माण में दलितों की भूमिका को रेखांकित किया है।"[202]

स्वामी अछूतानंद का एक पक्ष रह ही जाता है, वह है- उनकी पत्रकारिता। उन्होंने 'आदि हिंदू प्रेस' का स्थापना की थी और 1922-23 तक 'प्राची हिंदू' का भी संपादन किया था। जिसके प्रकाशक देवीदास जाटव थे। इस इतिहास को रेखांकित करते हुए कँवल लिखते हैं – "हिंदी की इस प्रथम दलित पत्रकारिता के प्रथम संस्थापक, प्रथम संपादक, प्रथम मुद्रक और प्रथम पत्रकार थे।"[203]

कह सकते हैं कँवल की आलोचना हिंदी दलित नवजागरण की धारा में एक बहुत ही व्यापक व्यक्तित्व वाले रचनाकार, कवि, संपादक, नाटककार को प्रस्तुत करती है। नाटकों की बात की जाए तो इन नाटकों में भी दलितों के लिए आत्मसम्मान से जीने के लिए संघर्ष करते दलित नायकों का इतिहास है। अस्मिता की पहचान, इतिहास की गवेषणा इन बातों को अछूतानंद के रचना-कर्म में देखा जा सकता है। जिनके रचनाकर्म का मूल्यांकन तो बहुत दूर की रही उनके नाम तक को हिंदी नवजागरण में जगह देने की किसी को नहीं सूझी है।

[202] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 265

[203] कँवल भारती – स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हिंदी नवजागरण, पृ. सं. 196

निष्कर्ष : कँवल भारती की आलोचना हिंदी नवजागरण का मूल्यांकन करते हुए हिंदी दलित नवजागरण की धारा का रेखांकन करती है। जिसका संबंध भारतीय दलित आंदोलनों के साथ भली-भाँति देखा जा सकता है। कँवल की आलोचना हिंदी दलित नवजागरण की धारा को भारतीय नवजागरण से अलगाकर नहीं देखती है। यह उनके आलोचना की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है।

हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों में सिवाय महावीरप्रसाद द्विवेदी के, कोई भी रचनाकार रूढ़िवादी मानसिकता से मुक्त नहीं दिखाई देता है। प्रेमचंद का रचना संसार विस्तृत होने के बावजूद दलित यथार्थ को वे प्रस्तुत न कर सके। पर उनका यह महत्त्व रहा है कि उनके रचनाकर्म में दलितों को पहली बार साहित्य का विषय बनाया गया।

जैसा कि पहले भी लिखा गया है 'दलित चिंतन नवजागरण को राजभक्ति और देशभक्ति के द्वंद्व में नहीं देखता है, वरन् हिंदू समाज के पुनर्गठन में देखता है।' उसके लिए नवजागरण में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की पक्षधरता ज़रूरी है। यही कँवल भारती की आलोचना का आधार रही है।

दलितों की अस्मिता, अस्तित्व एवं इतिहास की गवेषणा करने वाले स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' को कँवल भारती की आलोचना हिंदी दलित नवजागरण की धारा के अग्रदूत के रूप में प्रस्तुत करती है। इस आलोचना का एक पक्ष यह भी है कि दलित आंदोलन का इतिहास भी वह इस मूल्यांकन के माध्यम से क्रमबद्ध कर रही है। यह बहुत ही ज़रूरी बात है कि इस्लाम एवं ईसाइयत के सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया में ब्राह्मणों ने अपने धर्म को बचाने की कोशिश की तो दलितों ने अपने धर्म और इतिहास को खोजने की। स्वामी अछूतानंद एवं हीरा डोम की कविता इस बात का प्रमाण दे जाती है। इन दोनों का मूल्यांकन कर कँवल भारती ने हिंदी साहित्य में जिन्हें वैदिक परम्परा के विरोध में होने कारण हाशिए पर ही रखा गया, उन्हें केंद्र में लाने का प्रयास अपनी आलोचना के माध्यम से किया है। जिससे

हिंदी साहित्य की ही सीमाएँ विस्तृत हुई हैं। चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासू के लेखन कार्य को संकलित किया गया। अभी हाल ही में जिज्ञासू पर चार भागों में ग्रंथावली आयी है। यह कँवल भारती का काम हिंदी दलित नवजागरण एवं साहित्य इतिहास के रेखांकन काम है। जिससे न सिर्फ़ हिंदी दलित साहित्य अपितु हिंदी साहित्य भी समृद्ध हुआ है।

निष्कर्ष रूप में, हिंदी नवजागरण की दलित धारा में सामंतवाद से मुक्ति के प्रयास हैं तो वहीं दूसरी ओर जनतांत्रिक मूल्यों को साहित्य और समाज में स्थापित करने के प्रयास भी दिखाई देते हैं। इसे दलित अस्मिता के जागरण का काल कहा जा सकता है। स्वामी अछूतानंद की ये पंक्तियाँ हिंदी नवजागरण की दलित धारा के संघर्ष को बयान करती हैं-

"इन लुटेरों के चक्कर में तुम मत पड़ो।
कायदे की लड़ाई है, डटकर लड़ो।।
उठ खड़े हो कमर बाँध हक़ पर अड़ो।
काम बिगड़े हुए सब बनाते चलो।
कौम को नींद से अब जगाते चलो।।"[204]

[204] संपा. कँवल भारती – स्वामी अछूतानंदजी 'हरिहर' संचयिता, (आदि वंश का डंका), पृ. सं. 123

तृतीय अध्याय

समकालीन दलित साहित्य में मूल्यांकन का प्रश्न और कँवल भारती

'दलित विमर्श' अपने शुरूआती दौर से ही आलोचना, प्रति-आलोचना का शिकार रहा है। इस आलोचना एवं प्रति-आलोचना के केंद्र में कहीं दलित विमर्श को अप्रत्यक्ष रूप में ख़ारिज करने की साज़िश थी, तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करने की कोशिश। स्वीकार, जो कि हिंदी साहित्य को और विस्तृत एवं लोकतान्त्रिक बना रहा था। वहीं दूसरी ओर ख़ारिज करने की अप्रत्यक्ष माँग, एक विशिष्ट वर्ग के हजारों सालों से किए जा रहे अमानवीय शोषण पर परदा डालने की कोशिश रही है।

भारतीय साहित्य हो या समाज उसमें हमेशा से ही दलित धारा रही है। जो हमेशा से ही समता, स्वतंत्रता एवं बंधुता की पक्षधर रही है। पर उसे हमेशा से ही रूढ़िवादी ताकतों का शिकार होना पड़ा। जिसके कारण वह साहित्य के साथ-साथ समाज में विलुप्त अवस्था तक पहुँच गयी। लेकिन हर युग के दलित नायकों ने उसे पुनः जीवित करने का प्रयास किया, जिसके कारण आज साहित्य में दलित विमर्श इतना प्रखर नज़र आता है।

दलित विमर्श 20वीं शताब्दी में प्रखर रूप में सामने आया। गैर-दलित आलोचकों की ओर से जो आलोचनाएँ हुई और उसके जवाब में दलित आलोचकों (विशेष रूप से कँवल भारती) के उत्तर, दलित विमर्श की सद्परिस्थिति में आवश्कता एवं अर्थवत्ता पर प्रकाश डालते हैं। इन्हीं जवाबों को तथा साहित्य को केंद्र में रखकर उसकी अर्थवत्ता का मूल्यांकन करना सार्थक प्रतीत होता है। इसके साथ ही दलित कविता का मूल्यांकन एवं विश्लेषण जो कि कँवल भारती की आलोचना को केंद्र में रखकर इस अध्याय में किया जाएगा। अतः दलित विमर्श की अर्थवत्ता से लेकर दलित कविता के मूल्यांकन को हम निम्नतः देख सकते हैं-

3.1 दलित विमर्श की अर्थवत्ता : एक मूल्यांकन

भारतीय समाज व्यवस्था में 'जाति' बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसकी भूमिका को समझे बग़ैर भारतीय व्यवस्था को नहीं समझा जा सकता है। आधुनिक युग में दलित साहित्य का उद्भव इसी के परिणाम स्वरूप है। इससे पूर्व के हिंदी साहित्य में जाति की महत्त्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है, जो कभी प्रत्यक्ष है तो कभी अप्रत्यक्ष। लेकिन दलित साहित्य इस जाति के उन्मूलन में लिखा गया सृजन कार्य है। जो कि एक विशिष्ट वर्ग की ओर से लिखा जा रहा है। जो अब तक के साहित्य में अछूता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि इससे पूर्व का साहित्य सिर्फ़ मनोरंजन, प्रकृति वर्णन, कल्पना में ही खोया रहा, जिसमें मानव की अनुभूतियों के लिए कोई जगह नहीं थी, थी भी तो वह अपवाद स्वरूप ही। दलित साहित्य मानव की संवेदना, दुःख-दर्द आदि को प्रस्तुत कर, मानव को साहित्य का केंद्र बनाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मानव प्रतिष्ठा दलित साहित्य में दिखाई देती है जो कि उसकी माँग है और यही दलित विमर्श का अर्थ है।

इस दलित विमर्श के केंद्र में वे कौन से सवाल और समस्याएँ हैं, उसे देखना होगा। कँवल भारती दलित विमर्श की अर्थवत्ता पर बात करते हुए लिखते हैं कि "दलित विमर्श सिर्फ़ एक जाति का विमर्श नहीं है, जैसी कि आम धारणा है कि किसी दलित समस्या को लेकर किया गया विमर्श ही दलित विमर्श है। यह धारणा ग़लत है। दलित विमर्श के केंद्र में दलित समस्या को नहीं नकारा जा सकता। पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केंद्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था। इसलिए दलित विमर्श के केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका सम्बन्ध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति के

आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के ही आधार पर क्यों न हो।"[205]

उपर्युक्त उद्धरण से यह कहा जा सकता है कि 'भेदभाव' चाहे वह जाति, रंग, नस्ल, लिंग और धर्म किसी भी तरह का क्यों न हो उसका नाश, उन्मूलन करने में ही दलित विमर्श की अर्थवत्ता छिपी हुई है। इसमें ही राष्ट्रहित दलित विमर्श देखता है। आज तक के साहित्य में इस भेदभाव को मिटाने का प्रयास नहीं किया गया। दलित समस्या को राष्ट्र की समस्या समझा ही नहीं गया। दलित चितंक राष्ट्र के उत्थान में दलित समस्या का अंत ज़रूरी मानते हैं। दलित चिन्तक की राष्ट्र सम्बन्धी अवधारणा एवं चिंता को स्पष्ट करते कँवल भारती लिखते हैं – "वे (दलित चिन्तक) दलित समस्या को राष्ट्रीय समस्या के रूप में देखते हैं। डॉ. आंबेडकर ने अनेक स्थलों पर जोर देकर इस बात को कहा है कि दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। दलित चिंतन में राष्ट्र पूरे भारतीय परिवार या कौम के रूप में है, जबकि ब्राह्मणों के चिंतन में राष्ट्र इस रूप में मौजूद नहीं है। उनके यहाँ एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना है, जिसमें सिर्फ़ द्विज हैं, न दलित हैं, न पिछड़ी जातियाँ हैं और न अल्पसंख्यक वर्ग है। इसलिए हिंदू राष्ट्र और हिंदू राष्ट्रवाद दोनों खंडित चेतना के रूप में हैं। दूसरे शब्दों में वर्णव्यवस्था ही हिंदू राष्ट्र का मुख्याधार हैं। दलित चिन्तक इस संकीर्ण अर्थ में राष्ट्र की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते। वे एक व्यापक अर्थवत्ता में राष्ट्र को स्वीकार करते हैं और उनकी व्यापक राष्ट्रीय चिंता है कि जिस देश में करोड़ों लोग जाति के आधार पर मानवाधिकारों से वंचित रखे गये हों, वह देश सभ्य कैसे कहला सकता है? एक देश की समाज-व्यवस्था में एक सवर्ण हमेशा सवर्ण क्यों रहता है? एक अछूत हमेशा अछूत क्यों रहता है? यह व्यवस्था अपरिवर्तनीय क्यों है? यह कैसी व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति की योग्यता कोई मायने नहीं रखती है और जाति ही योग्यता का मापदंड है"[206]

---

[205] कँवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 15

[206] कँवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 20-21

यहाँ यह देखा जा सकता है कि दलित वर्ग को मानवाधिकारों से वंचित रखा गया। जिसके कारण भारत कभी संगठित नहीं हो पाया। मानव अधिकारों से वंचित वर्ग को अधिकार देने की बात दलित विमर्श उजागर करता है और यह मानता है कि जब तक भारत में सामाजिक एकता स्थापित नहीं होगी, राष्ट्र का उत्थान तब तक नहीं हो सकता। कहने का अभिप्राय यह है कि सबको समान अधिकार की माँग दलित विमर्श के केंद्र में प्रमुख रूप से है।

सामाजिक भेदभाव के कारण राष्ट्र का उत्थान नहीं हो पाया है, इस बात को समझा जा सकता है। इसके साथ ही दलित विमर्श इस बात को भी रेखांकित करता है कि सामाजिक भेदभाव का जब तक अंत नहीं होता है तब तक आर्थिक समानता भारत में आना न के बराबर है। सामाजिक भेदभाव की जड़ 'जाति' के रूप में देख सकते हैं। डॉ. आंबेडकर का कहना काफ़ी महत्त्व रखता है। वे कहते हैं– "आप किसी भी दिशा में देखें, जाति एक ऐसा दैत्य है, जो आपके मार्ग में खड़ा है। आप जब तक इस दैत्य को नहीं मारोगे, आप न कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं, न कोई आर्थिक सुधार।"[207]

दलित विमर्श की अर्थवत्ता को इस रूप से देखा जा सकता है कि वह हाशिए के समाज को साहित्य में ला रहा है जो अब तक हाशिए पर रहा। वह साहित्य अब तक के शोषित, उपेक्षित समाज के मानव अधिकारों की बात कर रहा है। साहित्य के माध्यम से वह हिंदी साहित्य के साथ-ही-साथ पूरे भारतीय समाज की लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को तेज़ कर रहा है। कँवल भारती के शब्दों को उदाहरण स्वरूप कहा जाए तो "अछूत जातियों के मानवीकरण का सम्पूर्ण चिंतन ही दलित विमर्श का आधार और अर्थवत्ता है।"[208]

---

[207] डॉ. आम्बेडकर - भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा-उन्मूलन, बाबासाहेब डॉ. आम्बेडकर सम्पूर्ण वांडमय, खंड 1, पृ. सं. 66

[208] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. सं. 24

3.2 दलित साहित्य के ज़मीन की तलाश :

'दलित कविता का संघर्ष' शीर्षक किताब में कँवल भारती ने कई सारे मुद्दों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जैसे – हिंदी दलित साहित्य मराठी दलित साहित्य की क़लम है या नहीं, दलित कविता की शुरूआत कहाँ से मानी जाए, दलित साहित्य पर भाषागत त्रुटियों की बात की जाती है, वह कहाँ तक उचित है, दलित कविता ने किस तरह के सौन्दर्यशास्त्र को प्रस्तुत किया है आदि मुद्दों को देखा जा सकता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल जो दलित साहित्य की शुरूआती दौर में गैर-दलित आलोचकों एवं रचनाकारों की ओर से पूछे गए जिनका जवाब कँवल भारती अपने आलोचनात्मक कर्म से देते हैं। जिन्हें देखा जाना यहाँ महत्त्वपूर्ण होगा। जो सवाल गैर-दलित आलोचकों एवं रचनाकारों की ओर से आयें, वे इस प्रकार हैं – १) जब प्रगतिशील परम्परा मौजूद है, तो अलग से दलित साहित्य की धारा चलाने की ज़रूरत क्यों है? इस प्रश्न का जवाब कँवल भारती इस प्रकार देते हैं – "ज़रूरत इसलिये है क्योंकि प्रगतिशील परम्परा ने वर्ण और जाति के सवाल नहीं उठाये। वह प्रकारांतर से वर्णव्यवस्था की समर्थक ही रही। धूमिल के शब्दों में कहूँ, तो उनकी मुट्ठियाँ भी तनी रहीं और बगलें भी दबी रहीं। अर्थात्, प्रगतिशील परम्परा के लेखक आर्थिक मुद्दों पर लड़ाई भी लड़ते रहे और ब्राह्मणवादी विशेषाधिकारों का उपभोग भी करते रहे। यही कारण है कि रामविलास शर्मा और नामवर सिंह सरीखे प्रगतिशील चिंतकों ने भी मार्क्सवाद के नाम पर ब्राह्मणवाद को ही प्रस्तुत किया। इसलिये अलग से दलित साहित्य की धारा चलाना बहुत आवश्यक है, क्योंकि सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति के सवालों की दृष्टि से असली प्रगतिशील साहित्य दलित साहित्य ही है।"[209]

[209] कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 16

२) दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है, तो सवर्णों को इस पर बहस से क्या लाभ? इस सवाल से जुड़े हुए और दो सवाल हैं – दलित साहित्य लिखने के लिए दलित होना ज़रूरी है क्या ? और दलित जाति का लेखक जो कुछ भी लिखेगा, क्या वह दलित साहित्य होगा? इन सवालों के जवाब दलित आलोचकों ने अपनी-अपनी ओर से दिए हैं। कँवल भारती इन प्रश्नों के जवाब इस प्रकार देते हैं– "लाभ है, क्योंकि ब्राह्मणवाद के घातक प्रपंचों का परदाफ़ाश करने का काम सिर्फ़ दलित साहित्य ही कर रहा है। सामन्तवाद और पूंजीवाद का आधार ब्राह्मणवाद ही है, जो दलित का सामाजिक और आर्थिक दोनों शोषण कर रहा है, परन्तु सवर्णों को सामाजिक विशेषाधिकारों का झुनझुना देकर उनका आर्थिक शोषण कर रहा है। वह असली लड़ाई को जाति के खेमों में बाँट कर कमज़ोर कर रहा है। इसलिये, दलित साहित्य के विमर्श से सवर्णों को भी जुड़ने की आवश्यकता है।"[210] अगले सवाल का जवाब ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं मैनेजर पाण्डेय दोनों भी देते हैं। उनके जवाब क्रमानुसार इस प्रकार हैं – ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- "हिंदी साहित्य के मठाधीश, समीक्षक, आलोचक, दलित साहित्य के अस्तित्व को ही नकार रहे हैं, वहीं कुछ लोग यह सिद्ध करने का प्रयास भी कर रहे हैं कि दलित साहित्य के लिए दलित होना ज़रूरी नहीं है। उनका कहना है कि हिंदी में दलित समस्याओं पर लिखनेवालों की एक लम्बी परम्परा है। ऐसी ही एक चर्चा के दौरान कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने एक अध्यक्षीय भाषण में टिप्पणी की थी, 'घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना ज़रूरी नहीं है।' विद्वान कथाकार का यह तर्क किस सोच को उजागर करता है? घोड़े को देखकर उसके बाह्य अंगों, उसकी दुलकी चाल, उसके पुट्ठों, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिन-भर का थका-हारा, जब वह अस्तबल में भूखा-प्यासा खूंटे से बंधा होगा, तब अपने मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तःपीड़ा क्या होगी, इसे आप कैसे समझ पाएंगे? मालिक का

[210] कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 16

कौन-सा रूप और चेहरा उसकी कल्पना में होगा, इसे सिर्फ़ घोड़ा ही जानता है।"[211] इस पूरे उद्धरण में यह कहने की कोशिश की गई कि सहानुभूति से ज़्यादा स्वानुभूति में ठोस यथार्थ उभरकर आता है और वह सत्य का परिचायक होता है। मैनेजर पाण्डेय इस बात को इस रूप में लिखते हैं– "मैं हमेशा दलित साहित्य को दो रूपों में देखता हूँ। एक तो दलितों द्वारा दलितों के बारे में दलितों के लिए लिखा गया साहित्य और दूसरा दलितों के बारे में गैर-दलित लेखकों का साहित्य। मैं बहुत दिनों से यह कहता आ रहा हूँ कि सहृदयता, करुणा और सहानुभूति के सहारे गैर-दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं और लिखा भी है। लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है, क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है।"[212] अतः अब अंतिम जो सवाल बचा है, वह यह – दलित जाति का लेखक जो कुछ भी लिखेगा, क्या वह दलित साहित्य होगा? इस पर दिए गए जवाब को देखना ज़रूरी जान पड़ता है। कँवल भारती लिखते हैं – "दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति के सवालों का साहित्य है। इन सवालों से जुड़ा दलित लेखक का लेखन ही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इससे इतर कुछ भी लिखा गया दलित साहित्य नहीं है।"[213]

इस उद्धरण से मिलती जुलती बात जो, दलित साहित्य की पहचान के लिए सहायक हो सकती है। डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं- "पाठकों के मन में उन पात्रों की ऐसी स्थिति बनाने वाली व्यवस्था के प्रति चिढ़ निर्माण होना ज़रूरी है। उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति पाठकों के मन में असंतोष उभरना ज़रूरी है। केवल चिढ़ ही नहीं अपितु इस स्थिति के प्रति वह लज्जित हो जाए। वह आत्मपरीक्षण करने लगे। जिस विषम, वर्णवादी, जातीय व्यवस्था

---

[211] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, भूमिका (पृ. सं. X)
[212] सम्पा. सर्वेश कुमार मौर्य, मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और दलित दृष्टी, पृ. सं. 106
[213] कँवल भारती - दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 16

में जी रहा हूँ, वह इतनी क्रूर, अभावपूर्ण तथा शोषक अगर है तो ऐसी व्यवस्था ध्वंस कर देनी चाहिए ऐसा उसे महसूस हो। इस विषम व्यवस्था के लिए जितनी भी इकाईयाँ कारणीभूत हैं (ग्रंथ, विप्र परम्परा, और इस सबका समर्थन करने वाली भूतकाल तथा वर्तमानकाल में स्थित संस्थाएँ, दर्शन) उनके प्रति उसके मन में तिरस्कार निर्माण हो जाना चाहिए। इस साहित्य से रूबरू होने के बाद उसे विशुद्ध मनुष्यता की ज़रूरत का अहसास तीव्रता से हो जाना चाहिए। इस प्रकार के संस्कार जिस साहित्य द्वारा होते हों, उसे ही 'दलित संवेदना' का साहित्य कह सकेंगे।"[214] यहाँ एक बात जोड़ देनी आवश्यक होगी डॉ. रणसुभे सिर्फ़ दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है इस बात के पक्ष में नहीं हैं। वे दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है ऐसा मानना, "प्रकृति द्वारा प्राप्त असामान्य प्रतिभा को नकारना"[215] होगा, ऐसा लिखते हैं।

उपरोक्त प्रश्नों के जवाब; उसकी आवश्यकता पर जोर देते हैं। कुछ बिंदु हैं जिनके कारण दलित साहित्य का होना, हिंदी साहित्य को लोकतान्त्रिक बनाने की प्रक्रिया में तथा उसे समृद्ध करने में सहायक सिद्ध है। अतः इन जवाबों में कुछ बातें काफ़ी महत्त्व रखती हैं। एक, हिंदी साहित्य में इससे पूर्व कभी भी जाति के प्रश्न को नहीं उठाया गया। ना ही भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे नीची समझने वाली जातियों के दुःख-दर्द, अनुभव एवं पीड़ाओं को साहित्य में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया। दो, जब प्रगतिशील साहित्य आया तब भी सिर्फ़ आर्थिक असमानता पर ही ज़्यादा सृजनात्मक लेखन हुआ लेकिन जातिगत भेद को भारतीय व्यवस्था से मिटाने के लिए चेतनाशील सृजन कार्य नहीं हुआ। तीन, दलितों की ओर से किया जा रहा यह सृजन कार्य चेतनाशील है, वह असमानता, अन्याय, अत्याचार, जातिभेद आदि पर प्रहार करता है। उसमें चेतना का तत्त्व महत्त्वपूर्ण माना गया। चार, किसी भी दलित लेखक का लेखन-कार्य दलित साहित्य के कोटि में नहीं आ पाएगा, जब तक उसमें चेतना का तत्त्व ना हो एवं जो सामाजिक एवं आर्थिक मुक्ति के प्रश्नों से ना टकराता हो।

[214] डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे – दलित साहित्य स्वरूप और संवेदना, पृ. सं. 99-100
[215] डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे – दलित साहित्य स्वरूप और संवेदना, पृ. सं. 99

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आर्थिक एवं सामाजिक मुक्ति के लिए किया गया लेखन दलित साहित्य की कोटि में आता है और वही दलित साहित्य कहलाता है। अब तक के हिंदी साहित्य में आर्थिक एवं सामाजिक मुक्ति के प्रश्नों को नहीं उठाया गया है। अब यह काम हिंदी दलित साहित्य कर रहा है। यह बात दलित साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में देखी जा सकती है।

इन सवालों के बाद भी कुछ सवाल और बच जाते हैं, वे सीधे तौर पर दलित विमर्श के अस्तित्व से टकराते हैं। जिससे यह भी लगता है कि क्या मराठी दलित साहित्य के बाद ही हिंदी दलित साहित्य का अस्तित्व माना जाए ? इस प्रश्न के जवाब की तलाश में कँवल भारती की आलोचना को देखा जा सकता है।

इतिहास यह बताता है कि दलित रचना-कर्म को लुप्त एवं नष्ट करने का कार्य भी हुआ है, ऐसी स्वीकृति मैनेजर पाण्डेय देते हैं– "ब्राह्मणवादी व्यवस्था दलित साहित्य को लुप्त तो करती ही है उसे नष्ट भी करती है।"[216] देखा जा सकता है कि प्रो. मनैजेर पाण्डेय के इस कथन में ब्राह्मणवादी व्यवस्था जिसमें विचारधारा से पोषित साहित्य के सर्जक, इतिहासकार और आलोचक आदि भी आते हैं और यहाँ साहित्य को केंद्र में रखकर बात की जाए तो, ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषक - इतिहासकार, लेखक एवं आलोचकों ने दलित साहित्य को लुप्त कराने का प्रयास किया है, जिसमें हिंदी का दलित साहित्य भी आता है। हिंदी साहित्य के इतिहास से दलित रचनाकारों एवं उनकी रचनाओं को बाहर रखने का कार्य किया गया है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। और फिर जो सशक्त रचनाकार थे, उसके साहित्यिक सृजन को विकृत करने का भी प्रयास किया गया है, ऐसा दिखाई पड़ता है। शायद, इसी कारण से आधुनिक दलित साहित्य के आलोचक, कवि एवं इतिहासकार दलित साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। जिसमें दलित सर्जक एवं चिन्तक अपनी जड़ों की

[216] विजय अग्रवाल, दलित सहित्य : राख ही बता सकती है जलने की पीड़ा, पृ. सं. 78, हंस, सं. राजेंद्र यादव, अंक -9, अप्रैल 1995

पहचान करने के साथ-ही-साथ उसका मूल्यांकन कर उसे पुनः जीवित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। कँवल भारती के आलोचनात्मक कार्य में - हिंदी साहित्य के हाशिए पर डाल दिए गए दलित कवियों को पुनः स्थापित करने का प्रयास है, दलित साहित्य की जड़ों को तलाशने का प्रयास है, दलित साहित्य पर मुख्यधारा के आलोचकों ने जो प्रश्न उठाये हैं उनका उत्तर भी कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में देने का प्रयास दिखाई देता है।

हिंदी दलित साहित्य की पहचान 'चेतना' से है और वह चेतना किन सरोकारों से जुड़ती और अलग होती है। इस बात को भी जानना ज़रूरी जान पड़ता है, जिसके कारण वह 'दलित चेतना' कहलाती है। अतः इस चेतना को देखना ज़रूरी है। दलित चेतना के सरोकारों को कई दलित आलोचकों एवं कवियों ने व्याख्यायित करने का प्रयास किया है, जो निम्न रूप से देख सकते हैं –

अभय कुमार दुबे – "दलित साहित्य में आंबेडकर का असली महत्त्व एक पथ-प्रदर्शक और मनोवैज्ञानिक मुक्ति द्वार पर खड़ा कर देने का महत्त्व है।"[217] दलित साहित्य की प्रेरणा का स्रोत आंबेडकरवाद को मानते हुए डॉ. गंगाधर पानतावणे लिखते हैं कि – "दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिन्दूवाद, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल आंबेडकरवाद है।"[218] दलित चेतना को परम्परागत साहित्यिक चेतना से अलग बताते हुए बाबूराव बागूल का कहना है – "दलित चेतना साहित्य और आम आदमी के संबंधों को व्यापकता देती है। दलित साहित्य इन्सान को केंद्र बनाता है। इन्सान को महानता प्रदान करता है। इन्सान प्रकृति का एक नन्हा-सा रूप है। प्रकृति हमेशा गतिशील और सृजनशील होनी चाहिए। स्वतंत्रता, समता और बंधुता की मूल भावना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है।

[217] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. सं. 30

[218] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. सं. 30

दलित साहित्य की अनुभूति परम्परागत साहित्य से बिलकुल अलग है क्योंकि दलित चेतना मनुष्य की मुक्ति की बात करती है।"[219]

एक व्याख्या ओमप्रकाश वाल्मीकि करते हैं – देवी-देवताओं में श्रद्धाभाव, मंदिर, ईश्वर, पुनर्जन्म, मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा भाव उत्पन्न करनेवाले ग्रन्थ, महाकाव्य, नरक-स्वर्ग, मनुष्य को गुलाम बनानेवाले प्रपंच, कर्मकांड को नकारते हुए आज का दलित अपनी अलग पहचान और संस्कृति निर्मित कर रहा है। आत्मविश्लेषण, अस्मिता की तलाश, जीवन मूल्यों की खोज, मानवीय सरोकारों की पड़ताल, आदि-आदि दलित संस्कृति के मूल आधार हैं। इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्गम है और डॉ. आंबेडकर के जीवन-दर्शन, सामाजिक-संघर्ष से ऊर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तित हुआ है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आज के सभ्य समाज में मनुष्य-मनुष्य के बीच में जो घृणा है उसे मिटाने के लिए, समता-स्वतंत्रता-बंधुता स्थापित करने के लिए, जीवन मूल्यों की खोज के लिए, अपनी दलित संस्कृति, इतिहास, साहित्य को पुनः स्थापित करने के लिए और साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता से उपजी चेतना का नाम दलित चेतना है। प्रेमचंद की बात को यहाँ जोड़ा जा सकता है। वे कहते हैं – "संस्कृति अमीरों का, पेटभरों का, बेफिक्रों का व्यसन है। दरिद्रों के लिए प्राण रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है। उस संस्कृति में था क्या, जिसकी वे रक्षा करें। जब जनता मूर्च्छित थी, तब उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों ज्यों उसकी चेतना जाग्रत होती जाती है, वह देखने लगती है कि यह संस्कृति लुटेरों की संस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लुटती थी।"[220] हम कह सकते हैं दलित साहित्य की चेतना यही कार्य करती हुई दिखाई देती है। जिसमें ना सिर्फ़ लुटेरों की पहचान कराई जा रही है बल्कि उनका विरोध करने के लिए पाठक वर्ग को चेतनाशील भी बनाया जा रहा है।

[219] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. सं. 30
[220] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. सं. 28

एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठता है कि हम हिंदी साहित्य में इस साहित्य की धारा को कब से माने? कई विद्वानों ने इस बारे में अपने-अपने मत दिए हैं, जिससे दलित साहित्य की धारा के उद्गम को जाना जा सकता है। उन विद्वानों की कुछ मान्यताएँ हैं जो इस प्रकार हैं –

नामवर सिंह : "हिंदी में दलित साहित्य मराठी की क़लम है।"[221]

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है - "भक्तिकाल में भी कई संत कवि दलित थे। लेकिन वे सामाजिक चेतना का कोई ऐसा आयाम स्थापित नहीं कर पाए जिससे दलितों में किसी परिवर्तन की सुगबुगाहट होती। सिर्फ़ भक्तिकाल में ही नहीं बल्कि '60 से 90' के दशक में कई रचनाकार आए लेकिन उनकी अभिव्यक्ति दलितों की पीड़ा के साथ अपनी अंतरंगता स्थापित नहीं कर पाई।"[222]

यहाँ दो बातें सामने आती हैं- पहली, दलित साहित्य मराठी के प्रभाव के कारण उभरा है। दूसरा, भक्तिकाल को दलित साहित्य का प्रारम्भिक रूप मानने से ओमप्रकाश वाल्मीकि का इंकार। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर कँवल भारती इस रूप में देते हैं–

"हिंदी साहित्य के कुछ आलोचक, जिनमें मराठी के कुछ लेखक भी शामिल हैं, हिंदी दलित कविता को मराठी दलित साहित्य की क़लम बताते हैं, जैसे पेड़-पौधों की क़लम होती है, उसी तरह की क़लम वे कहते हैं, हिंदी की दलित कविता है। यह आरोप उन लोगों का है, जो दलितों की किसी भी ज्ञान-परम्परा और दर्शन-धारा को नहीं जानते हैं। वे न अछूतानन्द जी 'हरिहर' को जानते हैं, न अयोध्यानाथ दंडी को, न केवलानंद को, न महाशय रूपचंद को, न बिहारीलाल हरित को, न दुलारेलाल जाटव को, न बदलूराम 'रसिक' को, न भीखाराम गड़रिया को, न रमेशचंद्र मल्लाह को और न मंगलदेव विशारद को जानते हैं, जो सब उस काल के दलित कवि हैं, जब मराठी में, क्या, किसी भी अन्य भाषा में दलित कविता अस्तित्व में भी नहीं आयी थी। हिंदी के कुछ दलित लेखक भी इसी भ्रम के शिकार हैं। वे भी हिंदी

---

[221] कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 20

[222] ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. सं. 29

कविता में न कबीर-रैदास का योगदान मानते हैं, न हीराडोम का और न अछूतानन्द का। दरअसल, ये वे लेखक हैं, जिन पर मराठी दलित चिंतन का प्रभाव है और मराठी ज़मीन कबीर-रैदास से अपरिचित है। हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ऐसे ही दलित लेखक हैं, जिन्होंने कुछ मराठी दलित लेखकों और हिंदू लेखकों की टीकाएँ पढ़कर संत-साहित्य के बारे में अपनी ग़लत राय कायम कर ली है।"[223]

यहाँ नामवर सिंह के सवाल का जवाब मिल जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के सवाल का जवाब देने से पूर्व ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार दलित चेतना क्या है? इस बात को भारती उद्धृत करते हैं – वे (ओमप्रकाश वाल्मीकि) लिखते हैं – "वैचारिक रूप से दलित चेतना, बंधुता और स्वतंत्रता की पक्षधर है। अनीश्वरवाद, आत्मवाद, पुनर्जन्म, ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था का विरोध, आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध, वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता, भाषावाद, लिंगवाद का विरोध, स्त्री के प्रति समानता का भाव आदि कुछ विशिष्ट बिंदु हैं, जो दलित चेतना के सरोकारों में शामिल हैं। दलित चेतना का सरोकार इन प्रश्नों से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि 'मैं कौन हूँ', 'मेरी पहचान क्या है?'"[224] आगे कँवल भारती इसका जवाब देते हैं कि 'दलित चेतना के ये सरोकार कबीर और रैदास की वाणी में अपनी पूरी जीवन्तता के साथ मौजूद हैं।' इस बात की पुष्टि के लिए कबीर का दोहा प्रस्तुत करते हैं। वह दोहा इस प्रकार है –

"पाणी पवन अवनि नभ पावक, तिहि सँग सदा बसेरा |
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ||[225]
अपनै परचे लागी तारी अपन पै आप समाँना |
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाँना ||[226]

---

[223] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 14-15
[224] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 16
[225] सम्पा. युगेश्वर - कबीर समग्र (प्रथम खंड), पृ. सं. 593
[226] सम्पा. युगेश्वर - कबीर समग्र (प्रथम खंड), पृ. सं. 526

चलन चलन सबको कहत है, नाँ जाँनौ बैकुंठ कहाँ है |

जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातनि ही बैकुंठ बखानै ||"[227]

इन पदों में अनात्मवाद का सिद्धांत मिलता है, परलोक का खंडन और परलोक और पुनर्जन्म का विरोध भी। एक बात और है, जो वाल्मीकि के, सवाल के जवाब को और ज़्यादा स्पष्ट कर देती है। कँवल भारती लिखते हैं – "यदि बकौल वाल्मीकि 'दलित चेतना का सरोकार इन प्रश्नों से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि 'मैं कौन हूँ', 'मेरी पहचान क्या है?' तो ये गूढ़ प्रश्न नहीं हैं। हिंदू संस्कृति में इनका अर्थ यही है कि मैं ब्राह्मण या ठाकुर या भंगी-चमार हूँ और मेरा ब्राह्मण-ठाकुर या भंगी-चमार होना ही मेरी पहचान है। लेकिन दलित चेतना में इनका अर्थ एकदम स्पष्ट है कि मैं मनुष्य हूँ और मेरी पहचान मनुष्यता है। यदि कबीर और रैदास ने अपने आप को जुलाहा और चमार कहा है, तो भले ही यह वाल्मीकि की जातीय अस्मिता से टकराते हों और उनके अध्ययन में उनकी रुचि को कम करते हों, पर दलित साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति की निर्भीकता को सम्मानित किया जाना चाहिए, क्योंकि वे ऐसे महान दलित कवि हैं, जिनमें अपनी जातियों को लेकर कोई हीनताबोध नहीं है। कबीर ब्राह्मण की आँखों में आँखें डालकर कहते हैं – 'तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना,' और रैदास दोनों हाथ उठाकर आवाज़ लगाते हैं – 'कह रैदास खलास चमारा, जो हमसहरी सो मीत हमारा।'"[228]

संक्षेप में, हम इन दोनों बातों को देख सकते हैं, एक - दलित साहित्य मराठी के साहित्य की क़लम नहीं है। लेकिन उस पर आठवें और नवें दशक का प्रभाव भली-भाँति देखा जा सकता है। इस बात की संभावनाओं को कँवल भारती के इस मत से जोड़ कर देखा जा सकता है – "डॉ. आंबेडकर का आन्दोलन भी सत्तर के दशक में ही हिंदी क्षेत्र में उभरा या कहना चाहिए कि जिसे हम क्रांतिकारी दलित जागरण कहते हैं, उसका उदय हिंदी प्रदेशों में

[227] सम्पा. युगेश्वर - कबीर समग्र (प्रथम खंड), पृ. सं. 536

[228] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 18-19

सातवें दशक के बाद ही हुआ। इस जागरण ने भी जितना पुरुषों को शिक्षित और संगठित किया, उतना स्त्रियों को नहीं किया। कारण यह भी है कि आंबेडकर मिशन के प्रचारकों ने अपनी स्त्रियों को जागरूक करने की आवश्यकता पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया।"[229]

दो – कँवल भारती भक्तिकाल को दलित चेतना का प्रारंभिक युग मानते हैं, जो कि सत्य प्रतीत होता है। कँवल भारती ने दलित साहित्य को भक्तिकाल तक जोड़ने का काम किया है। इस बात को पुख़्ता करने के लिए डॉ. चमनलाल को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक होगा। डॉ. चमनलाल लिखते हैं – "आधुनिक दलित साहित्य ने भी अपनी पहचान समाज के विकृत जातिगत ढाँचे के प्रति अपना आक्रोश जताकर की है। इस सन्दर्भ में आधुनिक दलित साहित्य की जड़ें कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती हैं। इसलिए इस तथ्य को यहाँ रेखांकित किया जा सकता है कि सही मायनों में कबीर और रविदास हिंदी दलित साहित्य के अग्रदूत हैं। उत्तरी भारत के दलित साहित्य का आरम्भ कबीर और रविदास से माना जाना चाहिए और वहीं से दलित साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाना चाहिए।"[230]

और अंत में दलित साहित्य की भाषा को लेकर बात की जानी आवश्यक है। भाषा के आधार पर ही "दलित साहित्य को गाली-साहित्य भी कहते हैं।"[231] आलोचक नामवर सिंह भी यही आरोप लगाते हैं ऐसा कँवल मानते हैं। 'नया पथ' के 26 वें अंक एवं 'तद्भव' के अंक 18 में जो सात्क्षात्कार नामवर सिंह के प्रकाशित हुए हैं उससे ठीक इस बात अंदाजा हो जाता है। बहरहाल, दलित साहित्य की भाषा को लेकर जो आरोप हैं उसके उत्तर कँवल भारती की ओर से कुछ इस प्रकार से हैं।

---

[229] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 244

[230] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 15-16

[231] कँवल भारती - दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 12

दलित साहित्य को 'गाली-साहित्य' कहने पर कँवल भारती लिखते हैं कि 'दलित साहित्य को एक गैर दलित कैसे समझ सकता है जब वह उन अनुभूतियों से गुजरा ही नहीं है।' इस बात को स्पष्ट करने के लिए वे अपनी कविता का उदाहरण रखते हैं-

"यह बताओ
बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी?
कैसे होंगे
गुलामी की जिंदगी जीने वाले
तुम्हारे बाप के विचार?
ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती तुम्हारी बहिन के शब्द?
क्या वे सुंदर होंगे?"[232]

यह कविता अपने-आप में बहुत कुछ बयान करती है। दलित साहित्य में सिर्फ़ गाली देखनेवालों की संवेदना पर ही प्रश्न चिह्न लग जाता है। पर बात भाषा के आधार पर साहित्य को ख़ारिज करने की नज़र आती है, ऐसा दलित आलोचकों का मानना भी है। कँवल भारती की यह बात महत्त्वपूर्ण है- "दलित साहित्य गाली साहित्य नहीं है। जिस परिवेश में दलित सांस ले रहा है, वे गालियाँ उसी परिवेश में हैं। दलित लेखक उन गालियों को उस परिवेश से कैसे निकाल सकता है? यथार्थ का यथार्थपूर्ण चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है। समग्रता में किसी यथार्थ की भाषा को उपेक्षित या बदला नहीं जा सकता है।"[233]

'तद्भव'-18 में नामवर सिंह एवं राजेंद्र यादव का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। जिसमें राजेंद्र यादव दलित साहित्य की भाषा पर बात रखते हैं। वे उसमें कहते हैं कि "मैं मानता हूँ वो (दलित साहित्य) कलात्मक नहीं है... उसमें विविधता नहीं है, उसमें अपेक्षित

[232] कँवल भारती – दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 13-14
[233] कँवल भारती – दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 14

तराश नहीं है, भाषा नहीं है। (पर) ये जो फैसला देने का अहंकार है इससे हम इसलिये मुक्त नहीं हो पाते कि हमारे पास कला की एक समझ है, हमारे पास भाषा की एक समझ है, हमारे पास संस्कृति की एक समझ है।...आत्मकथाएँ कच्ची इसलिये हैं कि पहली बार बोलने का उत्साह उनमें है। भाषा नहीं है, प्रणाली नहीं है, इसलिये सिर्फ आत्मकथाएँ लिख सकते हैं।..."[234]

उपर्युक्त यह टिप्पणी दलित साहित्य को पूरी तरह ख़ारिज ही कर रही है। उसमें भाषा, संस्कृति आदि की समझ नहीं है, यह कहकर पूरी तरह नकार ही रही है। भविष्य की संभावनाओं को भी वह नहीं देख पा रही है। क्योंकि आत्मकथा तक ही सीमित करने पर किसी साहित्य का क्या भविष्य रह सकता है? इस टिप्पणी का कँवल भारती जवाब देते हैं। वे लिखते हैं- "लिंगों और योनियों का साहित्य लिखने वालों का घमण्ड तो देखिए-उनके पास भाषा है, संस्कृति है, कला है, पर यदि कुछ नहीं है तो नैतिकता नहीं है, शील नहीं है। शराब के लिये रात-रात भर दिल्ली की सड़कों पर आवारा घूमने वाले लेखक को शर्म नहीं आती यह कहते हुए कि उनके पास भाषा और संस्कृति की समझ है।... सच तो यह है कि आपके पास न भाषा है न संस्कृति है। अपनी भाषा आप खो चुके हैं और संस्कृति आपके पास कभी रही नहीं। इस देश में जिसे आप कला कहते हैं, भाषा कहते हैं और संस्कृति कहते हैं, वह सिर्फ़ दलितों और आदिवासियों के पास है। अभी तो दलित लेखकों ने हिंदुओं के 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' को लिखना शुरू किया है, उनकी कला और संस्कृति का साहित्य भी आयेगा और याद रखना भविष्य इसी साहित्य का है।"[235]

इस उत्तर को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक भाग जो है वह पूर्णतः वैयक्तिक है और दूसरा साहित्यिक। कँवल भारती का यह उत्तर साहित्य को नकारे जाने, भाषा एवं संस्कृति की समझ नहीं है, यह कहकर भाषा एवं संस्कृति विहीन कहे जाने के विरोध में

[234] संपा. अखिलेश - तद्भव, अंक-18, (नामवर सिंह और राजेंद्र यादव के बीच बातचीत...), जुलाई-2008, पृ. सं. 121
[235] कँवल भारती - दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृ. सं. 108

शायद ग़ुस्से एवं आक्रोश से निकला है। जो कि पूरी तरह राजेंद्र यादव की व्यक्तिगत टिप्पणी है। जिसे कँवल भारती न करते तो उचित होता। कँवल भारती अपने लेखन में इस जगह भाषायी रूप में संतुलित नहीं दिखाई देते हैं। उत्तर का दूसरा भाग काफ़ी उचित है।

कई कारणों को सामने लाकर दलित साहित्य को साहित्य ही न माने के विरोध में कँवल भारती का लेखन कार्य दिखाई देता है। जो सभी प्रश्नों को, आरोपों को हल करता है। यह पूरा चिंतन दलित साहित्य के जड़ों की तलाश को सामने लाता है एवं रूढ़ हो चुकी साहित्यिक मान्यताओं का विरोध करता है।

3.3 कँवल भारती : दलित कविता का मूल्यांकन :

आधुनिक हिंदी दलित कविता की अपनी परंपरा है और लगभग सौ वर्ष पुरानी। कह सकते हैं कि दलित साहित्य की परम्परा लगभग आधुनिक हिंदी साहित्य जितनी ही पुरानी है। जो समानांतर चलती रही है। पर साहित्य इतिहास लेखकों ने इसे कभी साहित्य इतिहास में जगह ही नहीं दी है। कँवल भारती ने हिंदी दलित साहित्य की इस आधुनिक परंपरा का मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन को कुछ बिंदुओं के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

दलित ज्ञान-परंपरा एवं दर्शन-धारा का रेखांकन :

दलितों के साहित्यिक धारा को देखा जाना ज़रूरी हो जाता है, जब मुख्यधारा के आलोचकों से हिंदी दलित साहित्य की परंपरा को नकारने की कोशिश हुई है। कभी उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नकार कर तो कभी उसे किसी और साहित्यिक प्रभाव के अंतर्गत रेखांकित कर। कँवल भारती दलित साहित्यिक परंपरा को, उसके दर्शन को किस रूप में रेखांकित करते हैं, यह देखना आवश्यक हो जाता है।

जब हिंदी साहित्य का आधुनिक दौर शुरू होता है, उसी के आस-पास हिंदी दलित साहित्य का आधुनिक दौर भी शुरू हो जाता है। हीराडोम एवं स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' इस परंपरा के अग्रज रहें हैं। हिंदी की मुख्यधारा का साहित्य रीतिकाल के मापदंड़ों से बाहर निकल रहा था और साहित्य में खड़ीबोली के प्रयोग पर बल दे रहा था। वहीं दलित कवियों की दृष्टि में अभिव्यक्ति के लिए भाषा किसी भी रूप में बाधा उत्पन्न करती हुई दिखाई नहीं देती है क्योंकि उनकी परंपरा हमेशा से ही लोक से जुड़ी हुई भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती आयी है। हीराडोम भी इसी लोकभाषा या कहे जनभाषा में अपनी अभिव्यक्ति को रखते हैं।

दलित कवियों के लिए कविता कभी मनोरंजन का माध्यम नहीं रही है। जब भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक कार्य को माध्यम बनाया, उसे सामाजिक क्रांति के लिए साधन के रूप में इस्तेमाल किया है। हीरा डोम की कविता जो सन् 1914 में महावीर प्रसाद द्विदेदी की पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इस कविता में भी सामाजिक परिवर्तन की आहट को भली-भाँति देखा जा सकता है और इसे कँवल भारती स्पष्ट रूप में अपनी आलोचना के माध्यम से दिखाने की कोशिश करते हैं।

जब कँवल भारती किसी रचना को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करते हैं तो उस रचना के तत्कालीन परिस्थिति को एवं इतिहास में हुए आंदोलनों का प्रभाव, उस रचना को कैसे प्रभावित करते हैं इस बात को देखने-समझने की कोशिश ज़रूर करते हैं। हीरा डोम के समय को रेखांकित करते हुए वे उन आंदोलनों को भी रेखांकित करते हैं जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ी है। वे लिखते हैं – "अछूत की शिकायत का रचना काल भारत का औपनिवेशिक काल है- भारत में अंग्रेजी राज था, जिसके अधीन देश की सारी रियासतें थीं। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई का दौर अभी शुरू नहीं हुआ था,

परंतु दलित आंदोलन की शुरूआत हो चुकी थी। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिराव फुले, उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानंद और बंगाल में चाँद गुरू दलित वर्गों में नव जागरण कर रहे थे।"[236]

इन आंदोलनों का और औपनिवेशिक काल का प्रभाव दलितों पर हो रहा था। यही कारण है कि हीरा डोम जैसे कवि अपनी परंपराओं के साथ अपनी ज्ञानधारा को भी अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' में इस बात को देखा जा सकता है जिसे कँवल की आलोचना रेखांकित करती है।

कँवल ने इस कविता में हिंदू भगवानों और उनकी लीलाओं पर किए गए प्रहार – "खंभवा के फारि पहलाद के बंचवले जां, ग्राह के मुहें से गजराज के बचवले।... डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।"[237], आर्थिक शोषण – "हमनी के राति दिन मेहनत करीलेजां, दुइगो रुपयवा दरमहा में पाइबि।"[238] अन्याय पूर्ण व्यवस्था पर सवाल – "पनहीं से पिटि-पिटि हाथ गोड़ तुरि दैलैं, हमनी के एतनी काही के हलकानी।"[239] आदि को अपनी आलोचना के माध्यम से स्पष्ट करते ही हैं। साथ ही जो दर्शन की धारा है जो दलित परंपरा से आयी हुई है, उसे रेखांकित करने से नहीं चुकते हैं। हीरा डोम ने स्पष्ट रूप में दलित संस्कृति को, उसकी धारा को इन शब्दों में पिरोया है। जिसे देखने एवं रेखांकित करने से कँवल भारती की आलोचना नहीं चुकती है। हीरा डोम ने लिखा है –

"बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,

ठकुरे के लेखे नाहिं लउरि चलाइबि।

सहुआ के लेख नहिं डांडि हम मारबजां,

[236] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 36
[237] डॉ. हरिनारायण ठाकुर – दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. सं. 405
[238] डॉ. हरिनारायण ठाकुर – दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. सं. 405
[239] डॉ. हरिनारायण ठाकुर – दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. सं. 406

अहिरा के लेख नहिं गइया चोराइबि।

... .

अपने पसिनवा कै पइसा कमाइबजां,

घर भर मिलि जुलि बांटि चोंटि खाइबि।"[240]

यह दलितों की संस्कृति रही है जिसमें श्रम को महत्त्व है वे भीख माँग कर नहीं खाते हैं, ना ही ठाकुर की तरह लाठी चलाकर, ना ही बनिये की तरह डंडी मार कर खाते हैं। इसलिए कँवल भारती की आलोचनात्मक दृष्टि कवि में बसी हैरानी को भी देख लेती है। कँवल लिखते हैं – "वह यह देखकर हैरान है कि ऊँच-नीच का भेदभाव कर्म पर आधारित नहीं है। उसकी दृष्टि में श्रम का महत्त्व है और बिना श्रम के भीख, चोरी और अत्याचार करके खाने वाला मनुष्य सम्मान का अधिकारी नहीं है। वह सामाजिक और आर्थिक दोनों तरह के शोषण के प्रतिरोध का कवि है।"[241]

आजीवकों की परम्परा से लेकर कबीर तक हर कोई श्रम के महत्त्व को जानता है और इसी कारण वे आजीवन श्रम करके अपनी जीविका को चलाते रहें और हीरा डोम की कविता में भी उसी संस्कृति को बारीकी से देखा जा सकता है। इस लोक कवि का सृजन कार्य कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, दलित नव-जागरण का रहा है, जिसमें स्वामी अछूतानंद हरिहर का नाम भी जुड़ता है।

स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' में यह बात और भी स्पष्ट रूप में सामने आती है। उनकी कविता में वर्ण-व्यवस्था की तीखी आलोचना देखने को मिलती है। साथ ही इनकी कविता दलित समाज को अन्यायी वर्ण-व्यवस्था के विरोध में संघर्षशील बनाने का काम भी करती

[240] डॉ. हरिनारायण ठाकुर – दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. सं. 405-406

[241] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 42

है। कँवल भारती के शब्दों में कहें तो – "उनकी कविता में इतिहास की गवेषणा थी, शोषण और अन्याय पर आधारित व्यवस्था की आलोचना थी और एक नवजागरण का मूर्त्तरूप था। कल्पना लोक के कवि न हीरा डोम थे और न स्वामी जी। उन्होंने अपने समय की काल्पनिक हिंदी कविता के समानातंर सामाजिक सरोकारों की कविता की।"[242] इस परिप्रेक्ष्य में हम देख सकते हैं कि किस प्रकार से वर्ण-व्यवस्था के समर्थक मनु की अछूतानंद ने तीखी आलोचना इस कविता के माध्यम से की है। वे लिखते हैं-

"मनुजी तुमने वर्ण बना दिए चार।

जा दिन तुमने वर्ण बनाये, न्यारे रंग बनाये क्यों ना ?

गोरे ब्राह्मण लाल क्षत्री बनिया पीले बनाये क्यों ना ?

शूद्र बनाते काले वर्ण के, पीछे को पैर लगाये क्यों ना ?"[243]

भक्तिकाल के कवि कबीर ने भी जातिगत भेदभाव, छुआछूत आदि पर प्रहार किया है, जिसे अछूतानंद की कविता में भी देख सकते हैं। जातिगत भेदभाव का कारण अछूतानंद हिंदू धर्म ग्रंथों में पाते हैं। मनुस्मृति पर लिखी उनकी कविता इस बात का उदाहरण है। वे लिखते हैं- "निशिदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।/ ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।।"[244]

सामाजिक भेदभाव के विरोध में खड़ा यह कवि अपनी परंपरा और दर्शन से भी उतना ही जुड़ा हुआ है, जैसे कोई पेड़ जुड़ा होता है अपनी जड़ों से। अछूतानंद का दर्शन कँवल की आलोचना इस रूप में स्पष्ट कर सामने ले आती है। कँवल भारती ने कबीर की तरह निर्गुण ईश्वर को मानने वाले (जीव ब्रह्म अद्वैत ज्ञान ही सत्य शुद्ध सात्विक है।/मानव हृदय ब्रह्म का

---

[242] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 43

[243] डॉ. हरिनारायण ठाकुर - दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. सं. 406

[244] सं. कँवल भारती - स्वामी अछूतानंदजी हरिहर संचयिता, पृ. सं. 128

मंदिर इसे जानते तात्विक हैं।), पाँच तत्त्वों से शरीर की उत्पत्ति को मानने वाले (पाँच तत्त्व का ढाँचा ये है, देह इसी में प्राण हुए।/ तत्त्वों के मिश्रण में जागी, जोति विलक्षण भान हुए।), आत्मानुभव पर जोर देने वाले एवं पुनर्जन्म का विरोध करने वाले (बिन देह कर्म नहीं होगा, फिर कहाँ कर्म का भोगा।/ क्यों जन्मे नीच घर आन, जीव हरिहर अनिवासी थे।) कवि अछूतानंद को अपनी आलोचना के माध्यम से समाने लाने की कोशिश की है। जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि अछूतानंद की परंपरा एवं दर्शन की धारा का संबंध कबीर से संबंधित है।

आंबेडकरवादी विचारधारा :

कँवल भारती की आलोचना का आधार आंबेडकरवादी विचारधारा रही है। डॉ. आंबेडकर के आंदोलनों का, उनके विचारों का साथ-ही-साथ आजीवक परंपरा से लेकर कबीर तक की परंपरा का उनके विचारों पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। कविता के मूल्यांकन में इस बात को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

क्रांति और प्रतिक्रांति का सिद्धांत देकर डॉ. आंबेडकर भारत के सामाजिक आंदोलनों का स्पष्ट चेहरा ही सामने ले आए हैं। यही सिद्धांत कँवल भारती के आलोचना का आधार भी बना जब मुख्यधारा के आलोचकों से दलित साहित्य के अस्तित्व को नकारने की कोशिश की गई। इसी के फलस्वरूप हीराडोम से लेकर अब तक दलित साहित्य से जुड़ी आधुनिक पीढ़ी को वे हिंदी साहित्येतिहास में रेखांकित करते हैं। हिंदी दलित साहित्य की माने तो हिंदी की मुख्यधारा के समानांतर चलने वाली धारा है। हमने पीछे इस बात का उल्लेख भी किया है कि कितने सारे कवि हैं जिनका हिंदी साहित्य में नामोल्लेख तक नहीं है।

दरअसल, दलित कवियों के सामने जाति सबसे मुख्य समस्या रही है, उसके बाद आर्थिक समस्या। यही कारण है कि वे पहले जाति की समस्या से टकराते हैं फिर आर्थिक

समस्या से। 20वीं सदी का दलित साहित्य जाति की समस्या से पहले टकराता है और इसके लिए वह उस वर्ण-व्यवस्था से लेकर उसे मज़बूत आधार देने वाले उन सभी धर्म ग्रंथों से संघर्ष करता दिखाई देता है। जबकि हिंदी के कवियों में जाति की समस्या को लेकर 20वीं सदी के आरंभिक दौर में किसी भी तरह की कोई हलचल दिखाई नहीं देती है। कँवल भारती के शब्दों में इसे और भी स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। जब वे हीरा डोम के संदर्भ में हिंदी के कवियों एवं दलित कवियों में मूलभूत अंतर को स्पष्ट करते हैं। वे लिखते हैं – "हिंदी के भद्र कवि जिस समाज और वर्ग से आते थे, वह विशेषाधिकार प्राप्त समाज था। उनके समाज उन दुखों से मुक्त थे, जिनसे दलित समाज ग्रस्त था। दुख-मुक्त समाज के ये कवि मस्त थे और सौंदर्य के उपासक थे। कविता करना उनका शौक था और इसलिए वे कलावादी थे। इसके विपरीत शोषित, शासित और बहिष्कृत समाज से आये दलित कवियों के लिए कविता शौक न था, अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन था। समाज और प्रकृति को देखने का उनका नज़रिया कलावादी नहीं था, प्रगतिवादी था। उनके सामाजिक सरोकार दलित समस्या को मानवीय धरातल पर देखते थे। उनकी भूमिका गंभीर थी। वे भार की तरह कविता नहीं कर सकते थे- 'भटंऊ के लेख न कविन्त हम जोरबजां।' उनके लिए कविता एक मकसद थी, एक मिशन था। और वह थी उस व्यवस्था के ख़िलाफ़ विद्रोह, जो दलित के लिए नारकीय थी।"[245]

हिंदी के कवियों ने ना तो तत्कालीन समय में अपनी कविता का विषय मनुष्य को समझा, न जातिप्रथा में उलझे हुए समाज को समझा। शायद इसलिए जैसे कि कँवल भारती का कहना है, वे एक विशेषाधिकार समाज और वर्ग से आते हैं, जिन्होंने कभी अपने जीवन में सामाजिक असमानताओं को, अन्याय, शोषण को झेला नहीं था। और यही कारण है कि जिस समाज व्यवस्था से वे आते हैं उनमें से कई दलितों के विपरीत समाज और वर्ग का अंग रहे हैं। अतः इसलिए वे इस व्यवस्था को बरकरार रखने की कोशिश में दिखाई देते हैं ना कि

[245] संपा. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएं, पृ. सं. 14

इस अन्यायी व्यवस्था का उन्मूलन करने में। यहाँ यह कहना उचित जान पड़ता है कि यही वे प्रतिक्रांति के संवाहक के रूप में नज़र आते हैं।

कँवल भारती ने कुछ कवियों के उदाहरण दिए हैं। जिसे देखा जाना उचित जान पड़ता है। डॉ. मौजीलाल मौर्य जो स्वामी अछूतानंद जी के समकालीन थे। उन्होंने अछूतानंद जी के विरोध में प्रतिक्रांति की धारा चलाई। यह समय हिंदी में छायावाद के नाम से जाना जाता है। उस समय अछूतानंद जी सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष कर रहे थे। इसके लिए उन्होंने कविता को भी साधन के रूप में इस्तेमाल किया था। उनकी मृत्यु के बाद डॉ. मौजीलाल मौर्य ने 'स्वामी अछूतानंद जीवन चरित्र' में अछूतानंद के अंतिम समय का वर्णन इस प्रकार किया है जिसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं-

"अन्त समय जब आया मुनि का स्वर्ग लोक को जाने का।

भारत के दुखित अछूतों को भर-भर के आंसू रुलाने का।।

सब कुटुम्बी किये इकठ्टे लड़की तीनों बुलवाई।

सन उन्नीस सौ तैंतीस में स्वामी जी समाधि लई भाई।।

स्वयं भवसागर पार किया दुखियों को स्वामी छोड़ गये।

हिंदुन से दबे अछूतों से अब सारा रिस्ता तोड़ गये।।"[246]

उपर्युक्त पंक्तियों से जो बात सामने आ रही है, उसे कँवल भारती के शब्दों में कहे तो, "स्वर्ग लोक और भवसागर शब्द बताते हैं कि आदि हिंदू आंदोलन के दर्शन से अछूतों का रिश्ता पहले ही टूट चुका था। अछूत हिंदुओं से नहीं, हिंदुओं के परलोकवादी दर्शन से ज़्यादा दबे हुए थे। कवि भी इसके प्रभाव में नज़र आता है। इसलिए वह मृत्यु को स्वर्ग लोक ही

---

[246] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 55

कहना चाहता है।"[247] कँवल भारती ने जो बाते कही है वह काफ़ी सही साबित होती है। स्वामी अछूतानंद ने अपने रचना संसार में इन शब्दों का प्रयोग करते हुए दिखाई नहीं देते हैं। स्पष्ट रूप से उनके रचना संसार में वर्ण-व्यवस्था का विरोध, मनु के मनुस्मृति का विरोध दिखाई देता है। ऐसे में फिर अछूतानंद को हिंदू शब्दावली में ड़ाल कर उसके दर्शन एवं व्यक्तित्व को नज़रांदाज करना बड़ी चूक है, जिसे मौर्य कर चुके हैं। इससे मौर्य पर हिंदू दर्शन एवं परम्परा का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में प्रतिक्रांति की धारा के संवाहक बन जाते हैं। ऐसे ही एक कवि हैं – स्वामी शंकरानन्द, ये आर्य समाजी थे।

स्वामी शंकरानन्द ये आर्य समाजी थे। भजनों के सृजनकर्ता भी हैं। उन्हीं का एक भजन जिसमें दलितों को वे क्या उपदेश दे रहे हैं, इस बात का अंदाजा हो जाएगा। भजन है –

"सब जग से प्यारे हरि की माया। टेक।

वही बनावे वही बिगारे वाही की माया देखो।।

फूल पात और डाली डाली सब वाही की माया देखो।

कोई निर्धन बने किसी को धनी बनाया।।

काऊ की छान पर फूंस नहीं, काऊ के घर पर टीन नई।

काऊ के रोआ राट परे और काऊ के घर खूशी भई।।

काऊ नीर को भटक रहा और काऊ पे न भावें दूध दही।

काऊ के घर में खास भरे और काऊ को पैदा नाज नहीं।।

[247] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 56

कोई वस्त्र को दुखी किसी के मील चलाया है।।"[248] (शंकरानंद भजनावली-स्वामी शंकरानंद, अयोध्यानाथ ब्रह्मचारी, प्रकाशक, पदमसिंह बुकसेलर, प्रेमकुटीर, गनेशपुरी (मैनपुरी) संस्करण 1954, पृ. सं. 7)

उपर्युक्त भजन अछूतानंद हरिहर के आंदोलन से, उनके कार्यों से बिलकुल भिन्न है। कँवल भारती की माने तो स्वामी अछूतानंद हरिहर निर्गुण ईश्वर को मानते थे। अछूतानंद हरिहर के शब्द हैं-

"जीव ब्रह्म अद्वैत ज्ञान ही सत्य शुद्ध सात्विक है।

मानव हृदय ब्रह्म का मंदिर इसे जानते तात्विक हैं।।"[249]

उपर्युक्त दोहे में स्वामी अछूतानंद एक अर्थ से ईश्वर के अस्तित्व को ही नकार रहे हैं। निर्गुण ईश्वर की कल्पना भी अपने आप में इसी बात को सिद्ध करती है। वहीं दूसरी ओर स्वामी शंकरानंद 'ईश्वर की सब माया है' कह कर दलितों में ईश्वर के प्रति विश्वास जगाने का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। अछूतानंद के समय एवं कार्य को देखा जाए तो शंकरानंद का कार्य उनके बिलकुल विपरीत दिखाई दे रहा है। इसलिए कँवल भारती लिखते हैं– "...आर्य समाजी शंकरानंद ने दलित कविता को सामंतवादी और ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों से जोड़कर न सिर्फ़ उनके मूल स्वर को लुप्त कर दिया, बल्कि सामाजिक यथार्थ से भी उसका संबंध ख़त्म कर दिया। पूरे हिंदी समाज में नवजागरण हो रहा था; पर सामंतवाद, ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के प्रतिनिधि आर्य समाजी कवि शंकरानंद दलित कविता में पुनरुत्थानवाद का स्वर भर रहे थे। वे दलितों को भक्त बना रहे थे और दलित कविता को पलायनवादी। तुच्छ राष्ट्रीयता, जातिवाद, जाति का मिथ्या गौरवगान और ईश्वरवाद इस कविता का मुख्य आधार था।"[250]

---

[248] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 64-65

[249] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 51

[250] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 66-67

देखा जा सकता है कि डॉ. मौजीलाल मौर्य और स्वामी शंकरानंद की परंपरा कैसे स्वामी अछूतानंद हरिहर के आंदोलन एवं नवजागरण को मोड़ कर पुनरुत्थान की ओर ले जाती है। इसे क्रांति और प्रतिक्रांति के रूप में देख सकते हैं।

हिंदी साहित्य के समानांतर चलती धारा :

हिंदी साहित्य को और समृद्ध करने का कार्य दलित साहित्य को साहित्येतिहास की धारा में रेखांकित करने से हो पाता, पर ऐसा हुआ नहीं है। जैसे कि हमने देखा है स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और हीराडोम दलितों में नवजागरण का कार्य कर रहे थे। वहीं डॉ. मौजीलाल और स्वामी शंकरानंद पुनरुत्थान का। वहीं यह दौर ख़त्म नहीं होता है। यह आज़ादी तक चलता है।

जब राजनीतिक आंदोलन में म. गांधी एवं डॉ. आंबेडकर का टकराव हुआ तो साहित्य में भी एक पक्ष गांधी की ओर और एक पक्ष आंबेडकर की ओर चल पड़ा। गांधी के प्रभाव में आने वाले साहित्यकारों ने दलितों को हिंदू धर्म से ही जोड़े रखा किंतु डॉ. आंबेडकर से प्रभावित साहित्यकारों ने आंबेडकर को दलितों के मसीहा के रूप में चित्रित कर, दलितों के लिए स्वतंत्रता के सपने दिखाए और उनमें चेतना जगाने का काम किया है। बिहारी लाल हरित (1913-1999) दलित साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण नाम है, जिसको दलित साहित्य में स्थान देने का काम कँवल भारती की आलोचना करती है। बिहारी लाल हरित के काव्य में डॉ. आंबेडकर के व्यक्तित्व एवं संघर्ष को इस रूप में देख सकते हैं-

"अब तो लगा है दोस्तो आज़ार भीम का।

दिल से न दूर होवेगा, यह प्यार भीम का ।।

रक्त है नाड़ी में गौरव पुरुषों का करें।

डंका बजा दें दुनिया में एक बार भीम का।।"[251] (अछूतों के पैगम्बर, 1946)

दलित अपनी मुक्ति के लिए डॉ. आंबेडकर की ओर देख रहे थे न की गांधी की ओर। बिहारी लाल की यह कविता गांधी जी को बूढ़े के रूप में चित्रित करती है और डॉ. आंबेडकर में अपने मुक्तिदाता को देखती है। बिहारी लाल की पंक्तियाँ हैं –

"भीम बाबा मैदां में लो अब सज गये।

कि खुदगर्जों की शक्ल पै साढ़े तीन बज गये।।

एक बूढ़े का दिल तो तार-तार हो गया।"[252]

सन् 1947 के बाद बाबू जगजीवन राम से जब बिहारी लाल मिले तो उनके कविता में भी बदलाव आ गए। कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, 'उनके सरोकार भी बदले और उनकी कविता के प्रतिमान भी।' बिहारी लाल कुछ इस तरह म. गांधी को याद करते हैं-

"हिंदू मुस्लिम हरिजन सबका प्यारा एक था।

दिल दलितों का था वह दिलवर था पस्ते कौम का

शांति का था देवता रहबर हमारा एक था।

खुले दिल से जाकर फरियाद कोई भी करे

बेकसों के वास्ते सच्चा दवारा एक था।"[253]

सन् 1960 से 1980 तक के समय में हिंदी दलित कविता का स्वर समाजवादी रहा है। इस समाजवादी स्वर को रेखांकित करने का कार्य कँवल भारती ने आलोचना के माध्यम

[251] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 86-87

[252] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 87

[253] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 96

किया है। हिंदी दलित कविता में स्थित इस समाजवादी स्वर को बड़ी बारीकी से कँवल भारती पहचान लेते हैं। रमेशचन्द्र मल्लाह, रामशरण विद्यार्थी, नंदकिशोर न्यायी, जगन सिंह आदि नाम सामने आते हैं जो दलित चेतना के कवि थे और उनकी कविता में शोषण के प्रति विरोध था। रमेशचंद्र मल्लाह की एक ग़ज़ल है, जिसमें समाजवाद का स्वर इस रूप में आता है-

"कब्जा है शोषकों का तलवार शोषकों की।

है मुल्क शोषकों का सरकार शोषकों की।।

सोता रहेगा कब तक, शोषितों का मुकद्दर।

कब तक रहेगी किस्मत बेदार शोषकों की।।

x x x x

जुल्मों सितम न चलता जग में सदा किसी का।

कम होगी शान शौकत, खूँखार शोषकों की।।

शोषित का खूँ जो खौला,चुपके से चल पड़े हैं।

करने को आज कब्रें तैयार शोषकों की।।"[254]

इस समय के कवियों ने ब्राह्मणवाद, पूँजीवाद का विरोध किया एवं समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर हुए। वे कँवल भारती के शब्दों में, 'काँग्रेसी एवं मार्क्सवादी दोनों नेताओं की दलित हितैषी छवि को भी तोड़ा था।' कँवल भारती ने कवि 'साथी' की ग़ज़ल को उद्धृत किया है-

"अछूतों के हमदर्द बनते अगर हो। / छुआछूत का गढ़ ढहाओ तो जानें।।

[254] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 122-123

तड़प करके शोषक से कहता है शोषित। / ये शोषण यहाँ से मिटाओ तो जानें।।"[255]

नन्दकिशोर न्यायी कविता में न सिर्फ़ दलित, अछूतों की बात की गयी है बल्कि समस्त शोषितों को संघर्ष के लिए आवाज़ दी गयी है–

"अरे हरिजनों, अरे गिरजनों, अरे बहुजनों, अरे किसानों।

अमरीका के अरे नीग्रो, पिछड़े मुसलमान, क्रिस्तानों।।

अरे, एशिया के नवयुवकों, अफ्रीकन और हिंदुस्तानी।

अधिकारों के लिए मर मिटो, अधिक न चलने दो मनमानी।।

शोषित-वंचित अब न रहेंगे, यही हमारा नारा है।

उठो गरीबों, उठो बहुजनों, यह संसार तुम्हारा है।"[256]

आठवें दशक की इन कविताओं के बारे में कँवल भारती लिखते हैं – "दलित कविता का संघर्ष सामाजिक समानता और आर्थिक मुक्ति इन्हीं दो लक्ष्यों को पाने के लिये था। यह उसकी बहुजन चेतना की समाजवादी धारा थी।..."[257]

नवें दशक तक आते-आते दलित कविता काफ़ी समृद्ध हो चुकी थी। कँवल भारती के शब्दों में कहे तो 'विद्रोह और प्रतिरोध के रास्तों पर चलकर जाति और वर्गविहीन समाज की परिकल्पना को मूर्त रूप देने की ओर अग्रसर हो चुकी थी।' कई कवियों के नाम प्रसिद्ध हैं, जिनमें - बुद्धसंघ प्रेमी, सोहनपाल सुमनाक्षर, ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं श्यौराज सिंह बेचैन आदि हैं। नवें दशक के बाद तो काफ़ी कवि सामने आए जो दलित कविता को नयी ऊंचाई तक ले गए हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण नामों को एवं कविताओं को कँवल की आलोचना रेखांकित

---

[255] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 123

[256] कँवल भारती – दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 125

[257] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 122-128

करती है- 'मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, ईश कुमार गंगानिया, सुदेश तनवर, असंग घोष, सी. बी. भारती और सूरज पाल चौहान।' एक महत्त्वपूर्ण बात जो कँवल भारती की आलोचना सामने ले आती है जिसे नज़र-अंदाज करना, दलित कवियों में बसे द्वंद्व को नज़र-अंदाज करने जैसा है। इस समय, जो वर्गविहीन समाज की परिकल्पना को मूर्त रूप दे रहे थे उन्हें दलित चिंतकों ने हाशिए पर ड़ालने का काम किया है। यह एक तरह की वैचारिक अपरिपक्वता भी कही जा सकती है। मलखान सिंह दलित कविता में एक बड़ा नाम है जिनकी कविताओं का मूल्यांकन कर, कँवल भारती की आलोचना दलित साहित्य में उन्हें स्थापित करती है।

जाति, वर्ग एवं आत्मालोचना :

कँवल भारती की आलोचना न सिर्फ़ हिंदी साहित्य के अपितु दलित साहित्य के चिंतक, कवि, आलोचकों को भी सोचने के लिए बाध्य करती है। ऐसा नहीं है कि दलित साहित्य के चिंतक, कवि, आलोचक अपने साहित्य के प्रति एक-सा सोचते हों, हर किसी की मान्यता एक-दूसरे से मिलती हो। यह वह बात है जिससे कँवल भारती की अन्य दलित चिंतकों से, विचारकों से और साहित्यकारों से अलग पहचान बनती है। वे हिंदी साहित्य के साथ-साथ, दलित चिंतकों एवं साहित्यकारों से, सच को स्थापित करने के लिए वैचारिक संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं यही वह बात है, जिससे वे अन्य दलित चिंतकों से अलग नज़र आते हैं।

कुछ दलित चिंतक एवं आलोचक जब साहित्य का मूल्यांकन करते हैं तो सामान्यतः 'जाति' की समस्या उनके संपूर्ण चिंतन का आधार होती है। पर, सिर्फ़ इसी आधार पर किया गया मूल्यांकन अपने-आप में एक सीमा में बंधा, सीमित हो जाता है। जिसके कारण कई ऐसे

कवि हैं जिन्हें दलित साहित्य में उचित स्थान नहीं मिल पाया है, मिला भी है तो उपेक्षा के लंबे समय बाद। उन नामों में से एक है- ‘मलखान सिंह’।

‘परिवेश’ हिंदी साहित्य की पत्रिका, जिसने मलखान सिंह की कविता को सबसे पहले (सन् 1996) प्रकाशित किया था। उसके बाद ‘हंस’ में भी उनकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। सन् 1996 से अब तक दलित साहित्यकारों का एक वर्ग मलखान सिंह को जनवादी कह कर हाशिए पर डालता रहा है। इसका उदाहरण हाल ही में आया श्यौराज सिंह बेचैन का लेख ‘वह दलितों के मुक्तिबोध थे’ है, जो अमर उजाला में 1 सितंबर को प्रकाशित हुआ है। श्यौराज सिंह बेचैन भी ओमप्रकाश वाल्मीकि का हवाला देते हुए लिखते हैं – “फरवरी में देहरादून में ओमप्रकाश वाल्मीकि को ‘परिवेश सम्मान’ दिए जाने के लिए समारोह आयोजित हुआ था। वहाँ सुनो ब्राह्मण पर भी चर्चा हुई। ओमप्रकाश वाल्मीकि मलखान सिंह की कविताओं पर जनवाद का प्रभाव देख रहे थे।”[258]

बात सिर्फ़ जनवाद कह देने से पूरी नहीं होती है। “वाल्मीकि जी के लिए जनवाद कोई काम्य, सकारात्मक या वांछनीय विचारधारा नहीं है। जनवाद का अर्थ वाल्मीकि जी ने स्पष्ट नहीं किया है लेकिन यह कयास लगाना ग़लत नहीं होगा कि जनवाद से उनकी मुराद मार्क्सवाद से है। अगर ऐसा है तब उन्हें सीधे मार्क्सवाद ही लिखना चाहिए था। जनवाद को इसमें लाने की ज़रूरत नहीं थी। दलित लेखन का मक़सद अगर जनसामान्य को सम्मान दिलाना, अधिकार सम्पन्न करना नहीं है तो क्या है?”[259] बजरंग बिहारी तिवारी का यह सवाल वाजिब लगता है। यहाँ और एक बात है कि, ओमप्रकाश वाल्मीकि की बात को श्यौराज सिंह बेचैन अपने लेख में जस-का-तस, मलखान सिंह को जनवादी मान आगे बढ़ जाते हैं।

[258] श्यौराज सिंह बेचैन, वह दलितों के मुक्तिबोध थे, अमर उजाला (समाचार पत्र), 1 सितंबर, 2019.

[259] बजरंग बिहारी तिवारी - दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, पृ. सं. 70

अपने इस लेख में श्यौराज सिंह बेचैन, मलखान सिंह का कम पर परिवेश के संपादक का यशोगान करते हुए दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं- “वह परिवेश के संपादक मूलचंद गौतम के सहपाठी और मित्र थे। कवि बेशक मलखान सिंह के भीतर था, लेकिन उसे पहचानने, उकसाने और प्रकाशित कर सामने लाने का काम परिवेश के संपादक ने ही किया। बेशक मलखान सिंह में प्रतिभा थी, लेकिन ऐसे मामलों में अवसर और साधन देने वाले का ही बड़ा हाथ होता है।”[260] यहाँ कवि मलखान की अपेक्षा संपादक के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। हिंदी में कबीर की अपेक्षा हजारीप्रसाद द्विवेदी को ही ज़्यादा महत्त्व दिया गया। जिससे देखकर लगता तो यही है कि द्विवेदी न होते तो शायद ही कबीर को कोई हिंदी साहित्य में जान पाता। ठीक इसी तरह की बात मलखान सिंह की कविताओं के संदर्भ में श्यौराज सिंह के लेख में नज़र आती है।

बात यह है कि दलित साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का मलखान सिंह की कविता पर जनवाद का प्रभाव देखकर, उन्हें उसी परिधि में सीमित करना उचित जान नहीं पड़ता है। दलित साहित्य की लड़ाई न सिर्फ़ ब्राह्मणवाद से है बल्कि उतनी ही पूँजीवाद से भी है। जातिगत पीड़ा तक हिंदी दलित कविताओं को सीमित करना अपने आप में दलित वैचारिकी की सबसे बड़ी फ़ाक है। और इसे मिटाने का कार्य दलित आलोचक कँवल भारती करते नज़र आते हैं।

कँवल भारती, मलखान सिंह को क्यूँ जनवादी कहा गया इस बात तक पहुँचने की कोशिश अपनी आलोचना के माध्यम से करते हैं। मलखान सिंह की कविता ‘भूख’ इसका कारण दिखाई देती है। भूख की पंक्तियाँ हैं –

“भूख! आँख खुलते ही तुझे

[260] श्यौराज सिंह बेचैन, वह दलितों के मुक्तिबोध थे, अमर उजाला (समाचार पत्र), 1 सितंबर, 2019.

चौखट पर बैठा देखा है

देखा है कि तुझे

आँगन में पसरा देख

मेरी माँ फूट-फूट रोई हैं।"[261]

देखा जाए तो यह कविता दलित चेतना की सशक्त कविता दिखाई देती है। पर यह सिर्फ़ भूख पर लिखी गई समझने वाले और इसमें जाति की पीड़ा को न देखने वाले कवि आलोचकों ने इसे जनवादी कहकर दलित साहित्य से नकार दिया। "यह दलित चिंतन की विडंबना है कि वह जाति की पीड़ा को ही दलित कविता में देखना जाहता है, भूख की पीड़ा को नहीं। भूख पर लिखने वाले कवि को वह जनवादी और कम्युनिस्ट कहकर नकार देता है। ऐसे दलित लेखक यह भूल जाते हैं कि यदि गरीबी और भूख उनके पूरखों के पास नहीं होती, तो वे अनुभूतियाँ उन्हें कहाँ मिलती, जिनका मार्मिक चित्रण उन्होंने अपनी आत्मकथाओं में किया है।"[262]

दरअसल, भूख की समस्या दलितों के लिए आर्थिक होती तो कब की हल हो चुकी होती, पर यह है नहीं। इसलिए कँवल भारती, ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ अन्य चिंतकों से भी उपर्युक्त सवाल करते हैं– "यदि ओमप्रकाश वाल्मीकि और सूरजपाल चौहान धनाढ्य परिवार से होते तो क्या वे मैला कमाने जाते और जूठन खाते? यदि श्यौराज सिंह बेचैन का परिवार धनी होता, तो क्या उन्हें अपने बचपन को अपने कंधों पर ढोना पड़ता?...जनवादियों और कम्युनिस्ट चिंतकों के पास इन सवालों के जवाब नहीं है, क्योंकि ये आर्थिक व्यवस्था से

[261] मलखान सिंह - सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह), पृ. सं. 15
[262] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 211-212

नहीं, हिंदुओं की धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था से जुड़े सवाल हैं। इन पर दलित चिंतकों को ही विचार करना होगा।"[263]

मलखान सिंह की कविता भूख न सिर्फ़ ग़रीबी से लोहा लेती है बल्कि ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद से भी संघर्ष करती है। इसलिए यह दलित चेतना की कविता है। मलखान सिंह की एक और बात जो जनवादी होने से मलखान सिंह को बचाती है। वह है उनका ईश्वर के ख़िलाफ़ संघर्ष। कँवल भारती लिखते हैं – "यह सही है कि मार्क्सवादी और जनवादी चिंतन ईश्वरवादी नहीं है, पर जिस तरह दलित कवियों ने ईश्वर से दो-दो हाथ किये हैं, वैसी सूरते हाल हमें जनवादी और मार्क्सवादी (हिंदी) कविता में नहीं मिलती।"[264] मलखान सिंह की कविता है 'आखिरी जंग' जिसे निम्नतः देखा जा सकता है -

"ओ पमेश्वर
कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने
देख, हमारे चेहरों को देख
भूख की मार के निशान
साफ दिखायी देंगे तुझे।
हमारी पीठ को सहलाने पर
बबूल के काँटों से दोनों
मुठ्ठियाँ भर जायेंगी तेरी।"[265]

---

[263] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 212
[264] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 219
[265] मलखान सिंह - सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह), पृ. सं. 18

मलखान सिंह की कविताओं की विशेषता 'गाँव' है। जिसे कँवल भारती की आलोचना रेखांकित करती है। गाँव के संबंध में अनगिनत कविताएँ आज हिंदी में उपलब्ध हैं। उनमें गाँव का सुंदर, मनमोहक रूप तो मिलता है पर वहीं जातिगत शोषण पर आधारित गाँव का चित्रण मिलना सबसे दूभर कार्य है। मलखान सिंह अपनी कविताओं से उस गाँव को रू-ब-रू कराते हैं, कँवल भारती के शब्दों में कहे तो, 'जिसे डॉ. आंबेडकर ने घेटो की संज्ञा दी थी।'

दसवें दशक में काव्य-सृजन करने वाले मलखान सिंह की विशेषतः इस बात में है कि, "वे इस दौर के पहले कवि हैं, जिन्होंने आदमी और दलित के बीच के फ़र्क को उभारा और आम आदमी के नाम पर लिखी जा रही समकालीन जनवादी कविता को जबरदस्त चुनौती दी।"[266] उदाहरण स्वरूप मलखान सिंह की कविता है-

"मैं आदमी नहीं हूँ स्साब/ जानवर हूँ/

दो पाया जानवर/जिसकी पीठ नंगी है।

कंधों पर/ फैला है/ गट्ठर है/ मवेशी का ठठ्ठर है।

खाने को जूठन है/ पोखर का पानी है/

फूँस का बिछौना है/चेहरे पर/मरघट का रोना है।"[267]

दलित कविताओं में अंतर्निहित संवेदना, भावों एवं विचारों की गहराई को एक दलित आलोचक जितनी गहराई से पकड़ सकता है उतना द्विज कहे जाने वाले आलोचकों के लिए दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। उपर्युक्त कविता में आए 'दो पाया जानवर है और जिसकी पीठ नंगी है' के बिंब को ही देखा जाए तो, कँवल भारती की आलोचना का मूल्यांकन कुछ इस

[266] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 207

[267] मलखान सिंह - सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह), पृ. सं. 1-2

तरह है- “पीठ नंगी बहुत ही मार्मिक और गहरे अर्थ वाला शब्द है। जानवर की पीठ को भी उसका मालिक ढक देता है, पर दलित वह जानवर है, जिसकी पीठ को कोई नहीं ढकता। उसकी पीठ पर किसी का हाथ नहीं है- न व्यवस्था का और न सत्ता का। उसे बात-बात में माँ-बहन की गालियाँ और बैल की तरह काम करने पर मजूरी में सिर्फ़ सत्तू मिलता है।”[268]

मलखान सिंह के बारे में एक और बात यह कि, कँवल भारती ने मलखान सिंह को ‘दलित कविता के मुक्तिबोध’ कहा है। जिसका अर्थ उन्हीं के शब्दों में यह है कि, “जिस तरह मुक्तिबोध अपनी ‘ब्रह्म राक्षस’ की परिकल्पना के कारण हिंदी कविता में उपेक्षित किए गए, उसी तरह मलखान सिंह ‘राँपी’, ‘सुतारी’, ‘कन्नी-वसूली’, ‘छैनी-हथौड़ी’, और ‘भूख’ की वजह से दलित कविता में उपेक्षित कर दिये गये।”[269] कँवल भारती की माने तो, ‘मुक्तिबोध को काफ़ी लबे समय के बाद स्वीकारा गया जबकि मलखान सिंह को पूरे दस साल के बाद दलित साहित्य में मान्यता मिली।’

01 सितंबर 2020 में जब श्यौराज सिंह बैचेन ‘वह दलितों के मुक्तिबोध थे’ नाम से मलखान सिंह पर लेख लिखते हैं, तब भी मलखान सिंह को जनवादी मानकर ही आगे बढ़ जाते हैं। इस लेख में मलखान सिंह की कविताओं का मूल्यांकन कम ही हुआ है वहीं इनकी कविताओं में लयात्मकता और गेयता नहीं थी, उनका गद्य में हाथ तंग था, जनांदोलन से उनका वास्ता नहीं था जैसी बातों को प्रस्तुत किया गया है।

मलखान सिंह की परम्परा एवं भाषा के संदर्भ में कँवल भारती की यह बात उचित प्रतीत होती है कि, “मलखान सिंह, कबीर और हीरा डोम की परम्परा के कवि हैं, जिन्होंने सामाजिक और आर्थिक दोनों मोर्चों पर आवाज़ उठायी थी। जो भाषा और तेवर हम कबीर

[268] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 207
[269] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 222

और हीरा डोम में देखते हैं, वही भाव, भाषा और तेवर हमें मलखान सिंह में मिलते हैं।"[270] 'सुनो ब्राह्मण', 'धरती की गति' कविताएँ इस बात का सबसे सटीक उदाहरण हैं। धरती की गति से एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"दूसरों की मेहनत पर/ कब्जा जमाने वाले साँप/

तुम्हारे पैर नहीं होते/ मदान्ध हो तुम/

तभी तो नहीं समझते/ कि गर्जन/

चाहे बंदूक की हो/ या बादल की/

धरती की गति को/ नहीं बदल पाते।"[271]

उपर्युक्त बातों को देखने से यह बात कही जा सकती है कि मलखान सिंह की कविता जनवादी नहीं बल्कि ब्राह्मणवाद एवं पूँजीवाद के विरोध में लिखी गई दलित चेतना की वाहक कविता है। यह बात कँवल की आलोचना सामने लाती है। जाति एवं वर्ग दोनों स्तरों पर कविता को समझने का काम कँवल भारती की आलोचना करती है। इसलिए यह आलोचना, दलितों की सिर्फ़ सामाजिक समस्या नहीं बल्कि आर्थिक समस्या भी है और यह जब कविताओं में अभिव्यक्त होती हैं, तो उन कारणों को रेखांकित करती है जिनके कारण यह समस्याएँ हैं। कँवल भारती के इस दृष्टिकोण ने दलित साहित्य की वैचारिकी को और भी मज़बूत करने का काम किया है। भविष्य में आने वाले कविताओं के मूल्यांकन के लिए दलित आलोचना की सीमाओं को परिष्कृत किया है और इसके लिए दलित आलोचकों की आलोचना की है, जिसे हम आत्मालोचना कह सकते हैं।

---

[270] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 223

[271] मलखान सिंह - सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह), पृ. सं. 37

दलित कविता और स्त्री स्वर :

दलित कविता में स्त्री स्वर काफ़ी देर से आया है। इसे पीछे दो कारण कँवल भारती देखते हैं- "एक तो, इसलिए कि पढ़ने-लिखने की स्वतंत्रता सवर्ण स्त्रियों में भी सिर्फ़ अभिजात वर्ग में थी, दलित स्त्रियों को यह सुविधा आज़ादी के बाद तक भी नहीं मिली थी और काफ़ी हद तक यह आज भी नहीं है। दूसरे, इसलिए कि शिक्षित दलित स्त्रियाँ पति, बच्चे और चूल्हा-चौका की चारदीवारी में ही कैद रहीं।"[272] और एक महत्त्वपूर्ण कारण कँवल मानते हैं, वह यह कि 'आंबेडकर मिशन के प्रचारकों ने अपनी स्त्रियों को जागरूक करने की आवश्यकता पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया।'

कँवल भारती पहली दलित कवयित्री अनुसूया 'अनू' को मानते हैं। अनू जी की कविता 'पतंग' एवं उनका काव्य संग्रह 'बांवरी' है। वे शिक्षिका थी। कँवल भारती लिखते हैं कि, 'उनकी कविता में डॉ. आंबेडकर के आदर्श वाक्य 'अपना दीपक आप बनो' का अनुसरण मिलता है।' उदाहरण स्वरूप कविता कुछ पंक्तियाँ –

"तू बन जा दीपक अपना आप।

संकल्प प्रबल जीवन की धारा निर्भरता संताप।

भर ले इतना तेल दीप में घटे न लौ का ताप।"[273]

अनुसूया जी ने आगे क्यूँ सृजन-कार्य नहीं किया इस बात का कुछ पता नहीं चलता है। दलित कवयित्री में दूसरा नाम 'कावेरी' का आता है। उनकी कविताओं की विशेषता यह रही कि उनकी कविताएँ सीधे पुरुष सत्ता से संघर्ष करती है। इस बात को रेखांकित कर कँवल भारती उनकी कविता को उद्धृत करते हैं-

---

[272] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 244

[273] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 245-246

"पुरुष रे पुरुष/ कान खोल के सुन ले/

मैंने चाहा था/ तुम ऊँचा उठो/

क्षितिज के पार/ एक और दुनिया की/ खोज करो/

किंतु तू काहे को/ मानेगा रे।"[274]

सुशीला टाकभौरे आज दलित साहित्य में एक प्रमुख रचनाकार हैं। टाकभौरे जी कविता, नाटक, कहानी एवं आत्मकथा विधा में लेखन कर रही है। उनकी आत्मकथा काफ़ी प्रसिद्ध हुई है, जिसका नाम – 'शिकंजे का दर्द' है। उनकी कविताएँ भी उतनी ही प्रसिद्ध हुई हैं। उनका पहला कविता संग्रह 'स्वाति बूँद और खारे मोती' सन्1993 में, दूसरा – 'यह तुम भी जानो' सन् 1994 में और तीसरा – 'तुमने उसे कब पहचाना' सन् 1995 में आया। वे लगातार सृजन कार्य कर रही है। कँवल भारती की आचोलना उनकी कविताओं में पितृसत्ता का विरोध, यथास्थितिवाद से संघर्ष, परिवर्तन की आवाज़ एवं स्त्री को बंधनों से मुक्ति की आवाज़ दिखाई देती है। सुशीला टाकभौरे की एक कविता का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

"औरत नहीं है मजबूर/ मजबूरियाँ हैं रीतियाँ/

ढोते हुए अपना सलीब/ अब यह थक गयी हैं।/

अगर चाहते हो जानना/ तो पूछकर टोह ले लो/

राख की हर ढेरी में/ कितनी दबी चिनगारियाँ हैं।/

तनिक इनको हवा दे दो/ ईंधन स्वयं बन जायेंगी/

बनकर ये शोला करेंगी/ शस्म सब मजबूरियाँ"[275]

[274] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 246

सुशीला टाकभौरे की कविताओं पर कँवल भारती की यह टिप्पणी बहुत सार्थक प्रतीत होती है। जिसमें वे सामंतवादी व्यवस्था को स्त्री पराधीनता का दोषी मानते हैं। जिसके कारण या परिणाम स्वरूप, "यह हुआ कि सृजनशीलता से परिपूर्ण स्त्री आश्रिता, अबला, पराधीन और खिलौना बनकर रह गयी। धर्म ने उसे दासी बना दिया और मर्यादाओं ने गूँगी। मनुष्य की तरह जीने का स्वप्न ही उसने नहीं देखा। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ स्त्री को इन्हीं बंधनों से मुक्त करने की कविताएँ हैं।"[276]

सन् 2000 में 'पदचाप' कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसकी रचनाकार रजनी तिलक हैं। उनके लेखन पर कँवल की टिप्पणी कुछ इस प्रकार से है – "रजनी तिलक की प्रवृत्ति पत्रकारिता की है और वे दलित महिला एवं मानव अधिकार आंदोलन में भी सक्रिय हैं। वे महिला आरक्षण बिल में दलित महिलाओं के लिये विशेष आरक्षण की व्यवस्था के लिये संघर्षरत रही हैं। इसलिये उनकी कविताएँ दलित स्त्रियों के मुक्ति आंदोलन से जुड़ी कविताएँ हैं।"[277]

'उबर आऊँगी' कविता में स्त्री का जो प्रतिबिंब आया है कँवल भारती के शब्दों में कहे तो, 'एक जुझारू और साहसी स्त्री का प्रतिबिंब है, जिसे यातनाओं के भट्टे भी मिटा नहीं पाते हैं।' कविता कुछ इस प्रकार है-

"यातनाओं के भट्टे सुलगा दो

उससे भी नहीं मिटूँगी

पीड़ाओं की खाई में धकेलो

उनसे उबर आऊँगी।

---

[275] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 255

[276] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 255

[277] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 256

छा जाओ जुल्म की आँधी बन

मैं टस से मस नहीं होऊँगी।"[278]

दलित कविता ने इस प्रतिभा को 2018 में खो दिया। उनकी कविताओं के बारें कँवल की आलोचना कहती है- "रजनी तिलक का कविता-संघर्ष लोकतंत्र में ही सामाजिक न्याय को कायम करने के लिये है। निर्वासित जातियों और दलितों का शोषण उनकी कवयित्री की चिंता में तो है, पर चूँकि उनकी मुख्य ज़मीन मानवाधिकार आंदोलन की है इसलिये एक सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका के कारण उनका कविता-संघर्ष बुद्ध की शीतल छाया में शांत समाधिस्त हो जाता है।"[279]

हिंदी दलित कविता का इस तरह 100 वर्षों का संघर्ष है। जिसकी अनदेखी हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में होती रही है। कँवल भारती की आलोचना की मुख्य विशेषता यही है कि वह इस परंपरा को रेखांकित करती है साथ ही साहित्य इतिहास लेखन में इनको सुनिश्चित करने का प्रयास भी करती है।

3.4 कँवल भारती : दलित आत्मालोचन

स्त्रीकाल (स्त्री का समय और सच) इस वेब पत्रिका में प्रो. मैनेजर पाण्डेय का साक्षात्कार सन् 2014 में 'दलित आलोचना अपनी आलोचना बर्दाश्त नहीं करती : प्रो. मैनेजर पाण्डेय' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस साक्षात्कार में एक प्रश्न पूछा गया "यदि परवर्ती आलोचना के विकास की बात की जाए तो क्या आप दलित चिंतन की दृष्टि से हिंदी आलोचना का विकास नहीं देखते दलित आलोचना! विचार के स्तर पर वह अम्बेडकरी चिंतन से प्रेरणा लेते हुए नई सौंदर्य एवं कला दृष्टि की बात करती है?"[280] इस प्रश्न का उत्तर

[278] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 262
[279] कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष, पृ. सं. 264
[280] http://streekaal.com/2014/10/blog-post_31-5/

मैनेजर पाण्डेय कुछ इस प्रकार से देते हैं- “चिंतन का विकास असहमति, खंडन-मंडन एवं द्वंद्व की प्रक्रिया से होता है। काव्याशास्त्रीय दृष्टि से देखे तो पश्चिम में यह प्लेटो अरस्तु से लेकर आई ए रिचर्डस तक एवं भारतीय संदर्भों में भरत मुनि से लेकर जगन्नाथ तक यही द्वंद्व और असहमति की परंपरा रही है। दलित दृष्टि की सीमा यह है कि वह अपने प्रति असहमति को बर्दाश्त नहीं कर सकती। वह स्वयं के कहे और लिखे को ही श्रेष्ठ मानती है इसलिए अगर वैचारिक विकास की प्रक्रिया का ही अनुसरण नहीं किया जा रहा है तो वहाँ विकास कैसे होगा?”[281]

प्रो. मैनेजर पाण्डेय द्वारा दिए गए इस जवाब में कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं। एक, दलित दृष्टि अपने प्रति असहमति बर्दाश्त नहीं करती। दो, वह स्वयं लिखे को श्रेष्ठ मानती है। तीन, वैचारिक विकास की प्रक्रिया का अनुसरण नहीं करती है। इन बिंदुओं से एक और बात सामने आती है कि पाण्डेय जी आलोचना की परम्परा में असहमति का आरोप लगाकर दलित आलोचना को परवर्ती आलोचना के विकास के रूप में नहीं देखते हैं। क्या दलित आलोचना के संबंध में ये आरोप उचित हैं? दलित आलोचना की परम्परा को देखते हुए यह आरोप उचित दिखाई नहीं देता है।

‘कँवल भारती : दलित आत्मालोचन’ इस उपबिंदु में उपर्युक्त प्रश्न की सत्यता की तलाश की जाएगी। कँवल भारती ने एक किताब लिखी है – ‘धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन’। इस किताब को लिखने का उद्देश्य क्या रहा? इस प्रश्न का उत्तर कुछ इस प्रकार से है, “मैं कहता हूँ कि वह (धर्मवीर) दलित साहित्य पर कलंक हैं और यदि इस कलंक को तुरंत साफ नहीं किया गया तो पूरा दलित साहित्य कलंकित हो जाएगा। यह छोटी सी पुस्तक इसी कलंक को साफ करने के लिये लिखी गयी है।”[282]

---

[281] http://streekaal.com/2014/10/blog-post_31-5/

[282] कँवल भारती - धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. (भूमिका)

कँवल भारती से पूर्व भी डॉ. धर्मवीर पर अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे गए हैं। विमल थोरात की एक किताब है 'दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर'। इसमें 'मनुवाद का नया संस्करण' नाम से लेख है, जिसमें धर्मवीर के चिंतन को, आधुनिक मनु के चिंतन के रूप में रेखांकित किया गया है। यह किताबें बताती हैं कि दलित आलोचना स्वयं आत्मालोचन करती रही है। जो मूल प्रश्न है, जिसकी तलाश यहाँ की जानी है, वह है - क्या धर्मवीर का चिंतन स्त्री विरोधी रहा है? क्या वह फासिस्ट चिंतन रहा है, जैसा कि कँवल मानते हैं? इस बात की सत्यता को देखा जाना उचित होगा। जिससे उपर्युक्त आरोपों की सत्यता तक पहुँचा जा सकता है।

कँवल भारती ने डॉ. धर्मवीर के दंभी, विक्षिप्त, निर्लज्ज और मिथ्या चिंतक की दस पुस्तकों को रेखांकित किया है- "1. जय भंगी जय चमार (खण्ड-1) जूठन का लेखन कौन?, 2. जय भंगी जय चमार (खण्ड-2) दलित आत्मालोचन की प्रक्रिया, 3. तीन द्विज हिंदू स्त्री लिंगों का चिंतन, 4. दूसरों की जूतियाँ, 5. चमार की बेटी रूपा, 6. थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. आंबेडकर, 7. प्रेमचंद : सामंत का मुंशी, 8. प्रेमचंद की नीली आँखें, 9. दलित सिविल कानून, 10. मेरी पत्नी और भेड़िया"[283]

'प्रेमचंद : सामंत का मुंशी' किताब से कँवल उद्धरण प्रस्तुत करते हैं- "मैं नहीं कह सकता कि भारत के लोग 'जारसत्ता' की मेरी अद्भुत खोज को कैसे लेकर चलेंगे, मैं केवल विनीत होकर उनसे यह कह सकता हूँ कि वे इस बात पर ज़रूर गर्व कर सकते हैं कि यह एक भारतीय दिमाग़ की खोज है। भारत के दिमाग़ ने शून्य की खोज की थी। यह एक बहुत बड़ी खोज है। उसके आविष्कारक के नाम का भी हमें पता नहीं है। लेकिन यह बात आप गर्व से कह सकते हैं कि परिवार में, समाज में, साहित्य में और कानून में जारसत्ता की खोज आपके

[283] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 9

धर्मवीर ने की है।.. यह खोज भारत की विश्व को देन है।"[284] कँवल भारती ने लिखा है- "उनका (धर्मवीर) सारा साहित्य कोल्हू के बैल की तरह जिस एक किली के चारों ओर घूम रहा है, वह है 'जार' सत्ता।"[285] इस बात के कई उदाहरण कँवल की आलोचना देती है। एक और उदाहरण 'कफन' कहानी से लिया जा सकता है। इस कहानी की आलोचना करते हुए डॉ. धर्मवीर क्या लिख गए हैं- "सारी कहानी नये सिरे से स्पष्ट हो जाती यदि प्रेमचंद इस कहानी की आखरी लाइन में दलित चेतना का यह सच लिख देते कि बुधिया गाँव के जमींदार के लौंडे से गर्भवती थी। उसने बुधिया से खेत में बलात्कार किया था। तब, शब्द दीपक की तरह जल उठते और सब कुछ समझ में आ जाता।..."[286] इस प्रकार की आलोचना के लिए कोई शब्द है? कँवल भारती 'ऐसा चिंतन रूग्ण चित्त का व्यक्ति' ही कर सकता है, ऐसा कहते हैं। डॉ. धर्मवीर की यह आलोचना स्त्री विरोधी है।

दलित चिंतन की परम्परा स्त्री सशक्तीकरण के पक्ष में रही है। यहाँ देखा जा सकता है कि डॉ. धर्मवीर इस बात के ठीक विपरीत दिशा में खड़े हुए हैं। वहीं डॉ. आंबेडकर का संघर्ष स्त्री सशक्तीकरण के लिए भी रहा है। डॉ. आंबेडकर 'हिंदू कोड बिल' को लेकर क्या सोचते थे, इस संबंध में उनकी क्या भूमिका थी, इस संदर्भ में वे (आंबेडकर) मिस्टर जेम्स ए. मिचेनेर से बात कर चुके थे। मि. मिचेनेर ने अपनी किताब 'द वाईस ऑफ एशिया' में डॉ. आंबेडकर की इस संबंध में जो भूमिका रही है, उसे अपनी इस किताब में रेखांकित किया है। वह कुछ इस प्रकार से है - " "Our legal system has sometimes been called the every of me world." Dr. Ambedkar grounds as he lectures you over his desk in Parliament, "I have dedicated my life to it." "Our penal system could hardly be improved upon. But where we lag has been in social legislation. Now we have taken that up. In one joint bill (Hindu Code Bill) we will

[284] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 10

[285] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 9-10

[286] डॉ. धर्मवीर - प्रेमचंद : सामन्त का मुंशी (मातृसत्ता पितृसत्ता और जारसत्ता खण्ड : तीन-क), पृ. सं. 17

revolutionise life. Hindu Code Bill will be 100 times more beneficial to India than Constitution. We are building a new society here and we are doing it with justice and law." When friends were suggesting to surrender of minor points to gain major ones, Dr. Ambedkar shouted, "I will have this Code applied to all India or none of it. There will be no compromise."[287]

उपर्युक्त उद्धरण में देखा जा सकता है कि महिला सशक्तीकरण के लिए, उन्होंने इस बिल को कितना महत्त्वपूर्ण माना है। वह इसे संविधान के 100 गुना ज़्यादा फायदेमंद मानते हैं। और किसी भी क़ीमत पर इसमें से कुछ भी घटाने के पक्ष में नहीं थे। क्योंकि यह स्त्रियों को उचित अधिकार दिला रहा था इस बिल में डॉ. आंबेडकर एक समानतामूलक देश का सपना साकार होते हुए देख रहे थे। दलित चिंतन की परम्परा में न सिर्फ़ डॉ. आंबेडकर, महात्मा फुले, पेरियार सभी के जीवन संघर्ष में स्त्री स्वाधीनता के लिए संघर्ष दिखाई देता है।

डॉ. धर्मवीर ने 'हिंदू विवाह की तानाशाही' नामक लेख लिखा है। यह स्त्री विरोधी होने के कारण कँवल ने इसके प्रकाशित होने को भी दुर्भाग्यपूर्ण माना है। इस लेख से कुछ उदाहरण, "सबसे बड़े दुख की बात यह है कि दुनिया की तमाम मादाओं में मनुष्य की ही मादा इतनी कमजोर है कि कई बार योनि को बेचकर अपना पेट भरती है।"[288], "न कमानेवाली ये औरतें डायनासोर बन कर मनुष्य की नस्ल को धरती से नष्ट करना चाहती हैं। कामिनी बनने के चक्कर में इन्होंने अपना सम्मान बेच दिया है।"[289], "क्योंकि औरत ठाली है, इसलिए उसे सेक्स नहीं, बल्कि चौबीस घंटे की सेक्स की बकवास चाहिए।"[290] कँवल भारती के शब्दों में कहा जाए तो, 'लगभग उनका (धर्मवीर) सारा साहित्य ऐसे ही विक्षिप्त विचारों का संग्रह है।'

---

[287] चांगदेव भवानराव खौरमोडे – डॉ. आंबेडकर आणि हिंदु कोड बिल, पृ. सं. 20

[288] संपा. राजकिशोर – स्त्री के लिए जगह, पृ. सं. 84

[289] संपा. राजकिशोर – स्त्री के लिए जगह, पृ. सं. 86

[290] संपा. राजकिशोर – स्त्री के लिए जगह, पृ. सं. 86

कँवल भारती ने डॉ. धर्मवीर के चिंतन को फासिस्ट चिंतन कहा है। क्यूँ? इसका जवाब इसी किताब में मिल जाता है। यह लिखी ही गयी है कि डॉ. धर्मवीर जैसे फासिस्ट चिंतन को (कँवल की माने तो दलित साहित्य पर कंलक) दलित साहित्य से साफ करने के लिए। कँवल लिखते हैं, 'मुसोलिनी नारी-स्वतंत्रता का विरोधी था और उन्हें घर के अंदर पत्नी और माँ बनने तक सीमित रखना चाहता था।' डॉ. धर्मवीर के चिंतन में भी स्त्री स्वतंत्रता का विरोध एवं अपमान सर्वोपरि दिखाई देता है।

कँवल लिखते हैं- "धर्मवीर दलितों को एक नयी धार्मिक आस्था में दीक्षित करना चाहते हैं। अर्थात् एक धर्म, एक संस्कृति, एक ईश्वर और एक कानून। इस अर्थ में धर्मवीर फासीवादी भी हैं और नाजीवादी भी। मुसोलिनी के फासीवाद में स्त्रियों की मुक्ति और स्वतंत्रता के लिये कोई जगह नहीं थी, जबकि हिटलर का नाजीवाद नस्लवादी था। धर्मवीर का नाजीवाद इस अर्थ में है कि वह चमारवाद का अनुशासन कायम करना चाहते हैं।"[291] इस बात के लिए उद्धरण भी वे देते हैं। वह कुछ इस प्रकार है- "मेरा सबसे बड़ा सुझाव यही है कि सारी दलित जातियाँ अपने आप को चमार घोषित कर दें। देर-सवेर यह काम होना भी है। जी हाँ, चमारों को सारी कौमों के काम करने आते हैं। यह एक पूरी कौम है, जो पूरे राष्ट्र को अपने कंधों पर संभाल रही है। हिंदुस्तान की हर गतिविधि इस कौम से संबंधित है। यही कौम सारी दलित जातियों और पिछड़ी जातियों में फैली और समाई हुई है।"[292] कँवल की माने तो यह बात इसलिए क्योंकि धर्मवीर चमार जाति से हैं, डॉ. आंबेडकर के विरोधी हैं या उनके उतने समर्थक नहीं हैं। कँवल लिखते हैं- "वह ठीक हिटलर की तरह नस्लवाद का फलसफा लेकर चल रहे हैं।"[293]

---

[291] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 43-44

[292] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 44

[293] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 44

सबसे ज़रूरी बात जो दलित साहित्य को महत्त्वपूर्ण बनाती है वह जाति उन्मूलन की पक्षधरता। यहाँ डॉ. धर्मवीर का जाति के संबंधी उसके उन्मूलन संबंधी विचार देखे जा सकते हैं। वे लिखते हैं- "दलित का दूसरा चिंतन जाति को तोड़ने के बारे में है। यह भी दलित चिंतन को एक फालतू रोग मिला है। हाँ, यदि जाति एक रोग है, तो जाति को तोड़ना उससे बड़ा रोग है। इस विषय पर बहस को लेकर दलित को एक भँवर में फाँसा गया है और वह फँसता गया है। उसे एक फालतू काम दिया गया है कि जाति मौजूद है और जाति को तोड़ना है। वह अपनी जबान की एक छोटी-सी छैनी लेकर वास्तविकता के एक पहाड़ को तोड़ने चला है। लेकिन बुद्धिमानी इस बात में है कि दलितों को अपनी ऊर्जा इस व्यर्थ के काम में नष्ट न करके सकारात्मक और रचनात्मक कामों में लगाना चाहिए। उसे मान लेना चाहिए कि जाति में कोई बुराई नहीं है। यदि जाति में कोई बुराई होती तो ब्राह्मण और शासक वर्ग इसे सबसे पहले मिटा देता। जाति केवल पहचान है और पहचान में कोई बुराई नहीं होती। जाति गाँव में और शहर में आदमी की डाक का पता है। इस स्पष्ट पहचान से किसी दलित को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"[294]

उपर्युक्त उद्धरण में जो बातें हैं उनकी आलोचना करते हुए कँवल लिखते हैं- "धर्मवीर ने कबीर से लेकर डॉ. आंबेडकर तक सबको दुलती मार दी है। चूँकि डॉ. आंबेडकर जाति का उन्मूलन चाहते थे, इसलिए वह गलत थे। दलित जबान की छोटी-सी छैनी से वास्तविकता के पहाड़ को तोड़ने का विरोध सीधे-सीधे डॉ. आंबेडकर का विरोध है। यह डॉ. आंबेडकर के उस चिंतन का खंडन है, जिसका लक्ष्य जाति विहीन समाज को स्थापित करना है।"[295]

'प्रेमचंद की नीली आँखें' इस किताब के बारे में कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, "दलित साहित्य में 'प्रेमचंद की नीली आँखें' अब तक की सबसे घटिया पुस्तक है। इस पढ़ने

[294] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 44-45
[295] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 46

के बाद लगता है कि यह कोई साहित्यिक आलोचना नहीं, बल्कि किसी को समाज में बदनाम करने का काम है।"[296] इससे कठोर आलोचना क्या हो सकती है। इस तरह की आलोचना हिंदी साहित्य में नहीं मिलती है। पूँजीवाद, सामंतवाद, पितृसत्ता का समर्थन करने वाले लेखकों, आलोचकों, इतिहासकारों पर ऐसी कठोर आलोचना दिखाई नहीं देती है। यही बात दलित आलोचना को हिंदी आलोचना से अलग बनाती है।

डॉ. धर्मवीर 'प्रेमचंद की नीली आँखें' इस किताब में जो काम किए हैं उनको स्पष्ट रूप में सामने रखते हैं। वे काम कुछ इस प्रकार से हैं- "1. प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' का असली सामाजिक संदर्भ ढूंढ़ निकाला है। यह स्वामी अछूतानंद के रूप में चमारों के आदि हिंदू आंदोलन का है। 2. प्रेमचंद की रखैल ढूंढ़ ली है कि वह कानपुर की और कानपुर में होनी चाहिए। यह भी अंदाजा लगाया है कि वह चमारी होनी चाहिए। 3. कायस्थों के इतिहास की एक व्याख्या दी है कि 'कायस्थ' शब्द 'क्राइस्ट' से बना हो सकता है।"[297] कँवल भारती मानते हैं कि पहला काम जो है धर्मवीर की मौलिक खोज नहीं है। वे लिखते हैं- "स्वामी अछूतानंद के आदि हिंदू आंदोलन और उनके साहित्य पर हिंदी में पहला काम चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने किया था। उसके लगभग चार दशक बाद हिंदी वालों को स्वामी जी का परिचय मैंने कराया था।"[298] दूसरी बात, "दूसरी औरत की जिक्र शिवरानी देवी ने ही अपनी पुस्तक (प्रेमचंद घर में) में किया है, फिर धर्मवीर ने क्या ढूँढ़ा?"[299]

इस किताब का पूरा चिंतन प्रेमचंद को बदनाम करने के लिए लिखा गया है, ऐसा कहा जा सकता है। कँवल भारती इस संदर्भ में कई उदाहरण देते हैं। डॉ धर्मवीर का चिंतन विक्षिप्त रहा है, ऐसा कहना कोई अनुचित नहीं होगा। कँवल भारती के शब्दों में 'प्रेमचंद के चरित्र-

[296] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 55

[297] डॉ. धर्मवीर – प्रेमचंद की लीनी आँखें (मातृसत्ता पितृसत्ता और जारसत्ता खण्ड : तीन-क), पृ. सं. 8 (भूमिका)

[298] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 56

[299] कँवल भारती – धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, पृ. सं. 57

हनन’ में ‘एंग्लो-इंडियन’ की संभावना तक धर्मवीर जाते हैं। धर्मवीर लिखते हैं- ‘‘जब नीली आँखों के लोगों ने भारत की स्त्रियों से विवाह किये हैं तो नीली आँखों की संभावना हो जाती है।’’[300]

निष्कर्ष, उपर्युक्त उद्धरणों से यही लगता है कि यह प्रेमचंद के साहित्य की आलोचना कम उनके व्यक्तित्व को बदनाम करने की कोशिश है। डॉ. धर्मवीर यूनान तक प्रेमचंद का संबंध जोड़ देते हैं। यह आलोचना दलित साहित्य का हिस्सा नहीं हो सकती है। कँवल भारती की आलोचना स्त्री विरोधी, फासिस्ट चितंन की आलोचना करती है। वह चाहे दलित साहित्य में ही मौजूद क्यों न हो। यह साहस आलोचक को महत्त्वपूर्ण बनाता है और साहित्य को नयी ऊँचाई के लिए तैयार करता है। कह सकते हैं आत्मालोचना के अंतर्गत किसी साहित्य, समाज या संस्कृति की उन्नति तय होती है। कँवल की आलोचना दलित परम्परा के चिंतन को आधार बनाकर इसे नयी ऊँचाईयाँ देती है।

निष्कर्षतः कँवल भारती की आलोचना को देखा जाए तो वह साहित्येतिहास का लेखन करती आलोचना है। हिंदी के समानांतर चली पूरी सौ वर्ष की दलित परंपरा को हम देख सकते हैं। ‘दलित कविता का संघर्ष’ यह किताब इस बात का उदाहरण है। हिंदी की दलित साहित्य की परंपरा मराठी की क़लम नहीं है, इस बात को कँवल की आलोचना स्पष्ट करती है। जिसे स्पष्ट करने के लिए तत्कालीन सामाजिक आंदोलन एवं तत्कालीन परिस्थितियों का आधार लेती है। डॉ. आंबेडकर की विचारधारा कँवल भारती के आलोचना का प्राण तत्त्व दिखाई देती है। अपनी अस्मिता की तलाश में आजीवक से कबीर, कबीर से स्वामी अछूतानंद हरिहर और हीरा डोम, अछूतानंद एवं हीरा डोम से मलखान सिंह तक की परम्परा को जोड़ने का काम कँवल भारती की आलोचना करती है। दलित साहित्य को न सिर्फ़ जाति के आधार पर बल्कि आर्थिक आधार पर भी देखने समझने का प्रयास कर, दलित साहित्य

[300] डॉ. धर्मवीर – प्रेमचंद की नीली आँखें (मातृसत्ता पितृसत्ता और जारसत्ता खण्ड : तीन-क), पृ. सं. 496

का फलक विस्तृत करती आलोचना कही जा सकती है। सच को अकाट्य तर्कों से स्थापित करने के लिए संघर्षरत कँवल की आलोचना दिखाई देती है चाहे वह मुख्यधारा से हो या दलित साहित्य। दलित साहित्य का एक विस्तृत फलक कँवल की आलोचना प्रस्तुत करती है। आत्मालोचना इसका महत्त्वपूर्ण अंग है। कँवल भारती आलोचना में जाति के साथ-साथ वर्ग को आधार बनाकर आलोचना की गई। इससे दलित आलोचना सक्षम एवं व्यापक हुई है। इस बात में फिर कोई असर नहीं दिखाई देता कि दलित आलोचना अपनी असहमति को बर्दाशत नहीं करती, अपने लिखे हुए साहित्य को ही श्रेष्ठ मानती है आदि।

चतुर्थ अध्याय

दलित पत्रकारिता और कँवल भारती

कँवल भारती न सिर्फ़ आलोचक के रूप में बल्कि कवि, चिंतक, अनुवादक एवं संपादक के रूप में भी जाने जाते हैं। एक अनुवादक के रूप में उन्होंने कई रचनाओं को अनुदित किया है, जैसे - 'रामायण-एक अध्ययन'(1981), 'धम्मचक्कपवत्तन सुत्त'(1985), 'अंधकार में ज्योति'(1991), 'डॉ. आंबेडकर की कविताएँ'(1996), 'धम्मपद-सौरभ'(1997), 'वीजा की प्रतीक्षा में'(2006), 'भारत में अछूत आंदोलन' (2011), मिस कैथरीन मेयो की बहुचर्चित कृति 'मदर इंडिया'(2011) आदि हैं। बहरहाल, उनका आलोचनात्मक कर्म जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही संपादन एवं वैचारिक लेखन भी। इसलिए इस अध्याय में कँवल भारती की पत्रकारिता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाएगा। न सिर्फ़ मूल्यांकन बल्कि उनकी विचारधारा किस रूप में उनकी पत्रकारिता में प्रस्तुत होती है और किस रूप में हिंदी पत्रकारिता से वह अलग है, इन बातों को देखने-समझने का प्रयास किया जाएगा।

पत्रकारिता लोकतंत्र के लिए सहायक ही नहीं; उसका आधार भी होती है। उसका यह आधार हर रूप से निरपेक्ष हो तभी यह लोकतंत्र के लिए सहायक होती है। अगर पत्रकारिता निरपेक्ष न हो तो वह समाज को अंधकार की ओर ले चल पड़ती है ऐसा कहा जा सकता है। इससे न सिर्फ़ गाँव, शहर बल्कि देश भी प्रभावित होते हैं। ऐसे में हम समझ सकते हैं कि पत्रकारिता का निरपेक्ष होना कितना महत्त्वपूर्ण है।

कँवल भारती की पत्रकारिता का मूल्यांकन 'कांशीराम के दो चेहरे', 'मायावती और दलित आंदोलन', 'समाज, राजनीति और जनतंत्र' एवं 'माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श' इन किताबों को केंद्र में रखकर किया जाएगा। यह किताबें उनके लेखों के संग्रह हैं।

4.1 हिंदी दलित पत्रकारिता की उपलब्धियों की शिनाख़्त

4.1.1 हिंदी दलित पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

दलित पत्रकारिता की शुरूआत मराठी के 'सोमवंशीय मित्र' से मानी जाती है, जिसकी शुरूआत सन् 1904 में हुई थी। इसके संपादक 'शिवराम जनबा कांबळे' थे। जो सामाजिक बुराईयों पर अपनी कलम चलाते थे। इनके 'सोमवंशीय मित्र' से लोगों में आए बदलाव को इस रूप में देखा जा सकता है कि- "उनके 1908 में 'सोमवंशीय मित्र' में शिबू बाई लक्ष्मण जाधव का पत्र छपा, उसने लिखा था 'देवदासी बनाने के दोषी उनके माँ बाप हैं जो उन्हें देवदासी बनाते हैं, सभी देवदासियाँ बुरी नहीं होती हैं, सात्विक्ता से रहती है।' शिबूबाई का 'सोमवंशीय मित्र' में छपा पत्र पढ़कर गणपतराव हनमंतराव गायकवाड नामक युवक आगे आया और उसने शिबूबाई के साथ विवाह किया। और भी देवदासियों के विवाह कांबळे जी ने कराएँ और समाज से कहा कि देवदासी प्रथा को बंद कराने में योगदान दें।"[301] धनंजय कीर की माने तो, 'शिवराम कांबळे वे पहले इंसान हैं जिन्होंने भारत में अस्पृश्यों के लिए पहली परिषद बुलाई थी। वे अस्पृश्यों की शिक्षा एवं भौतिक उन्नति के लिए भारत सरकार के सामने निवेदन भी प्रस्तुत कर चुके हैं।'[302]

मराठी के इस पत्र से समझा जा सकता है कि, समाज परिवर्तन की भूमिका में पत्रकारिता कितना महत्त्व रखती है। हिंदी में दलित पत्रकारिता की शुरूआत स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' से होती है। हिंदी क्षेत्र में यह ऐसा नाम है जिससे हर संभव बचने का प्रयास किया गया, ऐसा जान पड़ता है। स्वामी अछूतानंद सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ने वाले संघर्षशील व्यक्ति थे। वे न सिर्फ़ कवि, नाटककार थे बल्कि संपादक भी थे। उन्हीं से हिंदी दलित पत्रकारिता की शुरूआत मानी जा सकती है। कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, "डोरी

---

[301] संपा. रमणिका गुप्ता – दलित चेतना : सोच, पृ. स. 207
[302] धनंजर कीर – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, पृ. सं. 28

भगत कुरील जैसे अनेक लोगों की मदद से उन्होंने कानपुर में ही 'आदि हिंदू' प्रेस स्थापित किया और अपने ही प्रेस से 1925 से 1932 तक 'आदि हिंदू' मासिक पत्र का प्रकाशन किया। इससे पूर्व स्वामी जी ने 1922-23 में दिल्ली से दो साल तक 'प्राचीन हिंदू' का भी सम्पादन किया था, जिसके प्रकाशक देवीदास जाटव थे। यह हिंदी क्षेत्र का पहला पत्र था, जो एक दलित द्वारा निकाला गया था। स्वामी जी हिंदी की इस प्रथम दलित पत्रकारिता के प्रथम संस्थापक, प्रथम संपादक, प्रथम मुद्रक और प्रथम पत्रकार थे।"[303]

स्वामी अछूतानंदजी 'हरिहर' को खुद का प्रेस स्थापित करने की क्यों आवश्यकता महसूस हुई? इस बात का जवाब सरल है और वह तत्कालीन परिस्थितियों से मिल सकता है। स्वामी सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए संघर्ष कर रहे थे। और रूढ़िवादियों के लिए किसी भी तरह का परिवर्तन स्वीकार्य नहीं था। रूढ़िवादी हिंदुओं के ही ज़्यादातर प्रेस रहे और वे धर्म पर होने वाली समीक्षा को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करते थे। यही कारण है कि सामाजिक और धार्मिक समीक्षा का किसी भी तरह का लेख, आलेख वे प्रकाशित नहीं करते थे। इस बात को कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, "...उस समय सारे ही प्रेस द्विज जातियों के थे। वे दलितों की पुस्तकें क्या, पम्फलेट तक छापने के लिये तैयार नहीं होते थे। किसी पम्फलेट या किताब में जरा भी हिंदुओं का विरोध होता, तो वे उसे छापने से इनकार कर देते थे, भले ही दलित उसकी छपाई की मुँहमाँगी क़ीमत देने को तैयार थे। समाज को जागरूक करने में साहित्य की भूमिका ही सबसे महत्त्वपूर्ण होती है और हिंदू प्रेस की दलित विरोधी मानसिकता के कारण स्वामी जी का साहित्य दलितों तक नहीं पहुँच पा रहा था। इसी समस्या को दूर करने के लिये स्वामी जी ने कानपुर में अपना छापाखाना स्थापित किया, जिसका नाम भी उन्होंने 'आदि हिंदू प्रेस' रखा।"[304]

---

[303] संपा. कँवल भारती – स्वामी अछूतानन्दजी हरिहर संचयिता, पृ.सं. 38-39

[304] संपा. कँवल भारती – स्वामी अछूतानन्दजी हरिहर संचयिता, पृ.सं. 39

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर पत्रकारिता को महत्त्वपूर्ण मानते थे, उनका कहना है- "आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाचारपत्र सुशासन का मूल आधार है। यह लोगों को शिक्षित करने का एक साधन है।"[305] यही नहीं डॉ. आंबेडकर मूकनायक के अग्रलेख में बहिष्कृत समाज के लिए वह कितना सहायक हो सकता है, इस बात को भी रेखांकित करते हैं। वे लिखते हैं- "हमारे इन बहिष्कृत लोगों पर हो रहे और होने वाले अन्याय पर उपाय-योजना सुझाने, उनके भविष्य की उन्नति एवं उसके मार्ग; इनके सही स्वरूप की चर्चा होने के लिए समाचार पत्र जैसी अन्य भूमि ही नहीं। लेकिन मुंबई इलाके से निकलने वाले समाचार पत्रों की ओर देखने से ऐसा दिखाई देता है कि, उनमें ज़्यादातर पत्र विशिष्ट जातियों के हितसंबंध देखनेवाली हैं। अन्य जातियों के हितों की उन्हें परवा नहीं रहती। इतना ही नहीं कभी-कभी उनके अहितकारक प्रलाप भी इनसे निकलते हैं।"[306] (आमच्या या बहिष्कृत लोकांवर होत असलेल्या व पुढे होणा-या अन्यायावर उपाययोजना सुचविण्यास, तसेच त्यांची भावी उन्नती व तिचे मार्ग यांच्या ख-या स्वरूपाची चर्चा होण्यास वर्तमानपत्रासारखी अन्य भूमीच नाही. परंतु मुंबई इलाख्यात निघत असलेल्या वृत्तपत्रांकडे न्याहाळून पाहिले असता असे दिसून येईल की, त्यातील बरीचशी पत्रे विशिष्ट जातींचे हितसंबंध पाहाणारी आहेत. इतर जातींच्या हिताची त्यांना परवा नसते. इतकेच नव्हे तर केंव्हा केंव्हा त्यांना अहितकारक असेही त्यातून प्रलाप निघतात.)

यहाँ हम देख सकते हैं कि, समाचार पत्र कितनी अहम भूमिका सामाजिक उन्नति के लिए निभा सकते हैं। पर तत्कालीन परिस्थिति की बात की जाए, तो कोई भी समाचार पत्र दलितों के पक्ष में नहीं दिखाई देते हैं। वे अपने-अपने जातिगत हितों के लिए कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे में दलित हितों की बात करने वाले लेख, आलेख या फिर किताब इनके (रूढ़िवादियों के) प्रेस से निकला कितना दुष्कर कार्य रहा होगा इस बात का अंदाजा यहाँ

[305] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड–37, पृ. सं. 332
[306] डॉ. बाबासाहेब आंबेडककर लेखन आणि भाषणे, खंड 19, पृ. सं. 4

लगाया जा सकता है। यहाँ डॉ. आंबेडकर के 'मूकनायक' का उदाहरण देना ज़रूरी जान पड़ता है। जिससे तत्कालीन समय में रूढ़िवादियों के व्यवहार को देखा जा सकता है। धनंजय कीर ने लिखा है, "अस्पृश्यता नष्ट करण्याच्या दृष्टीने तो काळ किती प्रतिकूल आणि कठोर होता ह्याची कल्पना 'केसरी' सारख्या वर्तमानपत्राने 'मूकनायक' बद्दल दोन शब्द लिहिणे तर सोडाच, पण पैसे घेऊन त्याची जाहिरातसुद्धा छापण्याचे नाकारले"[307] (भावानुवाद - अस्पृश्यता निर्मूलन के दृष्टिकोण से वह समय कितना प्रतिकूल एवं कठोर था इसकी कल्पना 'केसरी' जैसे वर्तमानपत्र ने 'मूकनायक' के लिए दो शब्द लिखना तो छोड़ो, लेकिन पैसे लेकर उनका विज्ञापन भी छापने से इनकार कर दिया।) फिर भी ऐसे कठिन समय में अछूतानंद एवं डॉ. आंबेडकर ने पत्रकारिता की डोर अपने हाथों में लेकर दलितोत्थान का कार्य किया है।

स्वामी अछूतानंद ने राजनैतिक अधिकारों की माँग की है। यही कारण रहा कि वे काँग्रेस के निशाने पर आ गए जैसे डॉ. आंबेडकर। डॉ. आंबेडकर के सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष में अछूतानंद जी ने साथ दिया। स्वामी के ही आंदोलन से एवं उनके प्रभाव से चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु का उदय होता है जिन्होंने बाद में डॉ. आंबेडकर के सपनों को साकार बनाने का प्रयास उत्तर भारत में किया। चंद्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासू' वे पहले अनुवादक, कवि हैं जिन्होंने डॉ. आंबेडकर के लेखन को उत्तर भारत में अनुवाद के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। उन्हीं की किताब 'बाबा साहब का जीवन संघर्ष (संपूर्ण जीवन चरित)' से 'जूठन' आत्मकथा के लेखक 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' डॉ. आंबेडकर के जीवन-संघर्ष एवं विचारों से परिचित हुए जिसका जिक्र वे अपनी आत्मकथा में करते हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं, हिंदी क्षेत्र में दलित पत्रकारिता की नींव स्वामी अछूतानंद जी ने रखी है। सन् 1925 से 1932 तक उन्होंने अपने 'आदि हिंदू प्रेस' से 'आदि हिंदू' मासिक पत्र का संपादन किया। जहाँ तक 'आदि हिंदू' मासिक पत्र के साथ-साथ तत्कालीन

[307] धनंजय कीर – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, पृ. सं. 48

पत्रिकाओं पर अध्ययन करने से यह बात सामने आती है कि डॉ. आंबेडकर के पूर्व जो पत्रिकाएँ निकली उनकी सीमाएँ थीं वे सिर्फ़ सामाजिक सुधार पर ज़्यादा जोर देती थी। पर डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता काफ़ी विस्तृत थी और उसका प्रभाव भी देश व्यापी रहा है। पहले 'सोमवंशी पत्र' की बात की थी, वह भी सामाजिक सुधार तक सीमित रहा।

दलित पत्रकारिता आर्थिक अभाव का शिकार होती रही है। इसके प्रमाण डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता से भी मिल सकते हैं। बिना आर्थिक सहयोग के दलित पत्रकारिता का भविष्य ज़्यादा देर बने रहना बहुत मुश्किल रहा। सत्ता-संसाधनों से दूर दलित समाज की पत्रकारिता समाज के आर्थिक सहयोग पर ही निर्भर रही ऐसा इतिहास रहा है। आर्थिक सहयोग की ओर संकेत करने वाली बात डॉ. आंबेडकर की कुछ इस प्रकार है, वे लिखते हैं- "खास अस्पृश्यांच्या हिताची चर्चा करण्यासाठी, सोमवंशीय मित्र, हिंद नागरिक, विटाळ विध्वंसक ही पत्रे उपजली व लयही पावली.... परंतु वर्गणीदारांकडून योग्य प्रोत्साहन मिळत गेल्यास मूकनायक न डगमगता स्वजनोद्धाराचे महत्तकार्य करण्यास योग्य पंथ दाखवील असे आश्वासन देताना ते अनुभवांती खोटे ठरणार नाही अशी खात्री बाळगून हे स्वशय निवेदन आटोपते घेतो."[308] (भावानुवाद - विशेष अस्पृश्यों के हितों की चर्चा करने के लिए, सोमवंशीय मित्र, हिंद नागरिक, विटाळ विध्वंसक ये पत्र उभरे और अस्त भी हुए... लेकिन चंदा देनेवालों की ओर से योग्य प्रोत्साहन मिलता रहा तो मूकनायक बग़ैर डगमगाए स्वजनोद्धार का महत्तकार्य करने के लिए उचित मार्ग दिखाएगा ऐसा आश्वासन देते हुए, यह अनुभव के बल पर झूठा साबित नहीं होगा ऐसा विश्वास रखकर यह अपना निवेदन यहीं रोकता हूँ।)

अब, हिंदी दलित पत्रकारिता में 'आदि हिंदू' के महत्त्व को भी देखा जाए। हिंदी क्षेत्र में दलित, पिछड़े वर्ग को चेतना-सम्पन्न बनाने के लिए ही इसे माध्यम के रूप में प्रयोग किया

[308] डॉ. बाबासाहेब आंबेडककर लेखन आणि भाषणे, खंड 19, पृ. सं. 5

गया है। "स्वामी जी का साहित्यिक संसार कविता से आरंभ होता है और नाटक पर समाप्त होता है। यद्यपि कुछ सार गर्भित आलोचनात्मक लेख भी उन्होंने लिखे थे, पर उनकी मूल विधा कविता ही थी।"[309] दो नाटक उनके मिलते हैं- 'मायानन्द बलिदान' और 'रामराज्य न्याय'। कँवल भारती, चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु की वह बात जो 'रामराज्य न्याय' नाटक के परिचय में कही गयी उसे उद्धृत करते हैं जो काफ़ी महत्त्व रखती है। वह है, "स्वामी जी के दिमाग में कई नाटकों के प्लाट थे, जिनके द्वारा वे आदि हिंदू ज्ञान को साकार करना चाहते थे। किंतु उनका जीवन इतना व्यस्त और चिंता ग्रसित था कि वे अपनी इच्छानुसार उन्हें लिख न सके। उनके मनोभिलाषित नाटक थे – 'समुद्र मंथन', 'बलि-छलन', 'एकलव्य' एवं 'सुदास और देवदास'।"[310]

यह नाटक लिखे गए होते तो दलित साहित्य में इनकी भूमिका काफ़ी महत्त्व रखती। वैसे उनके दो नाटक भी चेतना की दृष्टि से काफ़ी सशक्त हैं। दलित पत्रकारिता के इस शुरूआती दौर में अछूतानंद 'हरिहर' कवि, नाटककार, संपादक एवं संस्थापक आदि रूपों में दिखाई देते हैं।

4.1.2 माझी जनता और कँवल भारती

दलित पत्रकारिता के शुरूआती दौर के बाद कँवल भारती की 'माझी जनता' का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' एवं चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु जी का कँवल भारती के लेखन पर प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। दलित पत्रकारिता में 'माझी जनता' का क्या योगदान रहा, कँवल भारती ने दलित पत्रकारिता के लिए क्या मापदंड सुनिश्चित किए इस बात को देखा जाना चाहिए।

---

309 कँवल भारती – स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता, पृ. सं. 39

310 कँवल भारती – स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता, पृ. सं. 39-40

'माझी जनता' की शुरूआत महाराष्ट्र से होती है। वह मराठी में लिखा गया साप्ताहिक था। उसकी शुरूआत किसने की? क्यूँ की? इन प्रश्नों का उत्तर कँवल भारती की इस बात से स्पष्ट हो जाएगा। कँवल भारती लिखते हैं –"नागपुर निवासी शालीग्राम ढोरे इस संकल्प के साथ मैदान में उतरे कि भारत में एक वैकल्पिक दलित मीडिया को खड़ा करके ही दम लेंगे। अतः उन्होंने अपने कुछ प्लाट बेचे और वर्धा रोड पर स्थित अपने चन्द्रमणि भवन में प्रेस कायम किया, कम्प्यूटर लगाये तथा नेगेटिव और प्लेट बनाने के सारे उपकरण खरीदे और 17 अक्टूबर 1999 को उन्होंने चंद्रमणि भवन के ही भव्य सभागार में समता सैनिक दल के बैंड बाजे की ध्वनि के साथ 'माझी जनता' के मराठी-हिंदी संयुक्त प्रवेशांक का भव्य विमोचन समारोह सम्पन्न हुआ।"[311]

इस उद्धरण से एक बात स्पष्ट रूप में नज़र आती है कि आर्थिक अभाव के कारण आज तक वैकल्पिक दलित मीडिया खड़ा नहीं हो पाया है। ऐसा बिलकुल नहीं है कि इसके लिए प्रयास नहीं किए गए, 'शालीग्राम ढोरे' भी कई नामों से एक नाम हैं। इस बात को समझा जा सकता है कि दलित मीडिया को खड़ा करने के पीछे दलित समाज के प्रश्नों को मुख्यधारा के मीडिया से अनदेखी, वहीं मुख्यधारा के मीडिया में उचित स्थान का अभाव ऐसे कई सारे कारण हो सकते हैं। जैसा कि पहले ही डॉ. आंबेडकर की बात को रेखांकित किया गया, जिसमें वे कहते हैं - 'जाति विशेष के हितसंबंध देखने वाली पत्रकारिता थी'। जिससे दलित समाज के प्रश्न, समस्याएँ, उनकी यथार्थ स्थिति, उन्नति के मार्ग प्रशस्त करने के लिए कोई स्थान तत्कालीन पत्रकारिता में नहीं था न ही वह शालीग्राम ढोरे के समय तक रहा है जिसके कारण उन्हें अपनी ज़मीन बेचकर वैकल्पिक दलित मीडिया खड़ा करने की आवश्यकता महसूस हुई।

[311] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, निवेदन, पृ. सं. 11

'माझी जनता' की लोकप्रियता के कारण हिंदी क्षेत्र में भी इसे प्रकाशित करने का मन ढोरे ने बनाया, जिसके कारण कँवल भारती का नाम 'माझी जनता' से जुड़ा हुआ देखा जा सकता है। वैकल्पिक मीडिया खड़ा करना दलित समाज के लिए बहुत दुष्कर कार्य आज भी है क्योंकि इसमें सबसे बड़ी समस्या और मुख्य समस्या आर्थिक है। जब हिंदी भाषी राज्यों में 'माझी जनता' को ले जाने का मन बन गया तब उन्होंने उत्तर प्रदेश को चुना और वे कँवल भारती से मिले। और जो ज़रूरी बातें हैं उन पर चर्चा की, जिसे रेखांकित करते हुए कँवल भारती लिखते हैं – "वे उत्तर प्रदेश का संस्करण मेरे हाथों में सौंपना चाहते थे। इस उद्देश्य से वे नागपुर से रामपुर आये। मुझसे मिलकर उन्होंने पूरी योजना बनायी, उसके आर्थिक पक्ष पर विचार किया। वे उसका प्रकाशन लखनऊ से करना चाहते थे। मैंने इस मामले में दो बातें स्पष्ट कर दीं – एक, मैं रामपुर छोड़कर लखनऊ नहीं रह सकता और दो, मैं अपना श्रम और दिमाग दे सकता हूँ, धन मेरे पास नहीं है।"[312]

'माझी जनता' भी दलित पत्रिकाओं के इतिहास को फिर से दोहराती है। सबसे बड़ी समस्या आर्थिक अभाव, जिसे मैंने पहले ही दोहरा दिया। कँवल भारती के शब्दों में, "28 मई 2000 के प्रवेशांक से लेकर 1-15 जनवरी 2001 तक कुल 30 अंकों के प्रकाशन के बाद माझी जनता का यह संस्करण आर्थिक परेशानियों के कारण बंद करना पड़ा, जबकि उस वक्त तक उसकी प्रसार संख्या लगभग चार हजार तक पहुँच गयी थी। लगभग सभी जनपदों में 50 से 100 की संख्या में प्रतियाँ जाती थीं। पर, बिलों के भुगतान काफ़ी विलम्ब से मिलते थे और प्रकाशन बंद करने के बाद जिन पर बकाया रह गया था, वह मिला ही नहीं।"[313]

कँवल भारती के संपादन में 'माझी जनता' के 30 अंक निकले हैं। इन्हें ही केंद्र में रखकर आगे दलित पत्रकारिता में कँवल भारती की भूमिका को देखा जाएगा एवं उसका मूल्यांकन किया जाएगा।

---

[312] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, निवेदन, पृ. सं. 12

[313] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, निवेदन, पृ. सं. 12

4.1.2.1 माझी जनता : दलित पत्रकारिता का अर्थ एवं महत्त्व :

कँवल भारती पत्रकार एवं संपादक की भूमिका निभा चुके हैं। दलित चिंतक होने के नाते दलित समाज उनके लेखन का केंद्र बिंदु रहा है। यही कारण है कि जब उनके साहित्यिक-सृजन में दलित समाज होगा तो उनकी पत्रकारिता से वह कैसे ओझल हो सकता है? 'माझी जनता' साप्ताहिक एक वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने के उद्देश्य से आगे आया था, जिसके वे संपादक रह चुके हैं। ऐसे में दलित पत्रकारिता मुख्यधारा से कैसे अलग है? क्यों उसकी ज़रूरत है? उसका अर्थ क्या है? आदि सवाल उभर कर आते हैं।

कँवल भारती की बात को माना जाए तो, "दलित साहित्य की तरह दलित पत्रकारिता को भी अकसर गलत अर्थ में समझा जाता है। दलित पत्रकारिता को 'दलित का दलित पर लेखन' माना जाता है, जो गलत है। वास्तव में दलित पत्रकारिता का अर्थ है, देश की समस्याओं पर, राजनीति, समाज और जनतंत्र पर वह लेखन या चिंतन, जो निचले वर्ग से आया है।"[314] कहना न होगा, कँवल भारती की इस बात से दलित पत्रकारिता की व्यापकता का एवं उसके विस्तृत फलक का अंदाजा हो जाता है।

दलित पत्रकारिता के बारे में भी बहुत ही गलत धारणाएँ लोगों के मन में बनी हुई हैं। इसके पीछे दलित पत्रकारिता को 'बाज़ार' बनाने की कोशिश है, ऐसा कँवल भारती मानते हैं। पर साथ ही यह भी दिखाने का स्वार्थ जुड़ा होता है कि मैं दलित आंदोलन एवं महापुरुषों का समर्थक हूँ। जो उदाहरण कँवल देते हैं वे ज़मीन से जुड़े हुए हैं। वे लिखते हैं – "उसने बुद्ध और आंबेडकर का बाज़ारीकरण किया, कहां-कहां बुद्ध जयंती मनायी गयी, कहां-कहां आंबेडकर जयंती मनायी गयी, ये समाचार प्रमुखता से छापे गये, कहां कोई नया संगठन बना, पदाधिकारियों के नामों के साथ यह समाचार छापा गया, कभी कुछ प्रमुख नेताओं की रथयात्राओं के विवरण छाप दिये गए तो कभी किसी अधिकारी या संगठन के प्रमुख का

[314] कँवल भारती – समाज, राजनीति और जनतंत्र, निवेदन, पृ. सं. 8

साक्षात्कार छाप कर यह भ्रम पाल लिया गया कि वे दलित-पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं।"[315]

ऐसी पत्रकारिता को दिशाहीन कहना कोई अनुचित नहीं है। तो सवाल है किसे दलित पत्रकारिता माने? जैसे दलित साहित्य के लिए आंबेडकरवाद कसौटी है उसी प्रकार दलित पत्रकारिता के लिए भी आंबेडकर-चिंतन ज़रूरी है। बग़ैर इस चिंतन के और इसके समक्ष ज्वलंत समस्याओं का मूल्यांकन किए किसी पत्रकारिता को, दलित पत्रकारिता माना नहीं जा सकता है।

दलित पत्रकारिता के महत्त्व को समझने के लिए डॉ. आंबेडकर अख़बार को किस दृष्टिकोण से देखते थे, उनके लिए इसका क्या महत्त्व रहा इस बात को जानना-समझना बहुत ही आवश्यक है। जैसा कि पहले ही उनकी (आंबेडकर) बात को उद्धृत किया है, 'आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाचारपत्र सुशासन का मूल आधार है। यह लोगों को शिक्षित करने का एक साधन है।' क्या इतनी ही इसकी भूमिका वे मानते थे। नहीं वे सिर्फ़ इतनी ही इसकी भूमिका नहीं मानते थे वे 'पीपुल्स हेराल्ड' साप्ताहिक के लोकार्पण समारोह में इसके आगे की भूमिका को भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "यदि यह अख़बार विभिन्न विधानमंडलों में हमारे विधायकों के आचरण का समाचार छापने के लिए इसमें कुछ जगह दे सके और लोगों को बता सके, कि उन्होंने ऐसा क्यों किया है और क्यों नहीं किया है तो मेरे मन में कोई संकोच नहीं है कि हमारे विधायकों के आचरण में बड़ा सुधार आएगा और वर्तमान अव्यवस्था बंद हो जाएगी, जो हमारे समाज को बदनामी दिलाने के लिए काफ़ी है। इसलिए मैं इस अख़बार से आशा करता हूँ कि यह उन लोगों के शुद्धीकरण करने का एक महान दस्तावेज बने, जो अपने राजनीतिक जीवन में भटक गए हैं।"[316]

[315] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 45
[316] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड–37, पृ. सं. 332

इन दो उद्धरणों से समझा जा सकता है कि पत्रकारिता की भूमिका इस लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए कितनी ज़रूरी है और यही बात इसके महत्त्व को भी दर्शाती है। 'माझी जनता' ने क्या अपनी भूमिका इस रूप में रखी है? इस बात से संबंधित मूल्यांकन एवं विश्लेषण करना बहुत ज़रूरी है। अतः इसी बात को कुछ बिंदुओं में रखकर देखने-समझने की कोशिश यहाँ की गई है।

4.1.2.2 माझी जनता : सम्पादकीय टिप्पणियाँ

कँवल भारती के संपादन में जब 'माझी जनता' निकल रही थी उस समय की स्थिति, "केंद्र और उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी का शासन था। केंद्र में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री थे और उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री के आसन पर राम प्रकाश गुप्त विराजमान थे।"[317] दलित पत्र-पत्रिकाएँ भी उस समय नियमित प्रकाशित हो रही थी, जिनमें "दिल्ली से हम दलित (भारतीय सामाजिक संस्थान), अभिमूक नायक (श्री. एल. भारती), हिमायती (सोहनपाल सुमनाक्षर), दलित हितैषी (के. पी. मौर्य), और पटना से शम्बूक (रविन्द्रप्रसाद लड्डू) दलित सरोकारों की पठनीय पत्रिकाएँ हैं।"[318]

ऐसे समय में 'माझी जनता' वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने का उद्देश्य लेकर कर सामने आती है। यह मूलतः साप्ताहित पत्र था जहाँ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ स्थायी स्थान नहीं बना पाती थी इसका स्थायी होना और भी दुष्कर कार्य था। ऐसे में संपादक के नाते वे इस साप्ताहिक को कितना सार्थक रूप दे चुके थे इस बात का मूल्यांकन होना आवश्यक है।

सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद कहते हैं, "साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है -

---

[317] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, निवेदन, पृ. सं. 13

[318] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 21

उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनिति के पीछे चलनेवाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है।"[319] इस कसौटी पर 'माझी जनता' के संपादक साहित्यकार क्या खरे उतरे हैं? क्या वह तत्कालीन राजनीति की पीछे हो लिए या उसके आगे रहकर सामाजिक, राजनीतिक चेतना का उन्होंने प्रसार किया? ये सवाल मन में अनायास आ जाते हैं।

कँवल भारती की संपादकीय टिप्पणियाँ एवं संपादकीय से यही प्रतीत होता है कि उनका साप्ताहिक लगातार राजनीतिक प्रश्नों एवं मुद्दों को स्थान देता रहा है और उसका मूल्यांकन करता रहा। कुछ शीर्षक यहाँ देखे जा सकते हैं, जैसे – 'मायावती का फिर भाजपा को समर्थन', 'सपा का आगरा अधिवेशन' एवं 'तेरी क्षय हो हिंदी पत्रकारिता' आदि ये संपादकीय टिप्पणियाँ हैं।

'मायावती का फिर भाजपा को समर्थन' इस टिप्पणी के अंतर्गत "अयोध्या मुद्दे पर सर्वदलीय बैठक में मसले का हल न निकल सकने के बाद अंततः लोकसभा अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी को काँग्रेस के निंदा प्रस्ताव पर नियम 184 के तहत बहस कराने की माँग स्वीकार करनी पड़ी। दो दिन चली बहस के बाद विपक्ष का निंदा प्रस्ताव 179 के मुकाबले 291 मतों से ख़ारिज कर दिया गया।"[320] इसमें से जो मुख्य बात यह साप्ताहिक लोगों के सामने लाता है वह यह कि मायावती ने इस प्रस्ताव के न ही समर्थन में और न ही विरोध में अपना मत दिया। वह संसद के बाहर आकर दलील देती हैं कि उसके लिए काँग्रेस और भाजपा दोनों ही अयोध्या काण्ड के दोषी हैं। पर असल बात यह है जिसे लोगों की चेतना को विस्तार देने का काम यह साप्ताहिक करता है और सामने लाता है कि, "ऊपर से यह बहिष्कार सैद्धांतिक लगता है, परंतु वास्तविकता यह है कि यह सैद्धांतिक बहिष्कार भाजपा के समर्थन का निर्णय था। यदि बसपा ने मतदान में भाग लिया होता तो उसे या तो

[319] संपादन - निर्मल वर्मा, कमल किशोर गोयनका - प्रेमचंद रचना-संचयन, पृ. सं. 910
[320] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 109

प्रस्ताव के पक्ष में मत देना पड़ता या प्रस्ताव के विरोध में। दोनों ही स्थितियों में बसपा के रुख़ का पता चल जाता।"[321] पर ऐसा हुआ नहीं और इसलिए यह साप्ताहिक मायावती के संसद के बाहर बोलने और अंदर से भाजपा के समर्थन का रूप सामने लाता है। टिप्पणी में लिखते हैं, "संसद के बाहर उनके कुछ भी बोलने का कोई महत्त्व नहीं है, जबकि संसद में उनका आचरण भाजपा का समर्थन करने वाला होता है।"[322] इससे यह बात साफ होती है कि 'माझी जनता' यह साप्ताहिक दलित समाज को बहलाने वाले, बहुजन समाज के नाम पर राजनीतिक करने वाले पार्टी का भी सच समाने लाने में संकोच नहीं करता है। इससे उसके लोकतंत्र के पक्ष में; सक्षम रूप में खड़े होने वाले साप्ताहिक का चेहरा सामने आता है।

'सपा का आगरा अधिवेशन' इस अधिवेशन में सपा ने आनेवाले चुनाव के लिए जो निर्णय लिया है उसका मूल्यांकन, संपादक इस टिप्पणी के अंतर्गत करते हैं। "समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की आगरा बैठक इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि उसमें उत्तर प्रदेश में आगामी विधानसभा चुनावों में भाजपा को सत्ता से बाहर करने का संकल्प लिया है, परंतु इस मायने में चिंताजनक भी है कि मुलायम सिहं यादव अकेले चुनाव लड़कर अपनी सरकार बनाना चाहते हैं।"[323] यह क्यों चिंता का विषय है? यह इसलिए है क्योंकि अकेले चुनाव लड़ने से भाजपा को ही सत्ता में आने का मौका देना है। एक तरफ भाजपा और दूसरी तरफ काँग्रेस इन दोनों के बीच जो तीसरी धारा है जो शोषितों, वंचितों, मज़दूरों, दलित, आदिवासी, पिछड़ी जातियों की बात करती है, अगर संघटित न होकर अकेले चुनाव लड़ती हैं तो इससे ताकतवर पार्टी को ही फायदा होगा। इसी कारण वे इस फैसले को योग्य नहीं मानते हैं और सपा की राजनीति को लेकर लिखते हैं– "अकेले लड़ने के फैसले ने मुलायम सिंह यादव की उस राजनीति को उजागर कर दिया है, जो दलितो, पिछड़ों और मुसलमानों के वोटों को

[321] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 110
[322] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 110
[323] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 55

विभाजित कर भाजपा को शक्तिशाली बनाने की है।"[324] साप्ताहिक का यह विश्लेषण सही अर्थों में राजनीति के आगे की सोच एवं तीसरी धारा का मार्ग प्रशस्त करते हुए दिखाई देता है। सत्ता, राजनीति एवं जनतंत्र के बारे में कँवल भारती के विचारों का आगे और विस्तृत रूप में मूल्यांकन एवं विश्लेषण करेंगे।

कँवल भारती के टिप्पणियों से यह बात साफ तौर पर स्पष्ट हो जाती है कि उनका साप्ताहिक उसी तरीके की भूमिका का निर्वाह कर रहा था जो लोकतंत्र को अपेक्षित है। जैसे - 'तेरी क्षय हो हिंदी पत्रकारिता' में कँवल भारती हिंदी पत्रकारिता के पतन को रेखांकित करते हैं। वे इसमें 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला' के साथ-साथ 'हिंदुस्तान' और 'राष्ट्रीय सहारा' के भी भगवाकरण की बात लिखते हैं। "संघ के राष्ट्र रक्षा शिविर को लें, जो आगरा के शास्त्री नगर में तीन दिन तक चला। किसी भी राष्ट्रीय अख़बार ने यह सवाल नहीं उठाया कि संघ का राष्ट्र रक्षा किस राष्ट्र की रक्षा के लिये हुआ? इस सवाल पर बहुत बहस हो चुकी और सब जानते हैं कि भारत एक राष्ट्र नहीं है।... इन अख़बारों ने इस विषय पर कोई बहस नहीं चलायी। बल्कि इनमें से कई अख़बारों के सम्पादकीय लेख संघ परिवार की तारीफ़ों से भरे रहे।"[325] यहाँ यह बात समझनी होगी की हिंदी पत्रकारिता के सत्ता के सामने घुटने टेकना, आपने आप को बेचना लोकतंत्र की हत्या करने में शामिल होने जैसा है और यह साप्ताहिक इस बात को स्पष्ट रूप में समाने लाने का प्रयास करता है।

4.1.2.3 माझी जनता : समाचार विश्लेषण

समाचार-विश्लेषण इस बात को देखने समझने में सहायक होता है कि वह किस विचारधारा या संकल्प के तहत उसका विश्लेषण कर रहा है। उसके आधार को समझने के

[324] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 56
[325] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 96

लिए समाचार-विश्लेषण को सूक्ष्म रूप से देखने समझने का प्रयास किया जाना आवश्यक है। 'माझी जनता' का समाचार-विश्लेषण कुछ इस प्रकार दिखाई देता है-

'दलितों की लाशों पर राजनीति' इस समाचार विश्लेषण में बिहार में दलित-मज़दूरों की हत्याओं पर बात की गई है। सन् 2000 की फरवरी में हुई इस घटना का मूल्यांकन करते हुए वे लिखते हैं कि "दलितों की हत्याओं को आधार बनाकर बिहार में राष्ट्रपति शासन (यानी, गवर्नर राज) लागू किया गया था। पर, क्या हुआ? हत्याएँ तो फिर भी बंद नहीं हुई थीं, उस तेरह दिन के गवर्नर राज में शासन और प्रशासन का भगवाकरण बहुत तेजी से हो गया था।"[326] चुनाव में भगवा ताकतें लालू यादव की राजनीति से हार गयीं इसलिए वे एक शार्टकट रास्ते से सत्ता हासिल करना चाहते हैं। अतः इसके लिए राबड़ी सरकार को वे हटाना चाहते हैं। पर जो बात कँवल यहाँ कहते हैं वह महत्त्वपूर्ण है 'दलितों की हत्याओं के लिए यदि सिर्फ़ राजद या कोई एक दल ज़िम्मेदार होता, तो उत्तर प्रदेश में तो भाजपा की सरकार है वहाँ हत्याएँ क्यों हो रही हैं? महाराष्ट्र में तो राजद नहीं है, मध्यप्रदेश में राजद नहीं है, राजस्थान में भी राजद नहीं है, तो क्या इन प्रदेशों में दलितों की हत्याएँ नहीं हो रही हैं? ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण है।'

कँवल मानते हैं कि इस समस्या से निकलने के लिए दलित एवं मज़दूरों की सत्ता हो। जब इनकी सत्ता राजनीति में आने की कोशिश करती है "तभी पूंजीवाद, सामंतवाद और ब्राह्मणवाद से शाषित राजनीति शातिर हथकंडों से उसे फिर जमींदोज कर देती है। इस शर्मनाक काम में अपनी शर्मनाक भूमिका वे लोग निभाते हैं, जो दलितों के मसीहा बनने का नाटक करते हैं।"[327] यहाँ उनकी भी आलोचना है जो दलितों के मसीहा बनने का प्रयास कर रहे हैं। कँवल भारती के शब्द, "भीतर के दुश्मन बाहर के दुश्मनों से ज़्यादा ख़तरनाक होते हैं। इन दुश्मनों की घेराबंदी पहले ज़रूरी है।...दलित-मज़दूरों को अपने हक़ों को हासिल करना है,

---

[326] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 115

[327] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 117

तो व्यवस्था को बदलने के लिये उन्हें अपने ही अंदर के दुश्मनों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़नी होगी।"[328] अपने सामाजिक-आर्थिक सुधार के लिए संघर्ष ही पर्याय रहा है और उसे अपनाने की बात संपादक कर रहे हैं।

'बढ़ती जनसंख्या से भयभीत पूँजीपतियों के पेट-दर्द' एवं 'विश्व जनसंख्या और भारत' इन दो समाचार-विश्लेषणों में, दलित दृष्टिकोण से जनसंख्या-नियंत्रण पर जो नितियाँ भारत सरकार बनाने की कोशिश कर रही है उसी का विश्लेषण है। भारत सरकार ने जनसंख्या नियंत्रण के लिए किस तरह के प्रयास किए इसे देखना होगा। भारत सरकार ने सबसे पहले 1976 में 42वां संविधान संशोधन विधेयक पास हुआ और संविधान की 7वीं अनुसूची की तीसरी सूची में 'जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन' जोड़ा गया। इसने केंद्र सरकार एवं सभी राज्य सरकारों को 'जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन' पर कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने 20 फरवरी 2000 को 11 सदस्यीय संविधान समीक्षा आयोग गठित किया। जिसके अध्यक्ष वेंकटचलैया थे। इस आयोग ने संविधान में आर्टिकल 47ए जोड़ने और जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने का सुझाव दिया था। 2004 में उनकी सरकार चुनाव हार गई इसलिए इस पर कोई चर्चा नहीं हुई।

आज तक जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने के लिए सरकार प्रयत्नशील ही है। पर जो बात इस कानून को लेकर आती है। वह यह कि इस कानून के माध्यम से देश के बहुत बड़े तबके को नुकसान हो सकता है। वह भी तब जब भाजपा नेता अश्विनी उपाध्याय इस शर्त पर इसे कठोर रूप में लागू करना चाहते हैं। उनकी माने तो, "जो व्यक्ति इस कानून का उल्लंघन करे उसका राशन कार्ड, वोटर कार्ड, आधार कार्ड, बैंक खाता, बिजली कनेक्शन और मोबाइल कनेक्शन बंद होना चाहिए। इसके साथ ही जनसंख्या नियंत्रण कानून तोड़ने वालों पर सरकारी नौकरी और चुनाव लड़ने तथा राजनीतिक दल का पदाधिकारी बनने पर भी

---

[328] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 117

आजीवन प्रतिबंध होना चाहिए। ऐसे लोगों को सरकारी स्कूल, हॉस्पिटल सहित अन्य सभी सरकारी सुविधाओं से वंचित करना चाहिये और 10 साल के लिए जेल भेजना चाहिए।"[329] ऐसी बात 2000 के आस पास भी हुई जिसका विश्लेषण कँवल भारती करते हैं। शासक वर्ग के लोग भी यही मत रखते हैं, जिनके दो से अधिक बच्चे हों उन्हें वोट देने का अधिकार न हो।

वैसे यह बात किसी जनसंख्या नियंत्रण को अमल में लाने के लिए अच्छा प्रयास लग सकता है। पर इसके प्रभाव के बारे में कँवल भारती लिखते हैं- "पर यदि इस नीति पर अमल हो गया, तो दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों की लगभग नब्बे फीसदी आबादी वोट देने के अधिकार से वंचित हो जायेगी।"[330] ऐसे में समझा जा सकता है यह कितना घातक निर्णय हो सकता है। वोट के अधिकार या अन्य सुविधाओं से लोगों को बाहर कर देना जनसंख्या नियंत्रण का अच्छा प्रयास नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए सरकार अपने आप को ज़िम्मेदार मानती हैं, जनसंख्या नियंत्रण में सुधार लाना चाहती है तो उसे गंभीर होना होगा। जनसंख्या नियंत्रण से विषमता को नियंत्रित किया जा सकता है ऐसा अगर लगता है तो वह अचूक नहीं होगा। कँवल भारती की यह बात महत्त्वपूर्ण लगती है कि "यह सारी विषमता दोषपूर्ण सामाजिक संगठन और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के कारण है। ग़रीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी सब इसी व्यवस्था की देन है। इस व्यवस्था को बदले बिना और ग़रीबी तथा अशिक्षा को समाप्त किये बिना जनसंख्या विस्फोट को रोका ही नहीं जा सकता।"[331]

जनसंख्या नियंत्रण पर यह दलित दृष्टिकोण बहुत ज़रूरी है। जिससे कई लोगों के जीवन पर होने वाले प्रभाव को देखा जा सकता है। कँवल भारती इसके लिए धर्मसत्ता की भी आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं कि "बच्चे ईश्वर की देन हैं और उसकी

---

[329] https://hindi.asiavillenews.com/article/population-control-bill-is-this-law-one-more-step-to-suppress-muslim-minorities-and-deprived-to-reduce-their-rights-33983

[330] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 156

[331] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 152

व्यवस्था को ध्वस्त करने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। यह विचार यहीं तक सीमित रहता, तो आज के वैज्ञानिक युग में यह स्वतः निरर्थक हो जाता। पर, यह विचार उन अंधी आस्थाओं का भी जनक है, जिनके कारण लोग लड़कियों के जन्म को अच्छा नहीं समझते हैं और एक पुत्र की चाह में दर्जन भर बच्चों को जन्म देते हैं।"[332] कँवल की यह बात अतिरेक लगती है। आज पूँजीवाद ने आम लोगों को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया है जिससे जीवनयापन के साधन जुटाना बहुत ही मुश्किल हो चुका है। ऐसे में कई बच्चों को जन्म देने का प्रमाण भी घट चुका है। आज भारत के प्रजनन दर को देखा जाए तो 2-3 है, जबकि भारत की सन् 1950 से पूर्व की स्थिति शायद ही ऐसी रही हो। आजतक की साईट पर 'दीपू राय' ने 24 जुलाई 2020 को रिपोर्ट लिखी जिसमें 'भारत में 30 करोड़ की कमी को दिखाया गया है।'

यहाँ देखा जा सकता है कि अब धर्मसत्ता से ज़्यादा पूँजीवादी तंत्र या व्यवस्था के प्रभाव के कारण इसमें कमी आ रही है। इस व्यवस्था के कारण आज एक वर्ग के पास सब सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो वहीं दूसरा वर्ग अपने रोजी-रोटी को जुटा पाने में सक्षम नहीं हुआ है। ऐसे में राज्यसत्ता की आलोचना महत्त्वपूर्ण हो जाती है। कँवल भारती की अपनी यहाँ सीमाएँ हैं, वे इसमें राज्यसत्ता की अपेक्षा ज़्यादा धर्मसत्ता की आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं। पर असल में राज्यसत्ता ही आज के समय में ज़्यादा दोषी दिखाई देती है। कँवल भारती की यह बात, 'राज्य-सत्ता वास्तव में जन्म नियंत्रण की पक्षधर है, तो उसकी विरोधी धर्म-सत्ता समानातंर रूप से कैसे सक्रिय है?' सही प्रतीत होती है। ऐसे में पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को बदले बिना यह संभव नहीं है। न ही शिक्षा एवं आर्थिक सुधार से दूर भाग कर इस समस्या का हल हो पाएगा। यह बात कँवल भारती ने स्पष्ट कर दी है।

[332] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 157

4.1.2.4 माझी जनता : साहित्य और विमर्श

'माझी जनता' के कँवल भारती के संपादन में जो अंक निकलें हैं उनमें दलित साहित्य को भी स्थान मिला है। वह साहित्य क्या रहा, कैसे रहा, इस पर बात होनी चाहिए, जिससे कँवल भारती की दूर दृष्टि एवं साहित्य के प्रति उनका दृष्टिकोण सामने आ सके। साप्ताहिक की अपनी सीमाएँ होती हैं। वहीं दलित साप्ताहिक हो और उसे विश्व परिदृश्य को पाठकों के सामने लाने के साथ ही साहित्य को भी स्थान देना हो, तो यह कार्य अपने-आप में बहुत परिश्रम का कार्य हो जाता है। आज दलित पत्रिकाएँ जो प्रकाशित हो रही है वे काफ़ी हैं। पर उनके साहित्यिक मूल्यांकन की बात की जाए तो वे ज़्यादातर नव-निर्मित रचनाओं या कहे नए रचनाकारों के साहित्य को अपनी पत्रिका में स्थान देकर अपने परिश्रम की इतिश्री समझ लेते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। 'माझी जनता' ने न सिर्फ़ वैकल्पिक पत्रकारिता को खड़ा करने का प्रयास किया साथ ही साहित्य को भी अपने साप्ताहिक में स्थान देकर अपनी सीमाओं का विस्तार किया है। 'पेरियार ललई सिंह की स्मृति में', 'डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि', 'आदि कवि वाल्मीकि के जनवादी मूल्य', 'नाटक का प्रभाव लोगों पर अधिक पड़ता है' (माता प्रसाद), 'दलित-मुक्ति के सूत्रधार स्वामी अछूतानंद का समाधि स्थल कायर और अचेतन समाज की बेशर्म उपेक्षा का शिकार' (के. नाथ), 'दलित चेतना के मायने सिर्फ़ साहित्यिक विमर्श नहीं है' (रामनाथ शिवेन्द्र), 'सर मैं तो ब्राह्मण हूँ' (मोहनदास नैमिशराय) आदि को प्रकाशित किया गया। जो लेख, कहानी, आत्मकथा-अंश, इतिहास आदि रूपों में हैं।

'ललई सिंह यादव' की स्मृति पर संपादकीय में कँवल भारती उन्हें याद करते हैं। उनके रचना संसार को, उनके संघर्ष को पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करते हैं। यह तो स्पष्ट रूप से हिंदी साहित्य के इतिहास में देखा जा सकता है कि दलित आंदोलन के लिए संघर्षरत किसी भी रचनाकार, कवि, नाटककार, संपादक के लिए कोई जगह नहीं दी गई। नामोल्लेख

तक के लिए हिंदी साहित्य में जगह नहीं मिली है। यह बहुत ही एकांगी इतिहास लेखन रहा है। कँवल भारती अपने साप्ताहिक में जब 'पेरियार ललई सिंह' को याद कर रहे हैं तब वे हिंदी दलित साहित्य के आधार स्तंभों को सामने ला रहे हैं जिन्हें साहित्य इतिहास में जगह नहीं दी गई।

आज जितनी पत्रिकाएँ आ रही हैं उनमें इस बात की कमी दिखाई देती हैं। वे अपने साहित्यिक स्तंभों को भूलते जा रहे हैं। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर', चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु एवं पेरियार ललई सिहं यादव ये वे नाम हैं जिनके आधार पर आज का हिंदी दलित साहित्य खड़ा हुआ है। ललई सिंह पर कँवल भारती लिखते हैं – "पेरियार ललई सिंह दलित साहित्य के जिज्ञासु युग के मज़बूत स्तम्भ थे। पिछड़े वर्गों में यादव जाति में वह संभवतः पहले प्रबुद्ध व्यक्ति थे, जिन्होंने डॉ. आंबेडकर के महत्त्व को समझा था और जो हिंदू धर्म को लात मारकर बुद्ध की शरण में चले गये थे। वह जब तक जिये बुद्ध-पुत्र बनकर जिये, और उन्होंने आंबेडकर मिशन में सच्चे योद्धा की भूमिका निभायी।"[333] इतना ही नहीं उनकी किताबों को भी उद्धृत करते हैं- "उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ दलितो में, खास रूप से पिछड़े वर्गों में जबरदस्त मुहिम चलायी। शोषितों पर धार्मिक डकैती, शोषितों पर राजनैतिक डकैती, अंगुलीमाल नाटक, संत माया बलिदान नाटक, शम्बूक वध नाटक, एकलव्य नाटक, नाग यज्ञ नाटक, सामाजिक विषमता कैसे समाप्त हो, उनकी क्रांतिकारी पुस्तकें हैं, जो हिंदी दलित साहित्य में कालजयी स्थान रखती हैं।"[334]

वे यह बात भी रेखांकित करने से नहीं चुकते कि "जहाँ दलित साहित्य अकादमियाँ भी चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु और ललई सिहं यादव को भूल चुकी हैं, और दलित लेखक एक-दो किताबें लिखकर पुरस्कार लेने की दौड़ लगा रहे हैं..."[335] इस बात की अनदेखी नहीं की

[333] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 81
[334] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 81
[335] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 82

जा सकती। दलित साहित्य को विस्तृत करने एवं मज़बूत आधार देने के लिए इनका मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। इन्हें नज़रअंदाज करने से हिंदी दलित साहित्य का स्पष्ट रूप सामने नहीं आता है। कँवल अपने साप्ताहिक में दलित रचनाकारों को स्थान देकर, उनका मूल्यांकन कर, दलित साहित्य को ही विस्तृत एवं सशक्त बनाने का काम करते हुए दिखाई देते हैं।

'डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना-दृष्टि' इस शीर्षक के अंतर्गत कँवल ने रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि को सामने लाने का प्रयास किया है। तुलसीदास पर जो रामविलास शर्मा ने लिखा है, उसी को केंद्र में रखकर यह लेख लिखा गया है। यहाँ कँवल भारती की बात पर ध्यान देना आवश्यक है। 'हिंदी साहित्य के किसी भी द्विज स्तंभ के ढ़हने का कोई दुख दलित लेखकों को नहीं होता है।' इस संदर्भ में वे लिखते हैं – "इसका कारण है, द्विज लेखकों का रचनाकर्म, जो ऊपर से कितना ही मार्क्सवादी, जनवादी और प्रगतिवादी दिखायी दे, पर उसके केंद्र में शत-प्रतिशत ब्राह्मणवाद होता है।"[336] जैसा कि इस बात से ही जातिवादी चिंतन लग सकता है। पर क्या सच में यह जातिवादी चिंतन है। दरअसल जो प्रमाण वे इस बात को सिद्ध करने के लिए इस लेख में देते हैं; रामविलास शर्मा के संदर्भ में, उससे तो यह बात सच जान पड़ती है। जिसे कुछ इस प्रकार से देखा जा सकता है।

डॉ. रामविलास शर्मा के बारे में कँवल लिखते हैं – "डॉ. रामविलास शर्मा भी ऐसे ही आलोचक थे, जिनका मूल ध्येय येन-केन प्रकारेण ब्राह्मणवाद को ही स्थापित करना था।"[337] तुलसीदास, शर्मा के सबसे प्रिय कवि रहे हैं। 'परम्परा का मूल्यांकन' शर्मा की एक महत्त्वपूर्ण किताब रही है। उसी को आधार बनाकर कँवल उनकी आलोचना दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं। रामविलास शर्मा इस किताब में लिखते हैं कि "समाजवादी संस्कृति पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ती, वह उसे आत्मसात् करके आगे बढ़ती है। अभी हमारे देश की निरक्षर निर्धन

[336] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 328
[337] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 328

जनता नये और पुराने साहित्य की महान् उपलब्धियों के ज्ञान से वंचित है। जब वह साक्षर होगी, साहित्य पढ़ने का उसे अवकाश होगा, सुविधा होगी, तब व्यास और वाल्मीकि के करोड़ों नये पाठक होंगे।"[338] इस बात को कँवल भारती विश्लेषित करते हुए कुछ सवाल सामने रखते हैं। जो इस प्रकार हैं- "यानी, जब साक्षरता बढ़ेगी, तो पाठक भी पैदा होंगे तो व्यास और वाल्मीकि के, जो सामंती मूल्यों के कवि थे। ...जब परम्परा के प्रति इतना जबरदस्त मोह हो, तो पुरानी संस्कृति छोड़ी भी कैसे जा सकती है? यदि समाजवादी संस्कृति पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ेगी, तो समाजवाद की धारा ही कैसे विकसित होगी? पुरानी संस्कृति तो सिरे से ब्राह्मणवादी और सामंतवादी है, समाजवाद की एकदम उलट। उसे आत्मसात करके चलने का क्या मतलब है? यही की वर्णव्यवस्था को न छोड़ा जाय।"[339]

कँवल भारती के इन सवालों में ही बहुत कुछ छुपा हुआ है। रामविलास शर्मा यहाँ उसी पुरानी संस्कृति के मोह में बंधे हुए दिखाई देते हैं और जनता इसी ओर उन्मुख होगी यह आशा वे व्यक्त करते हैं। पर दलितों के दृष्टिकोण से यह बात देखी जाए तो यह पुरानी संस्कृति उनके लिए शोषण, दमन और पीड़ाओं का इतिहास रहा है। वहीं समाजवाद में एक आशा की किरण दिखाई देती है। क्यों व्यास और वाल्मीकि शर्मा को याद आने लगे? डॉ. शर्मा को ही कँवल उद्धृत करते हैं – "इन दो कवियों ने अपने काव्यों द्वारा, उनके (डॉ. शर्मा) अनुसार, राम और कृष्ण – इन दो महापुरुषों को ऐसी लोकप्रियता प्रदान की कि उन्होंने समस्त वैदिक देवताओं को हटाकर, और बौद्ध मत का निर्मूल करके, इन्हीं को उपासना का आलम्बन बना दिया।"[340] (परम्परा का मूल्यांकन, पृ. 19)। सिर्फ़, इस बात को आधार बनाकर शर्मा जी पर ब्राह्मणवाद का आरोप कँवल लगाते हैं? उत्तर है- नहीं। वे ऐसे कई और उदाहरण शर्मा की ही उपरोक्त किताब से देते हैं।

[338] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ. सं. 15
[339] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 329
[340] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 330

तुलसीदास उनके प्रिय कवियों में रहे हैं इस बात का उल्लेख पहले कर चुके हैं। इसी संदर्भ में वे तुलसीदास की छवि को कुछ इस प्रकार रखते हैं, जो कँवल उद्धृत करते हैं – "तुलसी के राम दीनबंधु हैं। इन दीनों में ग़रीब हैं, समाज के दलित प्राणी हैं, स्त्रियाँ हैं, नीच समझे जानेवाले लोग हैं। तुलसी की भक्ति का सामाजिक उत्पीड़न से घनिष्ठ संबंध है। वह राजाओं, सामंतों, धनी लोगों के सामने हाथ पसारनेवालों में आत्मसम्मान का भाव जाग्रत करते हैं। उनसे कहते हैं, राम से माँगो, वह सब कुछ देगा, मनुष्य के आगे हाथ मत फैलाओ। राम का भरोसा होने से उन्हें मनुष्य की दासता से मुक्ति मिल जाती है।"[341] (परम्परा का मूल्यांकन, पृ. सं. 66) यहाँ कँवल अपने सवाल रखते हैं। वे लिखते हैं- "यह बात कबीर और रैदास के बारे में तो ठीक हो सकती है कि उनकी भक्ति का सामाजिक उत्पीड़न से घनिष्ठ संबंध है। पर, तुलसी के बारे में यह कैसे सही हो सकती है? तुलसी को दीन-दुखियों का कवि बताना तो साजिश के सिवा कुछ हो ही नहीं सकता। याचना चाहे मनुष्य से की जाय और चाहे राम से, वह आत्मसम्मान का भाव कैसे हो सकता है?...मार्क्सवादी विचारक वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत कैसे भूल गया?"[342]

यह सवाल महत्त्वपूर्ण है। दलित संदर्भ में रामविलास शर्मा की यह दृष्टि पूर्णतः ब्राह्मणवादी दिखाई देती है। मार्क्सवादी होने बावजूद वे तुलसी के चिंतन के गहरे अर्थबोध को स्पष्ट कर उसकी समीक्षा न कर उसके समर्थन में चले जाते हैं। तुलसी की यह छवि उभारना अपने चिंतन पर ही सवाल खड़े करता है। हाँ, यह भी उतना ही ज़रूरी है कि वे पूर्णता नकारे भी नहीं जा सकते हैं। क्योंकि तुलसी ने तत्कालीन परिस्थिति में किसान, मज़दूरों की स्थिति को उजागर तो किया है। पर यह भी उतना ही सच है कि वे दलित एवं स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी ही रहे हैं। जिसे दलित चिंतन में तुलसीदास को सामंतवादी, ब्राह्मणवादी कवि के रूप में ही देखा जाता है। अतः इसी दृष्टिकोण पर, रामविलास शर्मा का चिंतन ब्राह्मणवादी दिखाई देता

[341] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 330
[342] कँवल भारती – माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 330-331

है, जहाँ कबीर और रैदास अपने जीवन की यातनाओं को, जातिगत भेदभाव को, सामाजिक-आर्थिक पक्ष को उजागर करते हैं और वहीं वे सामंतवादी एवं ब्राह्मणवादी ताकतों से संघर्ष करते हुए देखे जा सकते हैं। इन निर्गुण संतों को रामविलास शर्मा की दृष्टि देख नहीं पा रही है। जबकि मार्क्सवादी विचारक होने के कारण उन्हें यह चिंतन तो और भी स्पष्ट रूप में दिखाई दे सकता है। शायद इसी कारण, रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि में ब्राह्मणवादी चिंतन रहा है और इसे कँवल भारती प्रमाण रूप में प्रयोग करते हैं।

यहाँ एक बात और है जो कँवल सामने लाते हैं – "आमतौर पर दलित लेखकों पर तुलसीदास को लेकर पूर्वाग्रह पालने का आरोप लगाया जाता है, पर तमाम ब्राह्मण और द्विज लेखकों का तुलसीवादी होना क्या मायने रखता है? क्या यह उनका जातिवादी होना नहीं है?"[343] हिंदी साहित्य जगत में इस बात को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। रामविलास शर्मा भी उनमें से एक हैं जिन्हें कँवल इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। मार्क्सवादी चिंतक होने के बावजूद आप समाजवादी होने के लिए पुरानी संस्कृति से नाता तोड़ने में नहीं बल्कि उसका साथ जोड़कर चलने में, उसे आत्मसाथ करके ही आगे बढ़ने की बात करते हैं। यह जब बात करते हैं, तब आप के पास भारतीय समाज, उसके इतिहास की जानकारी होती है फिर भी आप उसमें एक बहुत बड़े वर्ग के शोषण को देख नहीं पा रहे हैं।

कँवल के संपादकीय और 'माझी जनता' का साहित्य के प्रति दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट नज़र आता है। 'माझी जनता' साप्ताहिक न सिर्फ़ राजनीति बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों का दलित दृष्टिकोण से मूल्यांकन कर वैकल्पिक मीडिया का एक उत्तम उदाहरण पेश करता है। यह आज के समय में बहुत ज़रूरी भी लगता है, जहाँ मुख्यधारा की मीडिया दलित समाज को, देश की किसी भी समस्या पर अपने विचार या मत रखने के लिए न अवसर देता है, न जानने के लिए इच्छुक है और ना ही आवश्यक समझता है।

[343] कँवल भारती - माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 332

'माझी जनता' के अलवा भी कँवल भारती लगातार दलित, बहुजन राजनीति पर अपनी क़लम चलाते रहे हैं। कांशीराम एवं मायावती पर भी उनके लेख एवं संपादित किताबें मौजूद हैं। बहुजन राजनीति पर कँवल के विचार एवं लेख जो दलित पत्रकारिता के अंतर्गत आते हैं उनका मूल्यांकन करना यहाँ आवश्यक है। जिससे कँवल के पत्रकारिता के स्वरूप की और स्पष्ट छवि सामने उपस्थित हो सकती है।

4.2 बहुजन आंदोलन एक मूल्यांकन :

दलित आंदोलन की एक धारा 'बहुजन आंदोलन' की है। बहुजन आंदोलन सामाजिक परिवर्तन से शुरू होकर राजनीतिक आंदोलन बना। कांशीराम जी ने इस धारा की शुरूआत की है। वे दलित राजनीति में ऐसे समय आते हैं जब दलित नेताओं का पूर्णतः अभाव है। यह समय भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (आर. पी. आई) के पतन या कहें टुकडों में बिखरने का समय है। आर.पी.आई. कई भागों में विभाजित हो गयी जिसके कारण दलित समाज में सामाजिक एवं राजनीति परिवर्तन के लिए सक्षम विकल्प रहा ही नहीं। न उस समय कोई सर्वमान्य पार्टी रही; न नेता। ऐसे समय सामाजिक परिवर्तन के साथ कांशीराम का उदय होना दलित आंदोलन में एक नयी आशा की किरण थी।

कँवल भारती ने कांशीराम की बहुजन राजनीति पर कई लेख पत्र-पत्रिकाओं में लिखें हैं और इन्हीं लेखों को मूल्यांकन के केंद्र में रखकर, कँवल भारती ने एक पत्रकार के रूप में बहुजन राजनीति का जो मूल्यांकन किया है, उसके विश्लेषण एवं मूल्यांकन का यहाँ प्रयास किया जाएगा।

4.2.1 कांशीराम :

आज मुख्यधारा की पत्रकारिता समाज को चेतना संपन्न बनाने की ओर ध्यान देती हुई दिखाई नहीं दे रही है। आज़ाद भारत के लिए पत्रकारिता ने प्रमुख भूमिका का निर्वहण किया है। बग़ैर इस पत्रकारिता के स्वतंत्र भारत की कल्पना करना बेईमानी होगी। अब इसी आज़ाद भारत में पत्रकारिता डॉ. भीमराव आंबेडकर के शब्दों को उदाहरण स्वरूप लेकर कहें तो, 'वह व्यवसाय से व्यापार बन गया।' इस व्यापार में फिर नैतिक-अनैतिक जैसे शब्द किसी महत्त्व के नहीं रह जाते हैं। हाशिए के समाज की आवाज़ वह बनेगी, उससे यह कल्पना करना स्वयं हस्यास्पद लग रहा है। आज़ाद भारत के पूर्व भी मुख्यधारा की पत्रकारिता ने हाशिए के समाज के प्रश्नों की अनदेखी की है और आज तक वह बदस्तूर जारी है। ऐसी व्यापार बनी पत्राकारिता की तीखी आलोचना डॉ. आंबेडकर करते हैं। वे 'रानाडे, गांधी और जिन्ना' में लिखते हैं – "कभी भारत में पत्रकारिता एक व्यवसाय था। अब वह व्यापार बन गया है। वह तो साबुन बनाने जैसा है, उससे अधिक कुछ भी नहीं। उसमें कोई नैतिक दायित्व नहीं है। वह स्वयं को जनता की ज़िम्मेदार सलाहकार नहीं मानती। भारत की पत्रकारिता इस बात को अपना सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि कर्तव्य नहीं मानती कि वह तटस्थ भाव से निष्पक्ष समाचार दे, वह सार्वजनिक नीति के उस निश्चित पक्ष को प्रस्तुत करे जिसे वह समाज के लिए हितकारी समझे, चाहे कोई कितने भी उच्च पद पर हो, उसकी परवाह न किये बिना किसी भय के उन सभी को सीधा करे और लताड़े, जिन्होंने गलत अथवा उजाड़ पथ का अनुसरण किया है। उसका तो प्रमुख कर्तव्य यह हो गया है कि नायकत्व को स्वीकार करें और उसकी पूजा करे। उसकी छत्रछाया में समाचार-पत्रों का स्थान सनसनी ने, विवेक-सम्मत मत का विवेकहीन भावावेश ने, उत्तरदायी लोगों के मानस के लिए अपील ने, दायित्वहीनों की भावनाओं के लिए अपील ने ले लिया।"[344]

[344] डॉ. बी. आर. अंबेडकर – बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय भाग -1, पृ. सं. 273

क्या इस बात को माना जा सकता है कि अब पत्रकारिता का यह रूप नहीं है, वह नायक पूजा नहीं करती, वह लोकतंत्र का आधार बन कर काम कर रही है, उसे मज़बूती प्रदान कर रही है अपने कर्तव्य के निर्वहण से। इन प्रश्नों का उत्तर कोई भी संवेदनशील इंसान हाँ में नहीं दे सकता है। मुख्यधारा में कोई एक व हाशिए के समाज की पत्रकारिता एवं पत्रकार इस बात के अपवाद हैं। इन अपवादों के बल पर ही हम कह सकते हैं कि अब भी भारत की पत्रकारिता अपने कर्तव्यों के प्रति ईमानदार है। वैसे यहाँ कँवल भारती के संदर्भ में इस बात का मूल्यांकन करना मुख्य उद्देश्य है। कँवल भारती ने बहुजन राजनीति एवं कांशीराम पर जो लिखा है वह समान्य रूप से, सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर दिखाई देता है।

कांशीराम का राजनीति में प्रवेश, कँवल भारती इस रूप में रेखांकित करते हैं – "भारतीय राजनीति में कांशीराम का प्रवेश एक धूमकेतु की तरह हुआ था। लोकतंत्र में वंचितों की भागीदारी का प्रश्न जिस तरह संपूर्ण राजनीतिक चिंतन का केंद्र बिंदु बना, उसका श्रेय भी कांशीराम के सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन को ही जाता है। यथास्थितिवाद के ख़िलाफ़ उनका आंदोलन सचमुच क्रांति बन गया था।"[345] कँवल भारती उपरोक्त उद्धरण में कांशीराम को 'धूमकेतु' की उपमा दे रहे हैं। भारतीय राजनीति में कांशीराम का समय बहुत अल्प रहा है। पर जितना रहा वह बहुत ही प्रभावी रहा, यह बात भी यहाँ परोक्ष रूप से उद्घाटित हो जाती है।

कँवल भारती ने 'कांशीराम के दो चेहरे' यह लेख लिखकर बहुजन राजनीति में कांशीराम जी के महत्त्व के साथ-साथ सीमाओं का भी रेखांकन किया है। जिस पर विचार किया जाना चाहिए। कँवल मानते हैं कि कांशीराम के भारतीय राजनीति में दो चेहरे थे। एक, जो सामाजिक परिवर्तन का चेहरा है और दूसरा, उन्हीं के शब्दों में – 'जो सत्ता की राजनीति करने वाला है, जो यथास्थितिवादी दलों से समझौते करके चलता है और जो उनके अपने ही आंदोलन का विरोधी है।' यह जो दूसरा चेहरा रहा है वह दलित चिंतन के लिए बेहद चिंतनीय

[345] कँवल भारती – कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. निवेदन

चेहरा रहा ऐसा वे मानते हैं। इस बात के वे कारण देते हैं। साथ ही सामाजिक परिवर्तन के चेहरे ने क्या कुछ अर्जित किया इस बात को भी रेखांकित करते हैं।

सन् 1981 से मार्च 1984 तक कांशीराम सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। इसी संघर्ष ने जो उपलब्धियाँ अर्जित की उन्हें कँवल भारती कुछ इस तरह रखते हैं, '1981 से मार्च 1984 तक कांशीराम ने ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में पिछड़े समुदायों को जाग्रत करने के लिए व्यापक कार्यक्रम चलाए, जिनमें साइकिल मार्च, जन-संसद और संक्षिप्त राजनीतिक कार्यवाही शामिल है। डी.एस.-4 के माध्यम से ही उन्होंने उत्तर प्रदेश में शराब विरोधी आंदोलन चलाया था। जाति के प्रश्न को जोर-शोर से उठाया, और उसे धारधार बनाया, दलितों में अपने वोट के प्रति जागरूकता, पिछड़ों की भागीदारी का जो आंदोलन कांशीराम ने चलाया, उसी के परिणाम स्वरूप मंडल आयोग की सिफारिशें लागू हो सकीं और दंगों पर नियंत्रण भी उनकी बड़ी उपलब्धि रही है।' 'दंगों पर नियंत्रण' इस बात को उदाहरण स्वरूप कँवल लिखते हैं– "फैजाबाद का उदाहरण उल्लेखनीय है, जहाँ बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद भड़के दंगों में यादवों और कुर्मियों ने मुसलमानों के पक्ष में लामबंद होकर साम्प्रदायिक ताकतों का मुकाबला किया था।"[346] इसके पीछे कांशीराम के सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन को कँवल भारती मानते हैं। जिसने दलितों, पिछड़ों एवं मुसलमानों में राजनीतिक ध्रुवीकरण पैदा किया और इसलिए इस आंदोलन ने साम्प्रदायिक ताकतों की साजिशों को कामयाब होने से रोका। सूक्ष्म दृष्टिकोण से बहुजन राजनीतिक को देखा गया है ऐसा यहाँ प्रतीत होता है।

इसे सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत देख सकते हैं। एक जो मुख्य उपलब्धि कँवल बताते हैं वह यह है कि "दलित चेतना के जो सवाल सदैव हाशिए पर रहते थे और कभी भी राष्ट्र चिंतन के केंद्र में नहीं आये थे। वे केंद्र में आये और राष्ट्रीय चिंतन के विषय बने।

[346] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 13

भारतीय राजनीति में डॉ. आंबेडकर भी कांशीराम के बाद ही केंद्र बिंदु बने। यहाँ तक कि भाजपा और दूसरे हिंदू संगठनों ने भी डॉ. आंबेडकर की पूजा ऐसी आरंभ की, जैसे वह उनके आराध्य हों।”[347] यहाँ कांशीराम की उपलब्धियों को गिनाते हुए कँवल भारती अतिवाद का शिकार हुए हैं, ऐसा प्रतीत होता है। पहली बात तो यह कि दलित चेतना के सवाल को डॉ. आंबेडकर ने जिस रूप में राष्ट्रीय चिंतन का विषय बनाया, उसके प्रभाव को दिन-ब-दिन आए गांधी जी के व्यवहार परिवर्तन में देखा जा सकता है। गांधी जी और काँग्रेस ने इस बात की बहुत कोशिश की कि दलित समाज उनके साथ खड़ा रहे उनकी सत्ता की सीढ़ी बनता रहे। क्या ये जो परिवर्तन है दलितों के प्रति राष्ट्रीय नहीं है? जहाँ कांशीराम के लिए डॉ. आंबेडकर वोट बैंक के रूप में सबसे कारगर साबित हो सकते हैं तो ऐसी हालात में दिखावे के लिए ही सही किए गए अन्य पार्टियों के प्रयास को आधार मानकर डॉ. आंबेडकर भारतीय राजनीति के केंद्र बिंदु बन गए कहा जाना अपने-आप में अतिवाद दिखाई देता है। पर अन्य राजनीतिक पार्टियाँ भी राजनीतिक लाभ के लिए डॉ. आंबेडकर को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने लिए साधन के रूप में या वोट बैंक के रूप में देखने लगे इस आशय से वे भारतीय राजनीति के केंद्र बिंदु बन गए कहने का अर्थ है तो कँवल यहाँ सही दिखाई देते हैं।

कांशीराम ने डॉ. बी. आर. आंबेडकर की विचारधारा एवं दर्शन के प्रभाव में आकर, उनके विचारों से प्रेरणा पाकर सामान्य जन तक उनके क्रांतिकारी विचारों को पहुँचा कर राजनीतिक चेतना संपन्न जन-समुदाय बनाने का कार्य किया है, ऐसा कहा जा सकता है। मूलतः दलित समाज स्वतंत्र भारत में अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद, उस राजनीतिक सत्ता को प्राप्त कर अपने लिए विकास के रास्ते खोलने का प्रयास करता रहा है। महाराष्ट्र की आर. पी. आई. पार्टी भी जो कि डॉ. आंबेडकर की कल्पना से प्रेरित होकर बनी और सिर्फ़ राजनीतिक सत्ता पाने की चाह में नष्ट हो गयी क्योंकि वे भूल गए कि राजनीति सत्ता से पहले

[347] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 14

सामाजिक परिवर्तन के रास्ते से गुज़रना ज़रूरी है। यहाँ नष्ट हो गई इसका अर्थ यह है कि वे अब दलितों के सामाजिक उत्थान के लिए एक विकल्प के रूप में नहीं रही जिस पर विश्वास किया जा सके। कांशीराम की राजनीति स्थूल रूप में राजनीतिक सत्ता को बहुजनों के हाथों में सौंपने के लिए किए गए प्रयास का नाम है।

कांशीराम की राजनीति में सत्ता प्राप्त करने के लिए जो नीतियाँ थीं वे कँवल भारती के दृष्टिकोण से कैसी थीं, उनसे बहुजन राजनीति का भविष्य कैसे प्रभावित हुआ या हो सकता है इन बातों को देखा-जाना ज़रूरी लगता है। वे इसी लेख में इन बातों को रेखांकित करते हैं। वे कांशीराम की राजनीति को जोड़-तोड़ की राजनीति मानते हैं। कांशीराम की राजनीति सत्ता के लिए जोड़-तोड़ की राजनीति रही यह आरोप अपनी सीमाओं में ठीक लगता है। पर यही सच है यह कहना बहुत मुश्किल है। वैसे कँवल भारती ने इस बात का कहीं दावा नहीं किया है कि वे जो बात लिख चुके हैं वही सही है। कांशीराम की बहुजन राजनीति पर लिखे लेखों पर भी वे ऐसा दावा नहीं करते हैं। पर, उनकी इस बात से इतर भी बहुत कुछ हो सकता है। कांशीराम की जहाँ जोड़-तोड़ की राजनीति दिखाई दे रही है वहाँ क्या हम यह कह सकते हैं कि कांशीराम राजनीति सत्ता के लिए उन सत्ताधारी पार्टियों का ही उपयोग करने लगे जो सत्ता पर काबिज थे और जितना हो सके बहुजन समाज के लोगों के हाथ में सत्ता थामने की कोशिश करते गए। उदाहरण के लिए मायावती को मुख्यमंत्री बनाना ऐसे समय जब उनके विधायक संख्या की दृष्टि से कम थे। पर सिर्फ़ और सिर्फ़ राजनीतिक सत्ता के लिए किया गया संघर्ष कुछ विशेष लोगों को ही सक्षम बना सकता है, सामाजिक परिवर्तन के अभाव में एक बहुत बड़े दलित, शोषित समाज का उत्थान होना मुश्किल हो जाता है । यही कांशीराम जी की राजनीति के साथ हुआ है। इस बात को नंजर-अंदाज कँवल भारती नहीं करते हैं।

कँवल भारती, कांशीराम की राजनीति से क्या अपेक्षाएँ रखते थे, इस बात को समझने के लिए कुछ उद्धरण देखने ज़रूरी हैं। वे 'कांशीराम के दो चेहरे' में कांशीराम का काँग्रेस के

साथ हाथ मिलाना दलित आंदोलन का सबसे आत्मघाती कदम मानते हैं और मुलायम सिंह यादव के साथ गठबंधन को ठीक मानते हैं। उनके दृष्टिकोण में, 'भाजपा और काँग्रेस अंततः ब्राह्मणवादी पार्टियाँ हैं।' इसलिए वे यह प्रश्न करते हुए, विकल्प भी दिखाने की कोशिश कर रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। वे लिखते हैं– "हालाँकि, मैं जाति-संघर्ष का पक्षधर हूँ, पर वर्ग की सच्चाई को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यदि कम्यूनिस्टों के प्रति दूराग्रहों को त्याग कर उनसे संवाद स्थापित किया जाये, तो दलित आंदोलन को उससे लाभ ही होगा, हानि कुछ नहीं होगी।... सवाल यह विचारणीय क्यों नहीं है कि जिस मनुवाद और ब्राह्मणवाद के विरुद्ध कांशीराम का संघर्ष है, उसमें उनकी भाजपा और काँग्रेस सहायक हो सकती है, या वामपंथी और समान विचार वाली अन्य पार्टियाँ उनकी ज़्यादा मदद कर सकती हैं? भाजपा और काँग्रेस तो अंततः ब्राह्मणवादी पार्टियाँ ही हैं।"[348]

यहाँ लगता है कँवल भारती का यह विकल्प अपने आप में बहुत सशक्त न भी कहे तो भी मज़बूत ज़रूर है। वहीं एक बात और जोड़ी जा सकती है वह यह कि जिस विकल्प का सुझाव वे दे रहें हैं और इसके लिए जो आधार उन्होंने लिया वह उचित नहीं लगता है। क्योंकि वे कांशीराम के संघर्ष के लिए भाजपा और काँग्रेस को सहायक मान कर यह विकल्प रखते हैं। शायद ही सामाजिक परिवर्तन के लिए जिसमें मनुवाद और ब्राह्मणवाद दोनों का उन्मूलन शामिल हैं इसमें कांशीराम भाजपा और काँग्रेस को कभी सहायक माने होंगे। यह इतनी गूढ़ बात नहीं है जो कांशीराम जैसे व्यक्तित्व ने समझी न हो। यहाँ कँवल भारती का अतिवाद उजागर होता है। पर विकल्प जो है वामंपथी और समविचार वाली पार्टियों का देते हैं। वे भी कभी जाति के उन्मूलन के लिए आगे नहीं आ पाये हैं। कांशीराम ने सिर्फ़ राजनीतिक सत्ता पाने के लिए ये राजनीतिक दावपेंच खेले हैं। वे पहले नेता हैं जो अपनी पार्टी और समाज के लिए सतत प्रयोग करते जा रहे थे जिसमें बहुजन समाज के उत्थान की प्रबल इच्छा ही परोक्ष

---

[348] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 16

रूप से दिखाई देती है। यहाँ कांशीराम चूक सकते हैं पर उन्हें अपने संघर्ष में भाजपा और काँग्रेस का सहायक मानने वाले ठहरा देना अपने आप में अचूक नहीं दिखाई देता है।

कँवल भारती के कई लेख हैं जो बहुजन राजनीति पर लिखे गए हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने सिर्फ़ नकारात्मक ही लिखा है। सकारात्मक भी लिखा है। 'बसपा ही क्यों?' लेख में इस बात के प्रमाण मिल जाएँगे। वे बसपा के पक्ष में कुछ इस तरह लिखते हैं – "दासों को दासता का बोध कराने और उससे मुक्ति के लिए संघर्ष करने की चेतना सही मायने में बसपा के सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति के कार्यक्रमों ने ही पिछड़े वर्गों में पैदा की।... इसी चेतना का परिणाम है कि अचानक डॉ. आंबेडकर भारतीय राजनीति के हीरो हो गये। काँग्रेस सहित सभी राजनीतिक पार्टियाँ, यहाँ तक कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और उसकी समर्थक पार्टियाँ भी डॉ. आंबेडकर के नाम का जाप ही नहीं करने लगीं, बल्कि कौन कितना आंबेडकर भक्त है, इस दिशा में शक्ति –प्रदर्शन भी करने लगीं। महाराष्ट्र सरकार ने डॉ. आंबेडकर की रचनाओं के प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, तो केंद्र सरकार ने उसे सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित कराने की योजना बनायी। ...इसी अवधि (1991) में, संसद हाल में डॉ. आंबेडकर का चित्र लगाया गया और उनकी स्मृति में डाक टिकट तथा एक रुपये का सिक्का जारी किया गया।"[349] क्या कुछ बसपा के प्रभाव के कारण भारतीय राजनीति में घटित हुआ इस बात को उपर्युक्त उद्धरण में देखा जा सकता है। यह जब कँवल भारती लिख रहें हैं तब लगता है बसपा के कोई समर्थक ही लिख रहे हों। पर यहाँ अतिवाद एवं कुछ पहलुओं की अनदेखी की गई ऐसा जान पड़ता है। यह बसपा के प्रभाव में लिखा गया लेख लगता है। जिन बातों की अनदेखी की गई है उनमें से एक महाराष्ट्र की राजनीतिक-सामाजिक आंदोलन की गति। दलित पँथर और आर. पी. आई. ने महाराष्ट्र में काफ़ी गहरा प्रभाव छोड़ा है। जिसके कारण डॉ. आंबेडकर का संपूर्ण साहित्य प्रकाशित करने की माँग को मंजूर किया

[349] कँवल भारती – कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 26-27

गया। यह स्थिति महाराष्ट्र की रही इसे प्रमाण रूप में शरणकुमार लिंबाळे की किताब 'रिपब्लिकन पक्ष वास्तव आणि वाटचाल' इसमें देखा जा सकता है। सन् 1984 में बसपा को स्थापित कर वह राजनीति में आ चुकी थी। उत्तरप्रदेश में बसपा की राजनीति 1991 तक जन-जन तक अपना प्रभाव जमाने की कोशिश कर रही थी।

कँवल भारती बसपा के बारे में 'दूसरी आज़ादी की लड़ाई' लेख में यह लिखते हैं- "यब बात भले ही किसी की समझ में अभी नहीं आये, परंतु यह सच्चाई है कि बहुजन समाज पार्टी की राजनीति सत्ता की नहीं, बल्कि दलित-स्वाधीनता की राजनीति है। दलित समुदाय के लोग उसके अंदर अपनी मुक्ति के लिये संगठित हुए हैं। हजारों सालों की दासता की पीड़ा ने ज्वालामुखी का रूप ले लिया है और उसे अब फटने से नहीं रोका जा सकता।"[350] यह बात वे 1993 में लिख रहे हैं। जब कांशीराम की राजनीति का प्रभाव सत्ताधारी पार्टियों पर पड़ रहा था तो वहीं बहुजन समाज दिन-ब-दिन बसपा में शामिल हो रहा था। जिससे सत्ताधारी वर्ग चिंतित था। कांशीराम के इस समय की राजनीति काफ़ी प्रभावी रही जिसके कारण भाजपा जैसी पार्टी भी बसपा का मुख्यमंत्री बनाने पर सहमति जाता देती है।

कँवल सत्यता के साथ बहुजन राजनीति पर लगातार उस समय लेखन कार्य कर रहे थे। उन्हें बसपा की राजनीति पर विश्वास होने लगा था। पर जब बहुजन राजनीति यथास्थितिवादियों से राजनीतिक सत्ता के लिए हाथ मिलाती है। वहीं कँवल का मोहभंग हो जाता है और वे सिर्फ़ सत्ता की राजनीति करने वाले इस चेहरे को सबके सामने लाने से भी नहीं सकुचाते हैं। कांशीराम की राजनीति कमज़ोर भी दिखाई देती है, इस रूप में – "यह तो उसी दिन तय हो गया था, जब 176 सीटों वाली भाजपा ने मात्र 33 सीटों (59 बाद में हुई थीं) वाली बसपा को समर्थन देकर मायावती को सरकार बनवाई थी कि जब तक भाजपा चाहेगी,

[350] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 37

बसपा सरकार तभी तक चलेगी।"[351] मात्र 59 सीटों पर सरकार बना ली गई थी पर क्या इस बात पर सोचा नहीं गया कि यह अपने मन के हिसाब से नहीं चलेगी। जब चाहे इसे भाजपा गिरा सकती है। भाजपा ने किया भी यही, समर्थन वापस ले लिया और सरकार गिर गई।

बहुजन राजनीति की इन सीमाओं को प्रस्तुत करने, उसके मूल्यांकन करने में कँवल कभी चुके नहीं ऐसा कहा जा सकता है। बसपा के विभाजन को लेकर भी वे 'जातिवाद का परिणाम है बसपा का विभाजन' में लिखते हैं कि "कांशीराम ने ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष नहीं किया है। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के बहुत कार्यक्रम चलाए। पर सच यह है कि उन कार्यक्रमों का स्वागत सिर्फ़ दलितों ने किया, पिछड़ों ने नहीं और मुसलमानों ने तो बिल्कुल भी नहीं।... उन्होंने (कांशीराम) सबसे नीचे दबे पड़े दलितों को ऊपर उठाकर सबको सबके बराबर लाने का आंदोलन चलाया। पिछड़े, ब्राह्मण के बराबर होना चाहते हैं, परंतु दलितों को अपने बराबर लाने को तैयार नहीं हैं। इसलिये उन्होंने समाज-सुधार को पसंद नहीं किया और दलितों को दलित बनाये रखने के लिये ब्राह्मणों से नीचे रहना ही स्वीकार किया।"[352]

जातिवाद की जड़ें इस समाज के हर हिस्से में मौजूद हैं। कँवल भारती इसे बहुजन राजनीति में मौजूद पाया। इसलिए वे बसपा के विभाजन में इसे कारण मानते हैं। एक बात जो आज भी बसपा की स्थिति को देखकर लगता है कि वे इतनी ख़राब अवस्था तक कैसे पहुँची है। कँवल भारती का विश्लेषण इस बात का जवाब देता है। कांशीराम के असफल होने के कारणों में कँवल भारती इसे मानते हैं और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि – "कांशीराम यदि सिर्फ़ आंबेडकर मिशन को लेकर चलते और सत्ता के गलियारों में न भटकते, सिर्फ़ दलित आंदोलन को ही जोड़ने का रचनात्मक कार्य करते, तो वह ज़्यादा सफल होते और दलितों के महान मसीहा बनते। कांशीराम की ज़रूरत पिछड़ों और मुसलमानों को नहीं है, दलितों को है।

---

[351] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 96
[352] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 105

उन्हें भटकना बंद करके अब अपने 'घर' लौटने की तैयारी करनी चाहिए।"[353] इस बात की अनदेखी हुई है और इसके परिणाम आज सबके सामने मौजूद हैं।

कांशीराम के संदर्भ में कँवल की पत्रकारिता अंततः वास्तविक स्थितियों से अवगत करने वाली पत्रकारिता है। जो सच को सच कहती है और बहुजन राजनीति को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में दिशा-निर्देश करती हुई दिखाई देती है। पर, कँवल की माने तो उनका यह लेखन 'दलितों को उनके राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जागरूक करना और सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन का लक्ष्य छोड़कर सत्ता के लिए भटक रहे कांशीराम सरीखे नेताओं से सावधान करना है।' यथार्थ को जस-का-तस आज इस दौर में भी कह पाने के लिए जो साहस कँवल के पत्रकार रूप में है वह दुर्लभ है। अपनी सीमाओं के साथ कँवल भारती का यह लेखन दलित पत्रकारिता में सार्थक हस्तक्षेप है। वे कांशीराम पर ही अपनी बात करके रुके नहीं वे मायावती की राजनीति पर भी खुलकर अपना लेखन कार्य करते हुए दिखाई देते हैं।

4.2.2 मायावती :

कँवल भारती की किताब 'मायावती और दलित आंदोलन' दलित आंदोलन और मायावती की राजनीति को समाने लाने का प्रयास करती है। जो कि पत्रकार के रूप में कँवल भारती के लेखों का संग्रह है। 'कांशीराम के दो चेहरे' के बाद यह किताब उसके उत्तर रूप को समाने लाती है। जिसमें मायावती की राजनीति का मूल्यांकन दिखाई देता है। दलित पत्रकारिता में यह किताबें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यहाँ अब मायावती के संदर्भ में पत्रकार कँवल भारती का मूल्यांकन कैसा रहा, क्या वे दलित राजनीति को समझने में और उसका मूल्यांकन करने में सफल रहे ? इस प्रश्नों को केंद्र में रखकर मूल्यांकन किया जाना यहाँ उचित लगता है।

---

[353] कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे, पृ. सं. 106

मायावती उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री रह चुकी हैं। यह दलित समाज एवं ख़ास तौर से दलित महिलाओं के लिए बहुत प्रेरक बात है। दलित समाज के स्त्री का लोकतंत्र के इतने बड़े मुक़ाम तक पहुँचना अपने आप में बहुत ही दुष्कर काम है। मायावती ने इस दुष्कर काम को अपनी क्षमता से साध्य किया है। पर, राजनीति सत्ता का उपयोग कर वे दलित समाज की आवश्यकताओं को पूरा कर पाई या कहे उनकी सामाजिक, आर्थिक अवस्था में कोई मूलभूत बदलाव कर पाई है इस बात को देखा जाना चाहिए। कँवल भारती ने अपने पत्रकारिता में दलित एवं दलित समाज को केंद्र रखकर मायावती की राजनीति एवं दलित आंदोलन का मूल्यांकन किया है।

'मायावती और दलित आंदोलन' को 'कांशीराम के दो चेहरे' किताब का कँवल भारती के शब्दों में कहे तो 'विस्तार भी कहा जा सकता है, पर वास्तव में यह पुस्तक उसका विकास है।' मुख्यतः इस किताब में मायावती के सन् 1996 से 2004 तक के राजनीतिक कर्म पर लिखे गए लेख हैं। इस अवधि में मायावती दो बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री रह चुकी हैं। कँवल भारती एक पत्रकार के रूप में राजनीतिक सत्ता पर क़ाबिज़ व्यक्ति पर आलोचनात्मक रूप में लेखन कार्य कर रहे थे। यह काफ़ी साहस का काम है, जब वह लेखन उस राजनीतिक सत्ता पर क़ाबिज व्यक्ति की कमियों को उजागर कर रहा हो, उसकी सीमाओं को लोगों के सामने प्रस्तुत कर रहा हो।

कँवल भारती का लेखन कार्य मायावती पर भी उसी तरह आलोचनात्मक रुख़ अपनाता है जो कांशीराम के राजनीति पर अपना चुका है। बहुजन राजनीति के केंद्र में दलित समाज के साथ-साथ समाज के उपेक्षित, वंचित एवं शोषित वर्ग हैं। कँवल भारती की पत्रकारिता दलित समाज को केंद्र में रखकर उसकी उन्नति एवं विकास के लिए यह राजनीति कितनी प्रभावी रही इस बात को सामने लाने का प्रयास करती है। जैसा कि बहुजन राजनीति ने राजनीतिक सत्ता के लिए भाजपा का समर्थन लेकर पहली दलित महिला को मुख्यमंत्री बना

चुकी है। पर, जो बात कांशीराम की राजनीति में मुख्य है वह है पूँजीवाद एवं ब्राह्मणवाद का उन्मूलन। क्या वह यथास्थितिवादी पार्टियों से समर्थन लेकर इस उद्देश्य में सफल हो सकते हैं? जैसा कि पहले ही विश्लेषित किया जा चुका है कि वे इस उद्देश्य में असफल रहे। वे आने वाले समय में भी इसके लिए प्रयास करते हुए दिखाई नहीं दे रहे हैं। मायावती की राजनीति ने आज तक इस उद्देश्य के लिए कोई ठोस कार्य किया हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता है।

कँवल भारती इस किताब में निहित लेखों के बारे में एक बात लिखते हैं, वह यह है- "इन लेखों में मायावती की दलित राजनीति और भाजपा से उसके रिश्तों के संबंध में गहन से गहन विश्लेषण किया गया है और एक क्रांतिकारी दलित आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में उसका मूल्यांकन भी।"[354] कँवल भारती की यह किताब मूलतः इस उद्देश्य के लिए भी लिखी गई है जिसे ध्यान में रखना ज़रूरी है। भाजपा एवं बसपा के राजनीतिक संबंध एक दूसरे से कैसे रहे और हैं यह बात दलित समाज एवं राजनीति पर बहुत प्रभाव डाल सकती है। इसके पहले दलित समाज एवं मायावती पर केंद्रित लेखों का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

'मायावती का दलित प्रेम' इस लेख में मायावती के कार्यों की आलोचना करते हुए कँवल भारती दिखाई देते हैं। 'बहुजन समाज पार्टी' दलित समाज के विकास के लिए, सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीतिक पार्टी के रूप में उभरी है। जब मायावती राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर चुकी तब उन्होंने दलितों के प्रति अपने अधिकारों का उचित निर्वहण किया क्या? यह लेख कहता है नहीं किया। वे मायावती को इस रूप में असफल मानते हैं। मायावती का दलित प्रेम केवल एक दिखावे के रूप में सामने आता है। कोई ठोस कदम सत्ता में रहकर मायावती ने नहीं लिए। उनका जो दलित प्रेम है वह कैसा रहा? इस बात को स्पष्ट करते हुए कँवल लिखते हैं – दलित अधिनियम पर बात करते समय यह मायावती की उपलब्धि के रूप में बताया जाता है। 'इस अधिनियम के तहत सबसे कम मामले उन्हीं के शासन में हुए हैं।' यह

[354] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. निवेदन

कहा जाता है पर इसकी आलोचना करते हुए कँवल ने यह बात रेखांकित की कि, "मायावती ने जिला पुलिस प्रमुखों को सीधे निर्देश दे रखे थे कि अपराधों को कम संख्या में दर्ज किया जाये। इन निर्देशों का उल्लंघन करने पर कई पुलिस प्रमुखों को मायावती के दण्ड का भागी भी बनना पड़ा। अतः स्वतः ही इन निर्देशों के तहत सभी अपराध पंजीकृत नहीं हुए और मायावती को प्रसन्न करने के लिए अपराधों को कम करके आँकड़ें भेजे गये।"[355]

इस उद्धरण में इस बात को देख सकते हैं कि कँवल यहाँ मायावती के इस निर्देश को दलितों के विरोध में देख रहे हैं। वे मानते हैं कि मायावती के निर्देश ने कम अपराधों को दर्ज किया है। यहाँ वे निर्देश सच में आए थे, प्रमाण के रूप में कोई बात कँवल नहीं रखते, सिवाय इस बात के कि कुछ पुलिस प्रमुखों को निर्देश न मानने के कारण दंड का भागी होना पड़ा। वे प्रमाण के रूप में कुछ प्रस्तुत कर देते तो बात और मज़बूत होती। पर इसे सच मान लिया जाए तो यह दलित समाज के लिए बहुत ही अहितकारी निर्देश कहा जा सकता है। दूसरी बात मायावती के दलित प्रेम के संबंध में कँवल उद्धृत करते हैं वह है– "मायावती से पूर्व, अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग को दलित उत्पीड़न के मामले में किसी भी अधिकारी को अपने समक्ष तलब करने का अधिकार था। किंतु मायावती ने आयोग के इस अधिकार को कम कर दिया तथा सिर्फ़ सचिव या मुख्य सचिव को ही अपने कार्यालय में पूछताछ के लिये बुलाने का अधिकार दिया। इसमें भी सचिव या मुख्य सचिव द्वारा अपने अधीनस्थ उपसचिव अथवा अनुसचिव को भेजने का प्राविधान किया गया।"[356] इस बात को माना जा सकता है कि इस तरह के निर्णय जो कार्यवाही को और ज़्यादा लंबी अवधि पर ले जाकर छोड़ देते हैं। इससे न्याय मिलने की प्रक्रिया में और ज़्यादा देर हो जाती है। इससे आर्थिक रूप से ग़रीब, सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। वे और भी ज़्यादा न्याय से दूर हो जाते हैं।

---

[355] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 41

[356] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 41

और भी कुछ उदाहरण हैं जिससे मायावती का दलित प्रेम सिर्फ़ दिखावा मात्र बनकर रह जाता है। उनका यह प्रेम किसी भी रूप में दलित समाज के लिए, उनके विकास के लिए, न्याय के लिए, अपनी उन्नति के लिए सहायक सिद्ध नहीं होता है। 'शिक्षा' दलित समाज के लिए सबसे ज़रूरी साधनों में से है, जिससे न सिर्फ़ उनकी उन्नति होगी बल्कि देश की उन्नति भी इसमें निहित है। इस पर मायावती ने ध्यान दिया क्या? प्रदेश के जनपदों में दलित छात्रों और छात्राओं के लिए समाज कल्याण विभाग द्वारा छात्रावासों का निर्माण हुआ था। इस पर कँवल लिखते हैं कि – "वर्तमान परिस्थितियों में सौ छात्र क्षमता वाले छात्रावासों की ज़रूरत है, जो छात्रावास मौजूद हैं, उनकी रंगाई-पुताई और मरम्मत के लिये कई-कई साल से विभाग ने बजट नहीं भेजा है। तमाम जनपदों में विद्युत कटी हुई है। पचास-पचास हजार रुपये बिजली का बिल हो गया है। पर छात्रावासों के विद्युत मद में कोई धनाबंटन विभाग नहीं करता।...यह मायावती का कैसा दलित प्रेम था कि उन्होंने करोड़ों रुपये आंबेडकर स्मारकों पर बहा दिये और दलित छात्रों के हित में न्यायोचित धन भी खर्च नहीं किया।"[357]

इस उद्धरण से कँवल भारती दलितों के लिए शिक्षा की ज़रूर को सामने लाते हैं। स्मारकों से ज़्यादा आज भी भारतीय समाज को अच्छी शिक्षा की ज़रूरत है। आए दिन सरकारे बड़ी मूर्तियों को खड़ा कर रही हैं। पर उन करोड़ों की धनराशि में यूरोप जैसी शिक्षा व्यवस्था के समानांतर सुविधाओं से सुसजित शिक्षा संस्थाएँ खड़ी करने में कोई रुचि नहीं दिखा रही हैं। मायावती की सरकार ने भी आंबेडकर स्मारक के लिए जितना रुपया खर्च किया है उसमें विश्वविद्यालय, कालेज, स्कूल खोले जा सकते हैं ये अभी भारतीय समाज की ज़रूरत है न कि स्मारक। स्मारकों से भारत सरकार को कुछ निश्चित धनराशि का लाभ हो सकता है, पर शिक्षा से भारत का भविष्य जुड़ा हुआ है। कँवल भारती ने मायावती के दलित प्रेम को इस रूप में लाकर समाज को जागृत करने का काम किया है। बसपा हो या अन्य कोई भी

[357] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 42-43

राजनीतिक पार्टी जो समाज की ज़रूरतों के मुताबिक कार्य नहीं करती हैं तो वे किसी काम की नहीं हैं।

मायावती की राजनीति को शिक्षा, स्त्री एवं आर्थिक मुक्ति की कसौटी पर भी कँवल भारती जाँचते हैं। जिससे मायावती की राजनीति और भी स्पष्ट रूप में सामने आती है। 'मायावती और दलित सवाल' इस लेख में कँवल उपर्युक्त बातों को आधार बनाकर मायावती का मूल्यांकन करते हैं। महिलाओं को लेकर कँवल के माने तो 'उनकी सुरक्षा और शिक्षा' दो महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं। जिन्हें हल करना एक महिला मुख्यमंत्री के लिए और भी ज़रूरी हो जाता है। क्या एक महिला होकर उन्होंने स्त्री शिक्षा एवं उनकी सुरक्षा के लिए कोई उपाय किए हैं? कँवल का मूल्यांकन बताता है कि इस पर मायावती असफल रही है। मायावती ने दलित महिलाओं के बलात्कार की मुआवजा राशि बढ़ा दी। यह किसी रूप में सुरक्षा एवं न्याय को सुनिश्चित करना नहीं है। कँवल यहाँ एक बात रेखांकित करते हैं जो अहम है। वह है – "अत्याचार और बलात्कार का मुआवजा देना पूँजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था की सोच है, जिसकी दृष्टि में महिला सिर्फ़ भोग की वस्तु होती है और मुआवजा इस भोगवादी संस्कृति के ख़िलाफ़ विद्रोह को रोकने की कार्यवाही है।"[358]

कँवल स्त्री शिक्षा पर, केरल राज्य की बात करते हैं। 'मिसाल के तौर पर मायावती केरल की तरह संपूर्ण स्त्री-शिक्षा को निःशुल्क कर सकती थी।' पर मायावती ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। अगर वे ऐसा करतीं तो, संपूर्ण स्त्री-जाति इससे लाभान्वित हो जाती। क्या मायावती ने आर्थिक मुक्ति के लिए कोई कार्यक्रम चलाए? कँवल इसका भी उत्तर ना में ही देते हैं। कँवल की माने तो आर्थिक मुक्ति का अर्थ है – "दलितों को पुश्तैनी धंधों से मुक्ति दिलाना, जो घृणित हैं और जो उन्हें दूसरों के लिये अछूत बनाते हैं।"[359] मायावती इस बात पर

[358] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 47
[359] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 49

भी असफल है। आज भी उत्तर प्रदेश में इस पुश्तैनी धंधों में दलित फँसे हुए हैं। जिससे निकले बिना उनकी उन्नति असंभव है।

'दलित की बेटी का दलित-बोध' यह लेख अपने-आप में पत्रकारिता का सफल रूप दिखाई देता है। एक पत्रकार के कंधों पर जो लोकतंत्र को बचाए रखने की ज़िम्मेदारी है उससे सतत् अनुभव करता हो और उसके लिए श्रम करता हो उनके लेखन से ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाएँगे। इस लेख में मायावती के जन्मदिन की बात को उठाया गया है। मायावती के जन्मदिन को केंद्र में रखकर जनता के दायित्व पर वे लिखते हैं- "दुनिया के आठ फीसदी ग़रीब जिस प्रदेश में रहते हों, उसकी मुख्यमंत्री और वह भी दलित पृष्ठभूमि से आयी हुई महिला अपने जन्मदिन को शाही शानो शौकत से मनाये और उस पर लगभग डेढ़ करोड़ रुपये सरकारी खजाने से खर्च किये जायें, तो जनता का यह दायित्व बनता है कि वह उसका ब्यौरा माँगे।"[360] 6 मार्च 2003 को, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर अंतरिम निर्णय देते हुए, उत्तर प्रदेश सरकार और केंद्रीय नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को, मुख्यमंत्री मायावती के जन्मदिन पर खर्च किए गए धन का चार हफ़्ते के अंदर हिसाब मांगा था। इस पर मायावती ने क्या कहा, कँवल लिखते हैं – "उन्होंने (मायावती) राजकोष से कोई पैसा नहीं लिया, बल्कि आकस्मिक निधि से राज्य सराकर ने 75 लाख रुपये उनके जन्मदिन के समारोह पर खर्च किये हैं।"[361] इस बात पर कँवल प्रश्न करते हैं – "यह आकस्मिक निधि, विवेकाधीन निधि, प्रदेश निधि, आपदा निधि और मुख्यमंत्री राहत निधि सरकारी धन नहीं है, तो क्या है?"[362] यह सवाल महत्त्वपूर्ण है और इससे पता चलता है कि सरकारें अपनी निजी आवश्यकताओं, इच्छाओं को पूरा करने के लिए देश के पैसों का अपने हित के लिए प्रयोग करते हैं और देशहित के लिए वह दुरुपयोग साबित होता है। इस पर पत्रकारिता की नज़र बनी

---

[360] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 96-97

[361] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 97

[362] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 97

रहेगी तो देश के नेता इसका दुरुपयोग अपने निजी हित के लिए नहीं करेंगे और इस पर थोड़ासा अंकुश बना रह सकता है।

बसपा और भाजपा के कुछ राजनीतिक संबंधों पर लिखे गए कुछ लेखों पर भी यहाँ ध्यान देना उचित लगता है। 'मायावती और दलित आंदोलन' यह किताब ही इसे केंद्र में रखकर लिखी गई, जिससे बसपा और भाजपा के राजनीतिक संबंधों से पाठक वर्ग अवगत हो और छल करती राजनीति का असल चेहरा पहचान सके। 'दलित राजनीति की भाजपाई धारा' में कँवल भारती भाजपा की राजनीति को तीन सूत्रों में बांटते हैं। वे हैं – सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, निजीकरण और दलित ब्राह्मण गठबंधन। इन तीनों सूत्रों को भाजपा उत्तर प्रदेश में अंजाम दे रही है ऐसा कँवल मानते हैं। इस बात को वे उदाहरण सहित स्पष्ट करने की कोशिश इस लेख में करते हैं। सवाल यह है कि वह कौन-सी दलित राजनीति की धारा है जो भाजपाई है?

इसी बात की गुत्थी वे सुलझाने का प्रयास इसमें करते हैं। उन्होंने इस बारे में स्पष्ट लिखा है कि वह दलित राजनीति है जिसे मायावती खेल रही है। इस राजनीति पर कँवल लिखते हैं – "अब दलित राजनीति आंबेडकर से नहीं, भाजपा की सोच से उत्तर प्रदेश में काम कर रही है। यही मुख्यधारा की वह दलित राजनीति है, जिसका भाजपाईकरण हो गया है। अब वह सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक न्याय की अवधारणा से भी दूर चली गयी है। अब यह भाजपा के 'सामाजिक समरसता' के लिये काम कर रही है, जिसका अर्थ होता है सामाजिक यथास्थिति।"[363]

क्या यह बात सच में ऐसी ही है? इससे समझने के लिए भाजपा की राजनीति को पहले समझना चाहिए जो कँवल भारती ने स्पष्ट की है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जिसका अर्थ है, "हिंदुत्व का उभार, हिंदू राष्ट्र की स्थापना और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को हिंदुत्व की

---

[363] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 90-91

अधीनता में रखना।"[364] इसके लिए भाजपा के अनेक संगठन काम करते हैं। जिसके उदाहरण भी वे देते हैं। चुनाव के नज़दीक आते ही 'भाजपा का हिंदू खेल तेज हो जाता है', ऐसा कँवल लिखते हैं। वे 2003 की घटनाओं को भी सामने रखते हैं। वे लिखते हैं – "इधर गोरखपुर और उसके आप-पास के जनपदों में रातों-रात हिंदू जागरण मंच, हिंदू युवा वाहिनी, केसरिया सेना, केसरिया वाहिनी और कृष्ण सेना जैसे संगठन खड़े हो गये हैं। भाजपा सांसद योगी आदित्यनाथ की हिंदू सभाएँ गाँव-गाँव हो रही हैं। गोरखपुर में ही 13 से 15 फरवरी तक विराट हिंदू संगम हुआ, जिसमें विहिप के नेता अशोक सिंहल ने हिंदू राष्ट्र बनाने की घोषणा की।"[365]

निजीकरण पर कँवल लिखते हैं – "आर्थिक क्षेत्र में भाजपा की नीति- विनिवेश की है, अर्थात् सरकार और जनता के निवेश वाले सारे उद्योगों को चंद पूँजीपतियों के हवाले कर देना।"[366] कँवल इससे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "सब कुछ निजी हाथों में हो - कृषि, फार्म, बिजलीघर, रेलें, हवाई जहाज, विश्वविद्यालय, स्कूल, कालेज, अस्पताल, बसें, बैंक और पब्लिक निर्माण तक। यह अमेरिकी वैश्वीकरण की नीति का ही एक हिस्सा है। भाजपा इसके पक्ष में इसलिये भी है क्योंकि यह हिंदू अर्थव्यवस्था का भी हिस्सा है। भाजपा यह अच्छी तरह जानती है कि वैश्वीकरण से ग़रीबी बढ़ती है, समृद्धि नहीं। पर, चूँकि ग़रीबी की बुनियाद पर ही हिंदू राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है, इसलिये भाजपा वैश्वीकरण की सबसे बड़ी समर्थक है।"[367] इस निजीकरण की नीति पर मायावती ने कार्य किया जो ग़रीबी का कारण है। कँवल इसके उदाहरण पेश करते हैं। वे लिखते हैं – "नवम्बर 2002 में मायावती ने 314 सरकारी कृषि फार्मों का निजीकरण किया। इनमें 165 कृषि विभाग के फार्म, 10 पशुधन विभाग के और 139 उद्यान विभाग के फार्म हैं।"[368]

---

[364] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 91
[365] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 92
[366] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 92
[367] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 92
[368] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 93

यह निजीकरण शिक्षा के क्षेत्र में भी लगातार बढ़ रहा है। इसके लिए अलग से कुछ कहा जाना ज़रूरी यहाँ नहीं लगता है। क्योंकि हम इस बात से भली-भाँति परिचित हैं। आए दिन अपने आस-पास कितनी सारी निजी शिक्षा संस्थाएँ खड़ी हो रही है देख ही सकते हैं। भाजपा का तीसरा सूत्र दलित-ब्राह्मण गठबंधन का है। इसके अर्थ को लेकर कँवल ने कहा की 'दलितों को ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई को ठण्डा करना।' कांशीराम ने सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ी थी। पर उनकी लड़ाई राजनीति में असफल रही। वे सत्ता के लिए फिर अपने सिद्धांतों को तोड़ते चले गए। "एक सिद्धांत वह उत्तर प्रदेश की तमाम रैलियों में 1992-93 में दोहराते थे कि जिससे समझौता है, उसके साथ संघर्ष नहीं और जिसके साथ संघर्ष है, उससे कभी समझौता नहीं। आने वाले वर्षों में ही उन्होंने इस सिद्धांत को तोड़ डाला।"[369] मुलायम सिंह से समझौता था वह संघर्ष में तब्दिल हुआ और भाजपा के साथ संघर्ष था वह समझौता हो गया।

मायावती ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अनदेखी की, निजीकरण के विरोध में जाने के बजाए उसको बढ़ावा दिया, भाजपा की हर नीति की समर्थक बनकर रह गई। आज भी यही स्थिति मायावती को देखने को मिलती है। कँवल की यह बात बसपा को लेकर सच प्रतीत होती है कि "बसपा की सारी राजनीति आत्मघाती है, दलित विरोधी है और भाजपा समर्थक है। आर्थिक उदारवाद के प्रश्न पर, शिक्षा के भगवाकरण और महँगी होने के सवाल पर, निजीकरण के ख़त्म होते रोजगार की समस्या पर और निरतंर बढ़ रहे सांप्रदायिक उन्माद पर बसपा का नेतृत्व जिस तरह निष्क्रिय है, उससे यही बात साबित होती है कि वह भाजपा के ख़िलाफ़ कोई बड़ी लड़ाई लड़ना नहीं चाहती।"[370]

निष्कर्ष रूप में कांशीराम और मायावती की राजनीति को कँवल ने यथास्थितिवादियों की समर्थक कहा है। एक ही शब्द का उपयोग करें तो, भाजपा की समर्थक पार्टी कहा है। यह

---

[369] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 66

[370] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 65

बात सच प्रतीत होती है – "1995 से लेकर आज तक बसपा नेतृत्व कभी भी हिंदू हितों के विरुद्ध नहीं गया है। चाहे, आरक्षण का प्रश्न हो, उसने सवर्णों के लिये आरक्षण की वकालत की, अयोध्या का मामला लें, तो उसने वहाँ मंदिर निर्माण का समर्थन किया, संविधान समीक्षा के मुद्दे पर उसने भाजपा के विरुद्ध कोई आंदोलन नहीं चलाया और हाल में गुजरात में हुए नरसंहार के विरोध में न उसने नरेंद्र मोदी को हटाने की बात कही और न नरसंहार की निंदा की।... उसने केवल भाजपा को मज़बूत किया, बल्कि संसद में कई बार भाजपा के विरुद्ध मतदान से बाहर रहकर भाजपा की रक्षा भी की।"[371] बसपा की नीतियों से यह बात स्पष्ट भी होती है। बसपा के साथ सिर्फ़ चमार जाति ही क्यों जुड़ी हुई है ऐसा सवाल भी कँवल करते हैं। यदि बसपा दलित वर्ग की राजनीति कर रही है तो उसने धोबी, वाल्मीकि और खाटिक जातियों के लिए कार्यक्रम चलाने चाहिए थे। पर उन्होंने कोई कार्यक्रम नहीं चलाए। कँवल इस बात को भी सामने लाते हैं। यह बात उचित जान पड़ती है दलित वर्ग की राजनीति करने वाले बसपा के साथ अति दलित वर्ग नहीं है उनको जोड़ने का कोई कार्यक्रम नहीं है, जिससे आज दलित राजनीति में विभाजित है। कँवल की इस पत्रकारिता के बारे में कहा जा सकता है कि उनकी पत्रकारिता लोकतंत्र को बचाने का प्रयास करती हुई पत्रकारिता है। जिसमें निजीकरण का विरोध है, सांप्रदायिक ताकतों का विरोध है, दलित एवं अल्पसंख्यक समाज को उनके अधिकारों के प्रति और उनका जो राजनीतिक छल हो रहा है, उससे सचेत करने की पत्रकारिता है।

4.3 दलित पत्रकारिता की सीमाओं का निर्देश :

दलित पत्रकारिता की सीमाओं पर बात करते समय 'माझी जनता' साप्ताहिक एवं पत्रकार के रूप में कँवल भारती ने जो लेखन कार्य किया है उसी के संदर्भ में उनकी सीमाओं का निर्देश यहाँ किया जा सकता है। जैसा कि कँवल भारती के पत्रकारिता को देखा जा चुका

[371] कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, पृ. सं. 68

है। वह पत्रकारिता एक ओर वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने के प्रयास में दिखाई देती है। तो वहीं दलित आंदोलन एवं राजनीति का मूल्यांकन करते हुए वह आत्म संशोधन की ओर प्रवृत्त हुई है। यह आत्मालोचन (दलित आंदोलन एवं राजनीति के संदर्भ में) करती पत्रकारिता है। जिससे आनेवाले भविष्य की दिशा सुनिश्चित करने के लिए सहायता मिल सकती है।

कँवल भारती का कांशीराम एवं मायावती पर लेखन आत्मालोचन के अंतर्गत माना जा सकता है। क्योंकि यह मूल्यांकन दलित राजनीति, समाज एवं आंदोलन को केंद्र में रखकर किया गया है। यह मूल्यांकन भारतीय समाज के सबसे निचले वर्ग का चिंतन है। जिसे दलित वर्ग का चिंतन कहा जा सकता है। इस दलित पत्रकारिता की क्या सीमाएँ हो सकती हैं? जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं आर्थिक समस्या इसके मार्ग की सबसे बड़ी समस्या भी और सीमा भी। दलित सत्ता-संसाधनों से दूर रहा है इसलिए वह आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग है। जितनी भी दलित पत्रिकाएँ निकली हैं, उनमें से ज़्यादातर आर्थिक समस्या के कारण ही बंद हो चुकी है। 'माझी जनता' के संदर्भ में इस बात को देख चुके हैं। कँवल भारती से मिलने जब शालीग्राम ढोरे रामपुर गये, तो साप्ताहिक के संदर्भ में उनसे कँवल ने कहा कि "मैं अपना श्रम और दिमाग दे सकता हूँ, धन मेरे पास नहीं है।"[372]

डॉ. बी. आर. आंबेडकर की पत्रकारिता भी आर्थिक समस्याओं के कारण आगे नहीं बढ़ पायी। ऐसा नहीं है कि आज दलित पत्रकारिता आर्थिक रूप से सबल नहीं हुई है। सबल हुई भी है तो वह अपवाद स्वरूप ही। जब तक दलित समाज आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हो पाएगा तब तक उसका सशक्त वैकल्पिक मीडिया खड़ा नहीं हो पाएगा। इसके लिए ढोरे जैसे लोग अपना सब कुछ न्यौछावर कर इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं पर, आर्थिक पक्ष आज भी समाज के सहयोग पर ही ज़्यादातर निर्भर बना हुआ है।

---

[372] कँवल भारती - माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, पृ. सं. 12

दलित पत्रकारिता डॉ. आंबेडकर के विचारों को केंद्र में रखकर तत्कालीन देश की समस्याओं पर अपनी बात रखती है। यह इसकी सीमा है और यह सीमा अपने-आप में उनका मज़बूत आधार है, जिसे सीमाओं में बाँधना मुश्किल कार्य है। "देश की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसे दलित वर्ग के लोग न जीते हों। इसलिए उस समस्या पर उनका चिंतन ज़्यादा रेडिकल और ज़्यादा सार्थक हो सकता है।"[373] देश की आर्थिक समस्याएँ, सांप्रदायिकता, धर्मांतरण, महिला विधेयक और सशक्तीकरण, राजनीति, अपराध, सामाजिक न्याय, कश्मीर समस्या आदि ऐसे कई विषय हैं जिन पर दलित पत्रकारिता अपना विचार प्रकट कर सकती है। दलित पत्रकारिता की सीमाओं में एक बात आ सकती है कि किसी भी विषय को जाति एवं वर्ग के आधार पर बातों को देखना और उसे विश्लेषित करना। जिसकी अपनी ज़रूरत है, आवश्यकता है पर उसकी अति, दलित पत्रकारिता का नुकसान कर सकती है।

भारतीय समाज भी दलित पत्रकारिता की तरफ़ अपने देखने की दृष्टि में परिवर्तन लायेगा तो इस पत्रकारिता में परिवर्तन की उम्मीद की जा सकती है। जातिवादी दृष्टिकोण से उसकी तरफ़ देख कर, उससे हमेशा किनारा करने से देश की स्थिति में परिवर्तन आने में और विलंब होगा। जाति एवं वर्ग-विहीन समाज के लिए, किसी तरह के अलगाव या भेदभाव के ख़िलाफ़, लोकतंत्र की मज़बूती के लिए, दलित समाज में परिवर्तन की आस लिए यह काम कर रही है। इसे नकारात्मक रूप में न लेने के बदले सकारात्मक होकर इसे हर समाज देखेगा तो परिवर्तन की राह आसान होगी।

निष्कर्ष :

कँवल भारती की पत्रकारिता समाज, साहित्य, राजनीति एवं आंदोलन का सम्यक मूल्यांकन नज़र आती है। 'माझी जनता' के साप्ताहिक की बात की जाए तो वह राजनीति का मूल्यांकन करते हुए साहित्य को भी अपने में समाहित कर पत्रकारिता की सीमाओं को

---

[373] कँवल भारती – समाज, राजनीति और जनतंत्र, पृ. सं. 8

विस्तृत करता है। दलित साहित्य पर अभी और शोध होने बाकी हैं। वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने के उद्देश्य से चला 'माझी जनता' साप्ताहिक अपनी आर्थिक समस्याओं से आगे नहीं बढ़ पाया। पर उसने कई मुद्दों पर दलित दृष्टिकोण से अपनी बात समाने रखी जहाँ मुख्यधारा का मीडिया सुनने के लिए कभी जगह ही नहीं देता है।

साप्ताहिक हिंदी दलित साहित्य की आरंभिक रचनाकारों को एवं उनके साहित्य को सामने ला रहा था। दलित आंदोलन का मूल्यांकन कर रहा था, तत्कालीन मुद्दों को आंबेडकरवादी दृष्टिकोण से परिभाषित कर रहा था। जनसंख्या, राजनीति, साहित्य, दलित मीडिया को व्याख्यायित कर रहा था। कँवल भारती का यह संपादक-पत्रकार रूप डॉ. आंबेडकर की विचारधारा को हमेशा केंद्र में रखकर लोकतंत्र, समाज, राजनीति, साहित्य का मूल्यांकन करता हुआ दिखाई देता है।

कांशीराम की राजनीति को जाति की कोख से पैदा हुई राजनीति कँवल भारती मानते हैं। उसे 'जाति की राजनीति से ऊपर उठकर वर्गीय सामाजिक आधार को अपनाने की बात वे करते हैं। और साथ ही सिर्फ़ राजनीतिक सत्ता के पीछे न भाग कर सामाजिक परिवर्तन की राजनीति पर पुनः लौटने की बात करते हैं।' इसके पीछे जो विचार काम कर रहे हैं। वह यह हैं – "...जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकते : आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते, आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई भी निर्माण करेंगे, वह चटक जाएगा और कभी भी पूरा नहीं होगा।"[374] कांशीराम ही नहीं मायावती की राजनीति पर बात करते समय जब वे 'दलित की बेटी का दलित-बोध' नामक लेख लिख रहे हैं। उसका आधार क्या है? उसका आधार भी आंबेडकर विचारधारा है। जो मायावती के आचारण पर आधारित है। यह मायावती का मूल्यांकन इस विचार पर कार्य करता हुआ दिखाई देता है, जो इस प्रकार है – "यदि यह अख़बार विभिन्न विधानमंडलों में

[374] डॉ. बी. आर. अंबेडकर – बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, भाग – 1, पृ. सं. 89

हमारे विधायकों के आचरण का समाचार छापने के लिए इसमें कुछ जगह दे सके और लोगों को बता सके, कि उन्होंने ऐसा क्यों किया है और क्यों नहीं किया है तो मेरे मन में कोई संकोच नहीं है कि हमारे विधायकों के आचरण में बड़ा सुधार आएगा और वर्तमान अव्यवस्था बंद हो जाएगी, जो हमारे समाज को बदनामी दिलाने के लिए काफ़ी है। इसलिए मैं इस अख़बार से आशा करता हूँ कि यह उन लोगों के शुद्धिकरण करने का एक महान दस्तावेज बने, जो अपने राजनीतिक जीवन में भटक गए हैं।"[375] मायावती ने जो पैसों का अपव्यय अपने जन्मदिन पर किया उसकी आलोचना इस विचार के अंतर्गत आती है। जो पत्रकारिता के महत्त्व एवं उत्तरदायित्व को परिभाषित करती है।

पत्रकारिता को लेकर डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने 'रानाडे, गांधी और जिन्ना' में जो लिखा है, वह भारतीय पत्रकारिता की सबसे तीखी आलोचना है और आज भी सच प्रतीत होती है। वे लिखते हैं – "भारतीय पत्रकारिता ...वह तो ऐसा लेखन है, जैसे ढिंढोरचियों ने अपने नायकों का ढिंढोरा पीटा हो। नायक-पूजा के प्रचार-प्रसार के लिए कभी भी इतनी नासमझी से देशहित की बलि नहीं चढ़ाई गई है। नायकों के प्रति ऐसी अंधभक्ति तो कभी देखने में नहीं आई, जैसी कि आज चल रही है।"[376] कँवल भारती की पत्रकारिता, जब कांशीराम और मायावती की राजनीति का मूल्यांकन करती है तो ठीक आंबेडकर की विचारधारा के अनुरूप कार्य करती हुई दिखाई देती है, यही कारण है कि इस पत्रकरिता में नायक-पूजा के लिए कोई स्थान दिखाई नहीं देता है। इसके विपरित लोकतंत्र को मज़बूत बनाने के लिए राजनीतिक रूप से लोगों की चेतना का विस्तार करने का काम कँवल की पत्रकारिता में दिखाई देता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण आंबेडकरवादी विचारधारा ही रही है। अतः इसी विचारधारा के कारण कँवल की पत्रकारिता हिंदी दलित पत्रकारिता एवं साहित्य में अपना अनोखा एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

---

[375] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड–37, पृ. सं. 332

[376] डॉ. बी. आर. अंबेडकर – बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, भाग – 1, पृ. सं. 273

कँवल भारती का वैचारिक साहित्य : मूल्यांकन

'विचारधारा' के बारे में डॉ. अमरनाथ लिखते हैं– "अंग्रेजी के आइडियोलॉजी (Ideology) के लिए हिंदी में विचारधारा अथवा विचार प्रणाली शब्द प्रयुक्त होता है। 'विचारधारा' विचारों और दृष्टिकोणों की एक पद्धति है जिसके तहत लोग वास्तविकता तथा अपने पारस्परिक संबंधों को पहचानते और सामाजिक समस्याओं और संघर्षों का मूल्यांकन करते हैं।"[377] कँवल भारती के वैचारिक साहित्य के संदर्भ में इस बात को देखा जाए तो, उनका वैचारिक साहित्य भी विचारधारा को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य है। जिसमें वे वास्तविकता एवं पारस्परिक संबंधों की पहचान कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं और संघर्षों का मूल्यांकन करते दिखाई देते हैं।

यहाँ इस बात को रेखांकित करना ज़रूरी है कि विचारधारा जब साहित्य लेखन का आधार बनती है, तो वह किस रूप में हो? इस बारे में कार्ल मार्क्स और एंगेल्स की बात को यहाँ देखा-जाना समीचीन होगा, जिसे डॉ. अमरनाथ उद्धृत करते हैं- "जब मार्क्स और एंगेल्स साहित्य को विचारधारा का ही रूप मानते हैं तब हमें ज्ञात हो जाना चाहिए कि विचारधारा से उनका आशय समूची चेतना से है उसके किसी एक अंश से नहीं। उनका सुझाव है कि साहित्य में विचारधारा को सलीके के साथ, साहित्य के कालात्मक सौंदर्य की संगति के साथ रखा जाए।"[378] यह जो, 'साहित्य में विचारधारा को सलीके के साथ, साहित्य के कालात्मक सौंदर्य की संगति के साथ' रखे जाने का सुझाव है, कँवल भारती के वैचारिक साहित्य का मूल्यांकन करते समय इस बात को ध्यान में रखा गया है।

विमर्शों की इस दौर में विचारधारा पर और भी ज़्यादा जोर दिखाई देता है। दलित साहित्य के विशेष संदर्भ में यह बात की जाए तो, यह बात सर्वमान्य है कि दलित साहित्य का

---

[377] डॉ. अमरनाथ – हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. सं. 328

[378] डॉ. अमरनाथ – हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. सं. 329

आधार आंबेडकरवादी विचारधारा है। आंबेडकरवादी विचारधारा का लक्ष्य जाति-विहीन, वर्ग-विहीन समाज बनाना है। वह सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन पर जोर देती है और यही बात दलित साहित्य में दिखाई देती है। इस अध्याय में कँवल भारती की कुछ महत्त्वपूर्ण किताबों का मूल्यांकन व विश्लेषण किया जाएगा। विचारधारा का उनके चिंतन एवं मूल्यांकन पर कितना गहरा प्रभाव रहा इस बात को व्याख्यायित करने का प्रयास किया जाएगा। 'राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर', 'समाजवादी आंबेडकर', 'दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म' आदि बिंदु इस अध्याय के मुख्यबिंदु होंगे। इन्हीं के आधार पर उनके चिंतन का मूल्यांकन किया जाएगा।

5.1 राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर :

कँवल भारती ने राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर का तुलनात्मक अध्ययन किया है। यह अध्ययन बौद्धधर्म, आर्य सिद्धांत एवं अछूतोद्धार पर आधारित है। इन तीन बिंदुओं पर, इन दोनों विद्वानों के क्या मत रहें, क्या दोनों में समानताएँ एवं असमाताएँ रहीं, इन बातों को यहाँ स्पष्ट करने का प्रयास, इस अध्ययन में किया जाएगा। वस्तुतः यह किताब लेख लिखने से शुरू हुई थी। बौद्धधर्म पर 24 पृष्ठों का लेख लिखने के बाद कँवल ने आर्य सिद्धांत एवं अछूतोद्धार पर भी अलग से लेख लिखें, जिससे यह छोटे-छोटे तीन अध्यायों की किताब बन गयी। इस बात को वे परिचय में लिखते हैं।

कँवल भारती लिखते हैं– "भारत में आधुनिक बौद्धधर्म तीन महान व्यक्तियों का ऋणी है। यानी जिस बौद्धधर्म को ब्राह्मणवाद ने भारत की धरती से खदेड़ दिया था, उन्नीसवीं शताब्दी में उसका पुनरुद्धार तीन महान लोगों ने किया। ये महान लोग थे–अनागरिक धर्मपाल, महापंडित राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर।"[379] इस उद्धरण में तीन लोगों का नाम है,

[379] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 15

जिन्होंने अपनी सीमाओं में बौद्ध धर्म के लिए काम किया है। कँवल भारती उनके नामों का उल्लेख करते हैं और साथ ही बौद्ध धर्म के इतिहास में उनके कार्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस बात से लोग परिचित हैं कि राहुल सांकृत्यायन ने बौद्ध साहित्य को विस्तृत किया है। कँवल भारती के शब्दों में कहें तो, "राहुल सांकृत्यायन को लुप्त बौद्ध साहित्य की खोज करने का श्रेय जाता है। उन्होंने तिब्बत की यात्रा की और वहाँ से 18 खच्चरों पर लाद कर बौद्ध साहित्य भारत लाये, जो पटना के संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। यह साहित्य तिब्बती भाषा में है, जिसका उन्होंने संस्कृत और फिर हिंदी में अनुवाद किया।"[380] डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर भारत में इस धर्म के लिए समुदाय का निर्माण किया है। वहीं अनागरिक धर्मपाल का नाम एवं कार्य बौद्ध धर्म के संदर्भ में उतना ही महत्त्व रखता है जितना राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर का नाम व कार्य। वे श्रीलंका के थे। कँवल की माने तो 'वे 1891 में भारत आए थे और यहाँ सारनाथ और बोधगया की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिए यहीं रुक गए थे।' जो बात कँवल इनके संदर्भ में रेखांकित करते हैं, वह है- "सारनाथ में उन्हीं के नेतृत्व में खुदाई का कार्य किया गया था और उसी खुदाई के परिणाम स्वरूप आज के धम्मेख स्तूप का अस्तित्व सामने आया था। बोध गया का मंदिर बौद्धों को सौंपे जाने की लड़ाई भी उन्होंने ही लड़ी थी, जो आज अभी तक जारी है।... धर्मपाल जी दर्शन और इतिहास के लेखक नहीं थे, पर भारत में प्राचीन बौद्ध स्थलों को खोजने और उनका पुनरुद्धार करने का एक मात्र श्रेय उन्हीं को जाता है।"[381]

इन तीन महान लोगों ने बौद्ध धर्म का पुनरुद्धार किया है। राहुल सांकृत्यायन बौद्ध धर्म पर अपने क्या विचार रखते हैं? उसे किस रूप में कँवल भारती रखते हैं, इस बात को समझने की कोशिश करते हैं। राहुल सांकृत्यायन और आंबेडकर के बारे में एक जगह कँवल लिखते हैं – "राहुल सांकृत्यायन साधु से आर्य समाजी और फिर बौद्ध बने और अंत में कम्युनिस्ट हो

[380] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 15
[381] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 15

गये थे, जबकि डॉ. आंबेडकर प्रगतिशील हिंदू रहे और बाद में उन्होंने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था।"[382] राहुल सांकृत्यायन श्रीलंका में 19 मास तक रहे। यहीं वे बौद्ध धर्म से प्रभावित होते हुए दिखाई देते हैं। अपनी मनःस्थिति का वर्णन वे अपनी आत्मकथा में करते हैं, जिसे कँवल भारती भी उद्धृत करते हैं – "फिर राख में छिपे अंगारों या पत्थरों से ढंके रत्न की तरह बीच-बीच में आते बुद्ध के चमत्कारिक वाक्य मेरे मन को बलात् अपनी ओर खींच लेते थे। जब मैंने कालामों को दिए गये बुद्ध के उपदेश – किसी ग्रंथ, परम्परा, बुजुर्ग का ख़्याल कर उसे मत मानो, हमेशा खुद निश्चय करके उस पर आरूढ़ हो- को सुना, तो हठात् दिल ने कहा – यहाँ है एक आदमी, जिसका सत्य पर अटल विश्वास है, जो मनुष्य की स्वतंत्र्य बुद्धि के महत्त्व को समझता है। जब मैंने मज्झिम निकाय में पढ़ा – बेड़े की भांति मैंने तुम्हें धर्म का उपदेश किया है, वह पार उतरने के लिये है, सिर पर ढोये-ढोये फिरने के लिये नहीं; तो मालूम हुआ, जिस चीज़ को मैं इतने दिनों से ढूँढ़ता फिर रहा था, वह मिल गयी।"[383] (राहुल सांकृत्यायन मेरी जीवन यात्रा, खंड 1, पृ. सं. 7-8)

मज्झिम निकाय की यह उपर्युक्त बात उनके मन में बस चुकी थी। इसी कारण, बौद्ध धर्म के अध्ययन के क्रम में, आर्य समाज के प्रभाव के साथ-साथ ईश्वर भी उनसे छूटते चले गए ऐसा कह सकते हैं। कँवल भारती यह बात लिखते समय 'वेद' शब्द को भी जोड़ देते हैं, प्रत्युत यह शब्द मूल ग्रंथ में नहीं है। कँवल भारती उसे इस रूप में लिखते हैं – "अब ईश्वर और वेद भी उनसे छूट गये थे।"[384] जिस बात को कँवल भारती आगे रेखांकित करते हैं, वह सांकृत्यायन की आत्मकथा में लिखित है, उसे ही मूल रूप में यहाँ उद्धृत करना समीचीन दिखाई देता है। वह इस प्रकार से है– "बौद्ध-धर्म नास्तिक है, अनीश्वरवादी है– इसे मैंने संस्कृत ग्रंथों में पढ़ा था, किंतु वहाँ वह घृणा-प्रदर्शन के लिए ख़ास तौर से इस्तेमाल किया गया था...

[382] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 47
[383] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 17
[384] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 17

अब तक मुझे यह नहीं मालूम था, कि मुझे बुद्ध और ईश्वर में से एक को चुनने की चुनौती दी जायेगी। मैंने पहिले कोशिश की, ईश्वर और बुद्ध दोनों को साथ ले चलने की; किंतु उस पर पग-पग पर आपत्तियाँ पड़ने लगीं। दो-तीन महीने के भीतर ही मुझे यह प्रयत्न बेकार मालूम होने लगा।... ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते, यह साफ़ हो गया, और यह भी स्पष्ट मालूम होने लगा, कि ईश्वर सिर्फ़ काल्पनिक चीज़ है, बुद्ध यथार्थवक्ता है। तब कई हफ़्तों तक हृदय में एक दूसरी बेचैनी पैदा हुई है। - मालूम होता था, चिरकाल से चला आता एक भारी अवलम्ब लुप्त हो रहा है। किंतु मैंने हमेशा बुद्धि को अपना पथप्रदर्शक बनाया था, और कुछ ही समय बाद उन काल्पनिक भ्रांतियों और भीतियों का ख़्याल आने से अपने भोलेपन पर हँसी आने लगी।"[385]

राहुल सांकृत्यायन यहाँ बुद्ध से प्रभावित दिखाई देते हैं। बुद्ध की वह बात जो इंसान की स्वतंत्र बुद्धि को महत्त्व देती है, ज़्यादा प्रभावित करती हुई दिखाई देती है। धर्म के संदर्भ में सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर की दृष्टि में फ़रक था, इसे कँवल भारती रेखांकित करते हैं। वे लिखते हैं कि, "राहलु सांकृत्यायन एक धर्मगुरु या धर्मप्रचारक की भूमिका त्याग कर दुनिया को बदलने की भूमिका में उतरे थे, तो धर्म को देखने की उनकी दृष्टि वही नहीं रह गयी थी, जो एक सनातनी और आर्य समाजी प्रचारक की होती है। वे लाखों दीन-दुखियों के हित में धर्म के सिद्धांतों को अलौकिक नहीं, लौकिक आधार पर परखने लगे थे। इसलिए जनता के सामाजिक और आर्थिक शोषण पर जीवित रहने वाले धर्म उनके लिए घृणास्पद थे।"[386] यह बात बहुत ही सच प्रतीत होती है। राहुल जी अपनी आत्मकथा में एक जगह लिखते हैं, जिससे यह बात और स्पष्ट होगी। वे लिखते हैं – "मैं बौद्ध धर्म का पक्षपाती था। साथ ही दूसरे

[385] राहुल सांकृत्यायन – मेरी जीवन-यात्रा, खंड 2, पृ. सं. 8-9
[386] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 20

धर्मों का धर्म के ख़्याल से विरोधी नहीं था; लेकिन मैं यह ज़रूर समझता था कि ईश्वरवादी धर्म जन-हित और विश्वप्रगति के विरोधी है।"[387]

राहुल सांकृत्यायन का यहाँ धर्म के प्रति दृष्टिकोण मार्क्सवादी है, यह कहा जा सकता है। वहीं डॉ. आंबेडकर की धर्म संबंधी दृष्टि को कँवल इस रूप में रखते हैं – "डॉ. आंबेडकर धर्म को अछूतों की दृष्टि से देखते थे। वे हिंदू धर्म का विरोध इसी आधार पर करते थे कि वह सामाजिक अलगाववाद का समर्थन करता है और मानवता के एक विशाल समुदाय को समस्त मानवाधिकारों से वंचित रखता है। वे दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार करने की शिक्षा देने वाले हिंदूधर्म को धर्म के नाम पर कलंक मानते थे।"[388] हिंदू धर्म के संदर्भ में डॉ. आंबेडकर की यह बात सच है। वे 'अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने' इस किताब में यह बात लिखते हैं। छुआछूत और सामाजिक अलगाव के संदर्भ को और विस्तृत रूप में जानने के लिए डॉ. आंबेडकर की यह बात काफ़ी सहायक हो सकती है। वे लिखते हैं – "हिंदू समाज का आदेश है कि सब अछूत पृथक बसें। हिंदू अछूतों की बस्ती में नहीं रहेगा और वह अछूतों को अपनी बस्ती में रहने भी नहीं देगा। हिंदू छुआछूत को मानते हैं उसका वह महत्त्वपूर्ण अंग है। यह सामाजिक बहिष्कार मात्र नहीं है, थोड़े समय के लिए सामाजिक व्यवहार का बंद कर देना भी नहीं है। यह तो मुकम्मल क्षेत्रीय पार्थक्य (अलगाव) का उदाहरण है, अछूतों को एक कांटेदार तार के घेरे में अर्थात् एक पिंजरे में बंद कर देना है। हर हिंदू गांव में अछूतों के टोले हैं। हिंदू गांव में रहते हैं, अछूत गांव से बाहर टोले में बसते हैं।"[389]

धर्म के प्रति राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. आंबेडकर का दृष्टिकोण भिन्न है और यह बौद्ध धर्म के प्रति विशेषतः कैसा है, यह भी देखना ज़रूरी। कँवल भारती ने इस बात को तो स्पष्ट लिखा ही है कि राहुल मार्क्सवादी तथा डॉ. आंबेडकर अछूतों के दृष्टिकोण से धर्म को

[387] राहुल सांकृत्यायन – मेरी जीवन-यात्रा, खंड 2, पृ. सं. 153

[388] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 20

[389] डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, भाग – 14, पृ. सं. 31

देख रहे थे। हिंदू धर्म के संदर्भ में एक सूक्ष्म अंतर राहुल और आंबेडकर के दृष्टिकोण में है, वह कँवल के शब्दों में, "राहुल भले ही यह नहीं देख सके थे कि ब्राह्मण हिंदू धर्म और उसकी व्यवस्था को क्यों पसंद करते थे और क्यों उसमें कोई सुधार नहीं चाहते थे? किंतु, आंबेडकर ने यह अच्छी तरह देख लिया था कि हिंदुओं की वर्णव्यवस्था ब्राह्मणों के लिये स्वर्ग की व्यवस्था है, जिसमें वे सबसे श्रेष्ठ और सबसे पूज्य बने हुए हैं।"[390] इस बात के प्रमाण हिंदू धर्म ग्रंथों में अति सहज रूप में दिखाई दे सकते हैं। 'मनुस्मृति' प्रमाण के रूप में देख सकते हैं।

कँवल भारती इस बात को सामने लाते हैं कि बुद्ध के जीवन-दर्शन संबंधी राहुल सांकृत्यायन पारंपारिक दृष्टिकोण से ही सोचते थे। वहीं, वे डॉ. आंबेडकर के बारे में लिखते हैं कि आंबेडकर उसको (बुद्ध के जीवन- दर्शन) तर्क की कसौटी पर कसते हैं और उसके मूल में राजनैतिक कारण मानते हैं। राहुल ने बुद्ध की प्रव्रज्या के लिए वृद्ध, रोगी, मृत और संन्यासी के दृश्यों को कारण मानते हैं जो पारंपारिक है। राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं – "वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित (संन्यासी) के दृश्यों को देख उनकी संसार से शक्ति पक्की हो गई, और एक रात चुपके से वह घर से निकल भागे।"[391] डॉ. भदन्त आंदन कौसल्यायन के माने तो यह कथा त्रिपिटक में कहीं भी उल्लेखित नहीं है। वहीं डॉ. आंबेडकर बुद्ध की प्रव्रज्या को तर्क की कसौटी पर कसते हैं। इसका जिक्र कँवल करते हैं। डॉ. आंबेडकर लिखते हैं- "जिस समय सिद्धार्थ (बुद्ध) ने प्रव्रज्या (गृहत्याग) ग्रहण की, उस समय उनकी आयु 29 वर्ष की थी। यदि सिद्धार्थ ने इन्हीं तीन दृश्यों (वृद्ध, रोगी और मृतक) को देखकर प्रव्रज्या ग्रहण की, तो यह कैसे हो सकता है कि 29 वर्ष की आयु तक सिद्धार्थ ने कभी किसी बूढ़े, रोगी तथा मृत व्यक्ति को देखा ही न हो? ये जीवन की ऐसी घटनाएँ हैं, जो रोज ही सैकड़ों, हजारों घटती रही हैं और सिद्धार्थ ने 29 वर्ष की आयु होने से पहले भी इन्हें देखा ही होगा। इस परम्परागत मान्यता को स्वीकार करना असंभव है कि 29 वर्ष की आयु होने तक सिद्धार्थ ने एक बूढ़े, रोगी और मृत

[390] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 22
[391] राहुल सांकृत्यायन – महामानव बुध्द, पृ. सं. 9

व्यक्ति को देखा ही नहीं था और 29 वर्ष की आयु होने पर ही प्रथम बार देखा। यह व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसने पर खरी उतरती प्रतीत नहीं होती।"[392]

बुद्ध के आर्य सत्य पर भी दोनों विद्वानों के अलग मत हैं, इस बात को कँवल रेखांकित करते हैं- "राहुल लिखते हैं – यहाँ उन्होंने (बुद्ध ने) दुख और उसकी जड़ को समाज में न ख़्याल कर व्यक्ति में देखने की कोशिश की। भोग की तृष्णा के लिये राजाओं, क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों सारी दुनिया को झगड़ते, मरते-मारते देख भी उस तृष्णा को व्यक्ति से हटाने की कोशिश की। उनके मतानुसार मानो, कांटों से बचने के लिये सारी पृथ्वी को तो नहीं ढका जा सकता है, हां अपने पैरों को चमड़े से ढांक कर कांटों से बचा जा सकता है।... तो भी, वैयक्तिक सम्पत्ति की बुराईयों को वह जानते थे, इसीलिये जहाँ तक उनके अपने भिक्षु संघ का संबंध था, उन्होंने उसे हटा कर भोग में पूर्ण साम्यवाद स्थापित करना चाहा।"[393]

कँवल लिखते हैं कि ऐसी भौतिक व्याख्या डॉ. आंबेडकर ने नहीं की, वे (डॉ. आंबेडकर) मानते थे कि बुद्ध के बाद उनके वचनों में ब्राह्मणों ने हेर-फेर की। उन्होंने बुद्ध वचनों को अपने अनुकूल बना दिया, यह काम इसलिए किया ताकि आम जनता के लिए वे दुष्कर हो जायें। धर्म के संबंध में डॉ. आंबेडकर का मत भिन्न था। वे जीवन और सामाजिक आचरण के लिए उसे आवश्यक मानते थे। 2 मई 1950 में दिल्ली में एक जनसभा को संबोधित करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि समाजवादियों और साम्यवादियों की भाँति वे इस बात में विश्वास नहीं रखते कि धर्म व्यर्थ है। उन्होंने साफ़ शब्दों में कहा कि "मैं मानता हूँ मनुष्य के लिए धर्म आवश्यक है। जब धर्म समाप्त हो जाएगा, तो समाज का भी अंत हो जाएगा।... आखिरकार कोई भी सरकार, मानव जाति की रक्षा और उन्हें अनुशासित नहीं कर सकती है जैसा कि धर्म एवं नीति करने में समर्थ हैं।"[394]

---

[392] डॉ. बी. आर. आंबेडकर – बुध्द और उनका धम्म, (अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन), पृ. सं. परिचय

[393] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 29

[394] डॉ. बाबासाहेब संपूर्ण वाङ्मय, भाग -37, पृ. सं. 382

कँवल की माने तो, राहुल सांकृत्यायन समझते थे कि ‘यह धर्म सामाजिक विद्रोह के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति को स्थापित करने के लिए बहुत सहायक साबित होगा।’ शायद इसलिए वे अपनी किताब में ‘बौद्ध धर्म की व्यापारियों ने ज़्यादा सहायता की क्योंकि वह आर्थिक व्यवस्था के ख़िलाफ़ नहीं गया था’ ऐसा उनका कहना है। उन्हीं के शब्दों में – “सच तो यह है कि बुद्ध के धर्म को फैलाने में राजाओं से भी अधिक व्यापारियों ने सहायता की। यदि बुद्ध तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के ख़िलाफ़ जाते तो यह सुभीता कहाँ से हो सकती थी?”[395]

बौद्ध धर्म के संदर्भ में डॉ. आंबेडकर के मत को स्पष्ट करने के लिए कँवल भारती, ‘क्रांति-प्रतिक्रांति’ किताब से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, इस किताब में डॉ. आंबेडकर लिखते हैं– “यह उतनी महान क्रांति थी, जितनी कि फ्रांस की क्रांति थी। यद्यपि यह धार्मिक क्रांति के रूप में प्रारंभ हुई, तथापि यह धार्मिक क्रांति से बढ़कर थी। यह सामाजिक और राजनैतिक क्रांति बन गई थी। वे लिखते हैं कि इस क्रांति के महत्त्व को तभी समझा जा सकता है, जब क्रांति से पहले के भारतीय समाज की भयानक स्थिति और सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक रूप से निकृष्ट, विलासिता में डूबे हुए बुद्धकालीन आर्य समुदाय का चित्र आपके सामने होगा।”[396]

राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर के ‘आर्य सिद्धांत’ को लेकर क्या विचार थे, इस पर भी तुलनात्मक लेखन कँवल ने किया है। आर्य इस देश में बाहर से आए या भारत के ही हैं? इस संदर्भ में अनेक विद्वानों के अनेक मत-प्रवाह हैं। कँवल इस संदर्भ में एक बात लिखते हैं, वह यह है कि- “दलित नवजागरण के समय में जो दलितों को रटया गया था, वह था यह हतिहासबोध कि हमलावर आर्यों ने भारत में आकर यहाँ के मूल निवासियों पर धावा बोला और उन्हें हरा कर अपने अधीन कर दास बना लिया, वहीं दास आज के शूद्र और

[395] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. सं. 510
[396] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 33

अछूत हैं।"[397] इस बात के लिए वे राहुल सांकृत्यायन की किताब - ऋग्वेदिक आर्य, महात्मा ज्योतिराव फुले की 'गुलामगीरी', चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु की 'भारत के आदि निवासियों की सभ्यता', बोधानन्द महास्थिविर की 'मूल भारतवासी और आर्य' आदि को आधार बनाते हैं। वे मानते हैं कि इन्हीं किताबों ने भारत में आर्य बाहर से आए इस धारणा को आधार दिया है। इनकी किताबों ने 'दलित वर्गों के मानस पर यह छाप छोड़ने में अमिट प्रभाव डाला था कि भारत के करोड़ों शूद्र और अछूत भारत के उन मूल निवासियों की संतान हैं, जो कि प्रागैतिहासिक काल में इस देश में स्वच्छन्दता से निवास करते थे और इस भूमि के स्वामी थे।'

'ऋग्वेदिक आर्य' में सांकृत्यायन लिखते हैं कि आर्य भारत से आए हैं। वे इस बात के लिए भाषा को आधार मानते हैं। वे लिखते हैं- "आर्य भारत में बाहर से आए, यदि यह न माना जाए, तो आर्यों की भाषा पश्चिम की जिन भाषा वालों से अपना एक पारिवारिक संबंध बतलाती है, उन्हें भी भारत से गया मानना होगा। इसके कारण और अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होगी, जिनका समाधान अति कठिन है।"[398] और एक जगह वे आर्य कहाँ से आए इस संदर्भ में लिखते हैं – "भारतीय आर्य हिंदी-यूरोपीय वंश की पूर्वी या शतम्-शाखा के अंतर्गत आते हैं जिसमें ही रूसी आदि स्लाव और ईरानी भी सम्मिलित हैं।..आर्यों के मुँह से इन मूर्धन्य वर्णों का उच्चारण सप्त-सिंधु के पुराने निवासियों-मोहनजोदडो, हडप्पा के लोगों- के घनिष्ठ संपर्क के कारण ही हुआ। ईरानी आर्य अपने मूल स्थान 'आर्याना बेइजा' का स्मरण रखते थे, पर भारतीय आर्य उसे भूल गये थे, यह ऋग्वेद के मौन-धारण से मालूम होता है। इसमें यह भी कारण हो सकता है, कि उनका प्रसार बीच के स्थानों को छोड़कर नहीं हुआ, इसलिए उन्हें मूल-स्थान से निर्वासित होने का ख़्याल नहीं हो सकता था। आखिर ऋग्वेदिक आर्यों के सबसे पश्चिम में रहने वाले पख्त, भलान आदि जन भारत के पश्चिमी द्वार खैबर और बोलन के काफ़ी

[397] कँवल भारती – राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 37
[398] राहुल सांकृत्यायन – ऋग्वेदिक आर्य (ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन), पृ. सं. 1

पीछे तक बसे हुए थे। उनके भी पश्चिम आर्य जन रहे होंगे, पर प्रकरण में न आ सकने के कारण ऋग्वेद के ऋषि उनका नाम-स्मरण नहीं कर सके।"[399]

इस उपर्युक्त उद्धरण से जो बात सामने आती है वह यह कि कँवल भारती के शब्दों में कहे तो लगता है "राहुल जी ने अटक लगायी है और सब बातों को छोड़कर केवल भाषा को आधार बनाया है।"[400] यहाँ एक बात और आर्यों ने शूद्रों के साथ भेदभाव क्यूँ किया? इसका उत्तर राहुल वर्ण एवं रंग के आधार पर देते हैं। कँवल ने सांकृत्यायन की इस बात को भी रेखांकित किया है, वह मूल रूप में इस प्रकार से है- "आर्यों को रक्त-सम्मिश्रण का डर कितना था, इसका अंदाज हमें अमेरिका के नीग्रों और श्वेतांगों से लग सकता है। आर्यों ने वर्ण भेद की खाई को सुदृढ़ रखने की कोशिश की। यद्यपि वर्ण-रंग का इस तरह का भेदभाव हमारी जातियों में आज बिल्कुल नहीं मिलता। ब्राह्मण भी कोयले से काले मिलते हैं, और शूद्र या अछूत अच्छे खारे गोरे।"[401]

इस अध्ययन में जो कमी है, कँवल भारती की बात को माने तो, वह यह है कि- राहुल सांकृत्यायन भाषा को आधार बनाते हैं और शूद्रों से भेदभाव के संबंध में रंग को आधार बनाते हैं। डॉ. आंबेडकर इस संदर्भ में क्या सोचते थे, इस बात को उनकी किताब 'शूद्र कौन थे' में देखा जा सकता है। कँवल भारती ने तुलना के लिए इसी किताब को आधार भी बनाया है। डॉ. आंबेडकर आर्यों को बाहर से आया हुआ नहीं मानते हैं जबकि ज्योतिराव फुले आर्यों को बाहर से आया हुआ मानते हैं। वे लिखते हैं कि, "ब्राह्मण लोक हे समुद्राचे पलिकडेस जो इराण देश आहे त्या देशातील मूळचे राहणारे होत."[402] (ब्राह्मण लोग समुद्र के पार जो ईरान देश है उस देश के मूल रहने वाले थे।)

---

[399] राहुल सांकृत्यायन – ऋग्वेदिक आर्य (ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन), पृ. सं. 2
[400] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 38
[401] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 39
[402] महात्मा जोतिराव फुले - गुलामगिरी, पृ. सं. 37

डॉ. आंबेडकर इस धारणा को भ्रामक मानते हैं। कँवल ने उन्हें उद्धृत किया है- "वे (आंबेडकर) इस बात का जबरदस्त खंडन करते हैं। उनका कहना है कि आर्य एक भाषा है। आर्य शब्द का संबंध न रक्त से है, न शारीरिक ढाँचे से, न बालों से और न कपाल से है। जो आर्य भाषा बोलते हैं, वे ही आर्य हैं।"[403] डॉ. आंबेडकर तिलक की इस बात का खंडन करते हैं कि आर्य आर्कटिक क्षेत्र के हैं। इस संदर्भ में डॉ. आंबेडकर लिखते हैं – "...आर्यों का प्रिय प्राणी। वह उनके जीवन और धर्म से बड़ी गहनता से जुड़ा है। वह है अश्व जिसका अश्वमेघ यज्ञ से प्रमाण मिलता है। प्रश्न है कि क्या आर्कटिक क्षेत्र में घोड़ा विद्यमान था? यदि उत्तर नकारात्मक है तो आर्कटिक क्षेत्र का सिद्धांत संदिग्ध है।"[404]

वर्णव्यवस्था का आधार रंगभेद जो मानते हैं, उनका भी खंडन डॉ. आंबेडकर करते हैं। इस बात को कँवल उद्धृत करते हैं – "आंबेडकर ने इन सारी परिकल्पनाओं को निराधार और हास्यास्पद अटकलों पर आधारित बताया है। वे कहते हैं कि यदि वर्णव्यवस्था रंगभेद का पर्याय होती, तो जातीय भेदभाव का आधार रंग होता, न कि जाति और चारों वर्णों के चार ही रंग होने चाहिए थे।"[405]

इस पूरे मूल्यांकन में कँवल भारती अपना मत कम ही देते हैं पर दो विद्वानों के विचारों में जो फ़रक, अंतर है उसे स्पष्ट रूप में रखने से नहीं चूकते हैं। 'अछूतोद्धार' वह बिंदु है जिसके बल पर किसी भी विद्वान का दलितों के प्रति दृष्टिकोण कितना रूढ़िवादी या प्रगतिशील रहा है, इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर की तुलना इस बिंदु पर कँवल भारती करते हैं। इस संदर्भ में इन विद्वानों के क्या मत थे और इस संदर्भ में कँवल अपना क्या विचार रखते हैं इस बात को देखा जाना उचित है।

[403] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 40
[404] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड – 13 (शूद्र कौन थे), पृ. सं. 61
[405] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 43

डॉ. आंबेडकर एवं राहुल सांकृत्यायन दोनों भी समकालीन रहे हैं। कँवल की माने तो, 'दोनों को एक-दूसरे से मिल भेंटने के अवसर बहुत कम मिले थे, शायद एकाध अवसर ही।' पर जो बात कँवल ने कही है वह महत्त्व रखती है। वह यह है कि, "समाजवाद पर आधारित उनकी (राहुल) प्रसिद्ध पुस्तकें 'साम्यवाद ही क्यों', 'दिमागी गुलामी', 'तुम्हारी क्षय' और 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' भी 1934 और 1944 के बीच प्रकाशित हुईं थीं। इन पुस्तकों में अछूतोद्धार का जिक्र तो मिलता है, पर वह जिक्र आंबेडकर के आंदोलन से पूरी तरह अनभिज्ञ दिखायी देता है। इन पुस्तकों में अछूतों का जिक्र भी सतही तौर पर हुआ है। समकालीन कम्युनिस्ट धारा वर्ग-संघर्ष की थी। जाति के सवाल को वह उसी में शामिल मानती थी।"[406] इस उद्धरण से कुछ बातें सामने आती हैं- आंबेडकर के नेतृत्व में जो दलित आंदोलन हुए उससे सांकृत्यायन अनभिज्ञ थे। दूसरी बात यह भी कि कम्युनिस्ट धारा ने वर्ग संघर्ष पर ज़्यादा जोर दिया और यह माना कि जाति का प्रश्न इसी के अंतर्गत आता है। अब इस बात पर यह कहा जा सकता है कि राहुल भी इसी दिशा में अछूतोद्धार को देख रहे थे। राहुल सांकृत्यायन समकालीन कम्युनिस्ट विचारकों में सबसे ज़्यादा प्रगतिशील और क्रांतिकारी कँवल भारती को नज़र आते हैं। क्यूँ इसलिए कि उन्होंने ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म की दकियानूसी रीतियों का खंडन किया था।

अछूतों के पेशों को लेकर एक बात राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा में लिखी है। वह है – "सत्ताईस बरस पहिले भर लोग सुअर पाला करते थे, मगर अब-सारे जिले में और आसपास के दूसरे जिलों में भी उन्होंने सुअर पालना बिलकुल छोड़ दिया है। इससे समाज में उनका स्थान पहिले से कुछ ऊँचा हुआ है, इसका तो मुझे पता नहीं, हाँ जीविका के एक साधन से वे वंचित ज़रूर हो गये। सुअरी एक-एक बार में बीस-बीस बच्चे देती है और साल में तीन बार। पुष्ट भोजन और पैसे की आमदनी का यह एक अच्छा ज़रिया था।"[407] इस पर

[406] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 47
[407] राहुल सांकृत्यायन – मेरी जीवन यात्रा -2, पृ. सं. 637

कँवल ने लिखा है कि 'यह टिप्पणी अछूतोद्धार की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। गंदे पेशों को छोड़ना ही उस समय मुख्य अछूत आंदोलन था।' यहाँ कँवल की बात में समकालीन दलित आंदोलन की स्पष्ट छवि है। इन पेशों से संबंधित बात डॉ. आंबेडकर ने भी कही है। जब 'केसरी' जैसे वर्तमान पत्र से अछूतों को मृत पशुओं से जो आमदनी होती है, उसके लाभ गिनाने शुरू हुए थे, उन्हें बरगलाना शुरू किया गया था। ऐसे में डॉ. आंबेडकर जो बात कहते हैं उसे कँवल इस संदर्भ में रेखांकित करते हैं। डॉ. आंबेडकर कहते हैं – 'अरे भले लोगों, तुम हमारे लाभ की चिंता क्यों करते हो? अपना लाभ हम खुद सोच लेंगे। अगर तुम्हें इस काम में भारी लाभ दिखायी देता है, तो तुम अपने संबंधियों को क्यों नहीं सलाह देते कि वे मरे हुए पशुओं को उठाकर पांच-छह सौ रुपया वार्षिक कमा लिया करें। यदि वे ऐसा करें तो इस लाभ के अलावा उन्हें पांच सौ रुपया इनाम मैं खुद दूँगा, तुम जानते हुए इस मुनाफे को क्यों छोड़ते हो?'[408] डॉ. आंबेडकर की उपर्युक्त बात पर आज भी अपवाद स्वरूप ही कोई तैयार हों। अछूतों को गंदे कार्य करने के लिए बाधित किया गया, जिसका विरोध उन्होंने किया और जो इन पेशों से होने वाले आर्थिक लाभ के बारे में बता रहे थे, उन्हें ही चुनौती दी थी।

साम्यवाद पर राहुल सांकृत्यायन की एक टिप्पणी है जिसे कँवल भारती ने प्रस्तुत किया है- "साम्यवादी एक नया संसार, एक नया समाज बनाना चाहते हैं, इसलिये उन्हें हर तरह की कुर्बानियों के लिये तैयार रहना चाहिए। अगर आप शादी-ब्याह अपनी जाति में रखना चाहते हैं, अगर आप मुण्डन और जनेऊ अपनी जाति के रिवाज के मुताबिक करना चाहते हैं, अगर आप खान-पान में स्वयं पाकी रहना चाहते हैं तो आप जैसे साम्यवादी से साम्यवाद को नुकसान ही पहुँचेगा।"[409] यह बात वे 'दिमागी गुलामी' में लिखते हैं। यहाँ राहुल सामाजिक बंधनों को बरकरार रखकर सामाजिक परिवर्तन की बात करने वालों को साम्यवादी नहीं मान रहे हैं। साम्यवादी होने के लिए आप को पहले जाति के बंधन को तोड़ना

[408] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 48
[409] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 50

होगा। यह बात काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। जबकि ये बातें कँवल भारती की शब्दों में कहे तो, 'साम्यवाद और साम्यवादियों के बारे में जितनी बातें कही हैं, वे सारी बातें आंबेडकर भी 1936 में अपने बहुचर्चित भाषण 'जाति का विनाश' में कह चुके थे।' कँवल भारती उदाहरण स्वरूप डॉ. आंबेडकर की बात को उद्धृत करते हैं। 'जाति का विनाश' में वह बात कुछ इस प्रकार है – "समाज व्यवस्था में बदलाव लाये बग़ैर विकास की संभावनाएँ अत्यंत क्षीण हैं। आप समाज को रक्षा या अपराध के लिये प्रेरित कर सकते हैं। लेकिन जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकते - आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते, आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई निर्माण करेंगे, वह चटक जाएगा और कभी भी पूरा नहीं होगा।"[410]

राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. आंबेडकर दोनों में समानताएँ भी थीं। जैसे, राहुल मानते हैं- 'शुद्ध राष्ट्रीयता तब तक आ ही नहीं सकती, जब तक आप जाति-पांति तोड़ने पर तैयार न हों।' डॉ. आंबेडकर के मत से यहाँ राहुल सांकृत्यायन सहमत दिखाई देते हैं। वहीं खेतिहर-मज़दूरों की आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है ऐसा राहुल सांकृत्यायन मानते हैं। कँवल लिखते हैं– "आंबेडकर समाजवादी थे और राहुल साम्यवादी। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समाजवाद के रास्ते ही साम्यवाद आयगा।"[411]

राहुल सांकृत्यायन अछूतों के आर्थिक स्वतंत्रता के पक्षधर दिखाई देते हैं। उनके इस पक्ष को कँवल रेखांकित करते हैं, वे (राहुल) लिखते हैं– "आर्थिक स्वतंत्रता ही सभी स्वतंत्रताओं की जननी है और उस स्वतंत्रता की छाया भी इन अभागों (अछूतों) से दूर रखी जाती है तो उनके उज्जवल भविष्य की आशा हम क्योंकर कर सकते हैं।"[412] जो बुनियादी फ़रक दोनों विद्वानों में रहा है वह कँवल भारती के शब्दों को उधार लेकर कहा जाए तो,

[410] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 48
[411] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 53
[412] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 57

"1944 में प्रकाशित राहुल की पुस्तक 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' में भी मरकस बाबा (मार्क्स) के रास्ते का जिक्र तो है, पर यह जिक्र नहीं है कि मरकस बाबा जाति की दीवारों और अस्पृश्यता को कैसे ध्वस्त करेंगे?' राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर में यही एक बात बुनियादी फ़रक है कि राहुल केवल आर्थिक क्रांति की बात करते हैं, जबकि डॉ. आंबेडकर का विचार है कि सामाजिक क्रांति के बिना कोई क्रांति नहीं हो सकती, न राजनैतिक और न आर्थिक।"[413]

यह तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट रूप से दोनों विद्वानों के बौद्ध धर्म, आर्य सिद्धांत एवं अछूतोद्धार इन बिंदुओं पर तुलना कर, समानता के साथ-साथ बुनियादी फ़रक को भी सामने ले आता है। एक साम्यवादी व्यवस्था में विश्वास करने वाले हैं, तो दूसरे समाजवादी। एक के लिए धर्म महत्त्वपूर्ण नहीं है, लेकिन एक के लिए वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक आर्यों को भाषायी आधार पर बाहरी मानते हैं और एक आर्यों को इसी मूल के सिद्ध करते हैं।

5.2 समाजवादी आंबेडकर :

कँवल भारती की 'समाजवादी आंबेडकर' किताब डॉ. बी. आर. आंबेडकर के उन विचारों को सामने लाती है जो समाजवादी हैं। इस बात को इस रूप में भी कह सकते हैं कि कँवल भारती की यह किताब आंबेडकर को समाजवादी सिद्ध करती है। वे (आंबेडकर) अपने पूरे जीवन संघर्ष में सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ समाजवादी अर्थव्यवस्था को स्थापित करने के लिए संघर्षरत रहे हैं। जाति-विहीन एवं वर्ग विहीन समाज की स्थापना उनके जीवन का उद्देश्य रहा है। कँवल की यह किताब 'समाजवाद के लिए बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के संपूर्ण जीवन-संघर्ष को उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करती है।'

[413] कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर, पृ. सं. 62

'समाजवाद' (Socialism) एक ऐसा दर्शन है जो समाज में आर्थिक समानता के लिए बल देता है। व्यक्तिगत संपत्ति का विरोध यह करता है और उत्पादन एवं वितरण की प्रक्रिया के सभी अधिकार राज्य के हाथों में रखने के पक्ष में रहता है। "समाजवाद अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्द 'सोशालिज्म' का हिंदी रूपांतर है। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाद के विरोध में और उन विचारों के समर्थन में किया जाता था जिनका लक्ष्य समाज के आर्थिक और नैतिक आधार को बदलना था और जो जीवन में व्यक्तिगत नियंत्रण की जगह सामाजिक नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे।"[414] फ्रांसीसी विचारकों सैं-सिमों, चार्ल्स फ़ूरिए तथा ब्रिटिश चिंतक राबर्ट ओवेन की निष्पत्तियों से समाजवाद की आधुनिक और औपचारिक परिकल्पना निकलती है, ऐसा माना जाता है।

भारत के संदर्भ में समाजवाद की संकल्पना बहुत पुरानी है। कँवल के शब्दों में कहें तो "भले ही 'समाजवाद' का शब्द कम्युनिस्ट आंदोलन से आया हो, पर वह भारत में समाजवाद का उद्भावक नहीं है। भारत में समाजवाद की चिंतन-परंपरा मार्क्स से भी कई हजार वर्ष पुरानी है। वह यहाँ भौतिकवादी विचारधारा के रूप में विद्यमान रही है, जिसका विकास हमें लोकायत से लेकर बौद्धदर्शन और दलित संतो से लेकर डॉ. आंबेडकर तक में दिखायी देता है।"[415] यह परंपरा किस पर खड़ी है? कँवल इस बारे में लिखते हैं कि "मौलिक समाजवाद की यह परम्परा धर्म की लौकिक और भौतिक व्याख्या पर खड़ी है और मानव-मानव के बीच समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की स्थापना पर जोर देती है। इसके मूल में श्रमिक संस्कृति प्रतिष्ठित है, जो श्रम करके खाने को धर्म मानती है। इस विचारधारा ने लोक को स्वीकार किया और परलोक का खंडन किया। परलोक के खंडन के साथ ही स्वर्ग-नर्क और अवतारवाद की धारणाएँ भी ख़त्म हो गयीं।"[416]

---

[414] hi.wikipedia.org/wiki/समाजवाद
[415] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 9 (भूमिका)
[416] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 9-10 (भूमिका)

उपर्युक्त उद्धरण में लोकायत से लेकर डॉ. आंबेडकर तक समाजवाद की परंपरा को कँवल मानते हैं। और इसी अर्थ में डॉ. आंबेडकर के जीवन संघर्ष को देखने पर वे समाजवादी नज़र आएँगे, ऐसा वे मानते हैं। यह बात सच प्रतीत होती है क्योंकि उनका (आंबेडकर) पूरा जीवन संघर्ष तो इसी बात की साक्ष्य देता है। कँवल ने इस बात को अपनी विचारधारा की प्रतिबद्धता के साथ उसे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

डॉ. आंबेडकर समाजवादी कैसे हैं, किस रूप में हैं आदि प्रश्नों के उत्तर यहाँ मिल जाते हैं। इसके लिए उनके संघर्षों का मूल्यांकन करना ज़रूरी है। जिससे उनके समाजवाद की संकल्पना स्पष्ट हो सके। 19 और 20 मार्च 1927 को महाड में आंदोलन हुआ। वह पानी के लिए किया गया आंदोलन है। जिसे 'चवदार तालाब आंदोलन' नाम से जाना जाता है। इस आंदोलन को कँवल ने 'सामाजिक समता के लिए संघर्ष' नाम से अभिहित किया है। यह अस्पृश्यों की सीधी लड़ाई का प्रथम चरण था। यह डॉ. आंबेडकर की सामाजिक परिवर्तन के लिए की गई सीधी लड़ाई रही है। सन् 1926 को महाड नगरपालिका ने चवदार तालाब के पानी पर अस्पृश्यों का भी अधिकार है, इसलिए अस्पृश्यों के लिए इसे खोलने का आदेश लाया। पर सवर्ण हिंदुओं के विरोध के कारण कभी वे उसका उपयोग न कर सके।

25, 26 और 27 दिसंबर 1927 को फिर उसी जगह आंदोलन करना पड़ा। डॉ. आंबेडकर ने इस आंदोलन के आशय को समझाते हुए कहा कि ''सत्याग्रह समिति ने आपको चवदार तालाब का पानी पीने के लिए महाड़ बुलाया है, ऐसी बात नहीं है। हम और आप चवदार तालाब का पानी पीकर अमर हो जाएँगे ऐसा भी नहीं है। और आज तक चवदार तालाब का पानी पिए बग़ैर भी हम जिंदा हैं ही। चवदार तालाब पर जाना है तो सिर्फ़ उसका पानी पीने के लिए नहीं। हम वहाँ जा रहे हैं तो यह साबित करने के लिए कि हम भी औरों की तरह इंसान ही हैं। यानी कि, यह सभा समानता की लड़ाई का बिगुल बजाने के लिए बुलाई

गई है यह बात स्पष्ट है।"[417] यहाँ बहुत ही स्पष्ट रूप में कहा गया है कि यह समानता के लिए की गयी लड़ाई है। इस उद्धरण से कँवल भारती का इस आंदोलन को 'सामाजिक समता के लिए संघर्ष' दिया गया शीर्षक उचित जान पड़ता है। इसी सभा में 25 दिसंबर को 'मनुस्मृति' दहन का भी कार्यक्रम संपन्न हुआ था। इस पर डॉ. आंबेडकर ने जो कहा उसे जस-का-तस कँवल रेखांकित करते हैं, "डॉ, आंबेडकर ने टी.वी. पर्वते के साथ बातचीत में कहा था, मनुस्मृति को हमने इसलिये जलाया था, क्योंकि हमारी दृष्टि में वह अन्याय का प्रतीक है, जिसके अंतर्गत हमें शताब्दियों से कुचला गया है। हमने इसे इसलिये जलाया, क्योंकि इसी की शिक्षाओं ने हमें नीच, ग़रीब बनाकर रखा है। इसलिये हमने संघर्ष किया है, सब कुछ दाँव पर लगा दिया है, अपनी जिंदगियों को हमने अपने हाथों में ले लिया और (मनुस्मृति को जलाकर) यह काम पूरा कर लिया।"[418]

यह अस्पृश्यों की पहली सीधी लड़ाई रही समानता के लिए, ओरों की तरह हम भी इंसान है यह साबित करने के लिए। ऐसा संघर्ष या लड़ाई शायद ही कहीं लड़ी गयी हों। उन्होंने (आंबेडकर) सामाजिक समता के बाद धार्मिक समता के लिए भी संघर्ष किया है। कँवल ने इसे 'धार्मिक समता के लिए संघर्ष' इस शीर्षक के अंतर्गत रखा है।

2 मार्च 1930 से 3 मार्च 1934 तक 'कालाराम मंदिर' आंदोलन चलता रहा। इस लंबी अवधि में उच्च जातियों के हिंदुओं में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं हो सका वे अस्पृश्यों को मनुष्य के रूप में देखने एवं मूलभूत अधिकार प्रदान करने में किसी भी रूप में तैयार नहीं हो सके। डॉ. आंबेडकर कहते हैं 'यह विशेष रूप से हृदय परिवर्तन के लिए किया गया प्रयास था।' डॉ. आंबेडकर मंदिर प्रवेश पर जिस बात को रखते हैं वह महत्त्वपूर्ण है। कँवल ने उसे रेखांकित किया है। वे (आंबेडकर) कहते हैं- "आज हम मंदिर में प्रवेश करने वाले हैं। लेकिन मंदिर में प्रवेश करने से हमारी सारी समस्याएँ हल नहीं हो जायेंगी। हमारी

---

[417] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर लेख और भाषण, खंड – 38, पृ. सं. 103

[418] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 29

समस्या व्यापक है। वह राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षिक आदि अनेक स्तर की है। कालाराम मंदिर प्रवेश का मामला हिंदू मस्तिष्क से एक अपील है। उच्च जाति के हिंदुओं ने सदियों से हमें वंचित रखा है। हम भी इन्हीं जैसे हिंदू हैं, क्या ये हमें हमारे अधिकार देने को इच्छुक हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है, जो मंदिर प्रवेश के इस सत्याग्रह से पैदा होगा। इस सत्याग्रह से यह भी पता चल जाएगा कि हिंदू मानस हमें मानव प्राणी के रूप में स्वीकार करेगा या नहीं? उच्च जाति के हिंदुओं ने हमें नीचा माना है और कुत्ते-बिल्लियों से भी बदतर समझा है। हमें यह जानना है कि क्या ये हिंदू हमें मनुष्य का दर्जा देंगे या नहीं? यह सत्याग्रह इस सवाल का जवाब देगा। यह सत्याग्रह उच्च जाति के हिंदुओं में हृदय-परिवर्तन के लिए एक प्रयास है। इस प्रकार के प्रयास की सफलता हिंदू मानस पर निर्भर करती है।"[419]

डॉ. आंबेडकर काफ़ी अच्छी तरह जानते थे कि "इस मंदिर में पत्थर से बने भगवान की प्रतिष्ठा की गई है। उस पर केवल एक दृष्टि डालने से या उसकी पूजा करने से, हमारी समस्या पूरी तरह हल नहीं होगी। लाखों लोग इस मंदिर में आए होंगे और अब तक भगवान के दर्शन किए होंगे। लेकिन यह कौन कह सकता है कि ऐसा करने से उनकी बुनियादी समस्या हल हो गई? हम यह जानते हैं। लेकिन आज हमारा सत्याग्रह हिंदुओं के दिलों में बदलाव लाने का एक प्रयास है। इस सैद्धांतिक स्थिति के साथ हम यह सत्याग्रह शुरू कर रहे हैं।"[420]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस आंदोलन से ऊंची जातियों के हिंदुओं में किसी भी तरह का बदलाव नहीं आया। पर इससे एक उद्देश्य साध्य हुआ वह डॉ. आंबेडकर के पत्र से पता चलता है। वह भाऊराव गायकवाड को लिखा गया पत्र है। उस पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है – "मैंने मंदिर-प्रवेश आंदोलन इसलिए शुरू नहीं किया था कि दलित वर्ग मूर्तियों की उपासना करें, जिनकी उपासना से उन्हें रोका जा रहा था क्योंकि मैं सोचता था कि मंदिर-प्रवेश से वे हिंदू समाज के समान सदस्य और अभिन्न हिस्सा बन जाएँगे। जहाँ तक

[419] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 34
[420] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड 35, पृ. सं. 175

मामले के इस पहलू का संबंध है, मैं दलित वर्गों को सलाह दूँगा कि हिंदू समाज का अभिन्न अंग बनना स्वीकार करने से पहले वे हिंदू समाज तथा हिंदू धर्मशास्त्र को पूरी तरह से बदलने पर दृढ़ रहें। मैंने मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह केवल इसलिए शुरू किया था, क्योंकि मुझे लगता था कि दलित वर्गों में ऊर्जा का संचार करने और उन्हें अपनी स्थिति के प्रति जागरूक करने का यही सर्वोत्तम तरीका था। जैसा कि मुझे विश्वास है कि वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया गया है, अत: अब मुझे मंदिर प्रवेश आंदोलन की कोई आवश्यकता नज़र नहीं आती। मैं चाहता हूँ कि दलित वर्ग अपनी ऊर्जा और संसाधन राजनीति और शिक्षा पर लगाये और मुझे उम्मीद है कि वे दोनों का महत्त्व समझ जायँगे।"[421]

दलित वर्गों को क्रियाशील बनाने के उद्देश्य से यह आंदोलन सफल रहा पर इससे ऊंची जातियों के हिंदुओं में किसी तरह का परिवर्तन नहीं आया और न ही वे दलित वर्गों को मनुष्य का दर्जा देने के लिए सहमत हो सके। यह धार्मिक समता के लिए किया गया संघर्ष रहा है।

वैसे देश का स्वतंत्रता आंदोलन आख़िर था क्या? रावसाहेब कसबे लिखते हैं – "भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भिन्न जाति एवं धार्मिक आंदोलनों का इकट्ठा आकर, आगे आनेवाले स्वाधीनता में राजनीतिक सत्ता का हिस्सा हमें ज़्यादा-से-ज़्यादा कैसे प्राप्त होगा इसलिए एक-दूजे में किए गए झगड़े, रची गई युक्तियाँ, उससे हुए समझौते और राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए कभी पृथक होकर, तो कभी बिरले ही संघटित होकर ब्रिटिशों के विरोध में किए गए संघर्ष और उनसे किया गया संवाद, इन सबका विवरण है। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का 'सांप्रदायिक निर्णय' (Communal Award) यह अल्पविराम हुआ और भारत का विभाजन यह पूर्ण विराम बना।"[422] इस राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष में डॉ. आंबेडकर का भी अपना अलग संघर्ष दिखाई देता है।

---

[421] बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड 35, पृ. सं. 194

[422] डॉ. रावसाहेब कसबे – हिंदुराष्ट्रवाद स्वा. सावरकरांचा आणि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघाचा, पृ. सं. 8-9 (प्रस्तावना)

'गोलमेज सम्मेलन' और 'पूना पैक्ट' ये दो घटनाएँ दलितों के लिए राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ. आंबेडकर दलितों की जो समस्याएँ रहीं हैं, वे राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के बाद लगभग हल हो सकती हैं, ऐसा मानते थे। इसलिए उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में जोर देकर कहा है कि – "हम समझते हैं कि हमारी समस्याओं को कोई भी दूर नहीं कर सकता; हम ही अपनी समस्याओं को दूर कर सकते हैं और यह काम हम तब तक नहीं कर सकते, जब तक कि हमारे हाथों में राजनैतिक शक्ति नहीं आती है।"[423] गोलमेज सम्मेलन में डॉ. आंबेडकर की बातों को माना गया वहीं गाँधी दलितों के राजनीतिक अधिकारों के विरोध में खड़े हो गए थे। उन्होंने दलितों के विशेष प्रतिनिधित्व का विरोध किया। पर सम्मेलन ने दलितों की राजनीतिक अधिकार (पृथक निर्वाचन मंडल) की माँग को मान्य किया पर गाँधी इस बात से नाराज होकर अनशन पर बैठ गए। उन्होंने दलितों के पृथक निर्वाचन का विरोध किया। आख़िर यह संघर्ष समझौते पर ख़त्म हुआ और इसे कँवल भारती ने रेखांकित किया है। समझौते का मूल पाठ कुछ इस प्रकार है- "1. प्रांतीय विधान सभाओं में सामान्य निर्वाचन सीटों में से दलित वर्गों के लिए 148 सीटें सुरक्षित की जायेंगी, जो विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग होंगी। 2. इन सीटों पर चुनाव संयुक्त निर्वाचन पद्धति द्वारा किया जाएगा। दलित मतदाता प्रत्येक सुरक्षित सीट के लिए दलित वर्गों के चार अभ्यर्थियों का पैनल चुनेगा। ऐसे प्राथमिक चुनाव में जिन चार सदस्यों को सबसे अधिक मत मिलेंगे, वे सामान्य निर्वाचन के लिए उम्मीदवार माने जाएँगे। 3. केंद्रीय विधान मंडल में सुरक्षित सीटों की संख्या 18 प्रतिशत होगी। 4. यह व्यवस्था प्रथम दस वर्ष के बाद समाप्त हो जाएगी। 5. नौकरियों में दलितों को अस्पृश्यता के आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा और नियुक्तियाँ शैक्षिक योग्यता के आधार पर की जाएँगी। 6. सभी प्रांतों में शैक्षिक अनुदान से दलितों के बच्चों को सुविधाएँ प्रदान करने के लिए समुचित धनराशि नियत की जाएगी।"[424]

---

[423] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 50

[424] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 85

इस रूप में यह दलितों के राजनीतिक हक़ के लिए किए गए संघर्ष का विवरण है। जहाँ दलितों को सबके बराबर राजनीतिक अधिकार मिले इसके लिए डॉ. आंबेडकर के प्रयास सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। समाजवाद में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आदि क्षेत्रों में सबको समान रूप में अधिकार की बात की जाती है, वह इसी के पक्ष में है। यहाँ डॉ. आंबेडकर इसी के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। सबसे मुख्य बात इसमें जाति एवं वर्ग विहीन समाज का निर्माण है। जाति के साथ साथ वर्ग विहीन समाज के लिए डॉ. आंबेडकर के प्रयास देखे जाने चाहिए। समाजवाद और साम्यवाद में मूलतः जो फ़रक वह स्टेट (State) या सत्ता एवं राज्य को लेकर है। समाजवाद राज्य की भूमिका को महत्त्व देता है वहीं साम्यवाद इसे नहीं देता है। इस परिप्रेक्ष्य में भी डॉ. आंबेडकर के विचार देखने की कोशिश की जाएगी।

ट्रेड यूनियन को लेकर डॉ. आंबेडकर कहते हैं- "हमने भी आर्थिक समस्याओं पर उतना ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, जितना हम सामाजिक समस्याओं पर देते हैं। इसलिए, मुझे प्रसन्नता है कि आज हम अछूत के रूप में कम और कामगार के रूप में ज़्यादा मिले हैं। यह एक नया प्रस्थान है।"[425] यहाँ देखा जा सकता है कि वे जाति के आधार पर नहीं बल्कि वर्ग के आधार पर मज़दूर वर्ग को संघटित कर राजनीतिक मंच तैयार कर चुके हैं। वे मज़दूर वर्ग के सामने दो शत्रुओं का उल्लेख करते हैं- "मेरी दृष्टि में, इस देश के मज़दूरों के दो शत्रु हैं, उनसे इन्हें निपटना पड़ेगा। ये दो शत्रु हैं 'ब्राह्मणवाद' और 'पूँजीवाद'।"[426] ब्राह्मणवाद से उनका क्या तात्पर्य था? उन्हीं के शब्दों में – "जब मैं यह कहता हूँ कि ब्राह्मणवाद एक ऐसा शत्रु है जिसके साथ निपटना ज़रूरी है तो मैं चाहता हूँ कि मेरी बात को ग़लत न समझा जाए। ब्राह्मणवाद से मेरा आशय एक समुदाय के रूप में ब्राह्मणों की शक्ति, विशेषाधिकारों और हितों से नहीं है। मैं इस शब्द का प्रयोग इन अर्थों में नहीं कर रहा हूँ। ब्राह्मणवाद से मेरा आशय स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की भावना को नकारने से है। इन अर्थों में इस तरह की

---

[425] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 132

[426] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड – 37, पृ. सं. 168

भावनाएँ सभी वर्गों में है और वे केवल ब्राह्मणों तक सीमित नहीं है, हालांकि उनका मूल स्त्रोत ब्राह्मण ही हैं। यह ब्राह्मणवाद जोकि सर्वत्र फैला हुआ है और जो सभी वर्गों के विचारों और कृत्यों को विनियमित करता है, एक अकाट्य तथ्य है। साथ ही यह भी एक अकाट्य सच्चाई है कि यह ब्राह्मणवाद कुछेक वर्गों को विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति प्रदान करता है।"[427]

क्या राजनीति में मज़ूदरों के प्रवेश से उनकी समस्याओं का समाधान होगा? मज़दूरों के प्रवेश से वे (आंबेडकर) किस तरह का बदलाव चाहते थे, क्या उद्देश्य मज़दूरों के सामने वे रखते हैं? उन्होंने कहा, "यह मान लेना ग़लत है कि दूसरों की गुलामी एक नियति है, जिससे मज़दूर वर्ग बच नहीं सकता। इसके विपरीत आपका उद्देश्य इस दिहाड़ी-गुलामी के स्थान पर उस व्यवस्था को लाना है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुता एक सिद्धांत माना जाएगा। इसका अर्थ है, समाज का पुनर्निर्माण और मैं कहता हूँ कि समाज की पुनर्संरचना ही करना मज़ूदर वर्ग की मुख्य चिंता है। लेकिन, मज़दूर वर्ग इस आदर्श को कैसे महसूस कर सकता है? इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए राजनैतिक सत्ता का सार्थक प्रयोग ही एक सशक्त उपाय है।"[428] उनका उद्देश्य देश एवं मज़दूरों को लेकर स्पष्ट रहा है। वे मज़दूरों से भी यही अपेक्षा रखते हैं कि राजनीति में प्रवेश कर अपने हितों के साथ-साथ समाज की पुनर्रचना करना उनका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए जो स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व पर टिका हुआ हो।

संसदीय लोकतंत्र विषय पर डॉ. आंबेडकर 1943 में एक भाषण देते हैं। जिसमें वे संसदीय लोकतंत्र के खूबी के बारे में कहते हैं कि 'संसदीय लोकतंत्र तानाशाही को खुली छूट नहीं देता।' वहीं वे उसके असफल होने के कारणों की बात करते हैं। वे इस लोकतंत्र में जो कमी है उसे बताते हैं- "संसदीय लोकतंत्र के प्रति असंतोष इस अनुभव के कारण है कि यह आम जनता के लिए स्वतंत्रता, संपत्ति अथवा खुशहाली के अधिकार के आश्वासन के प्रति

[427] बाबासाहेब अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड – 37, पृ. सं. 168
[428] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 142

असफल रहा है।"[429] पर इसके असफल होने में दो कारण देखते हैं- 1. ग़लत विचारधारा और 2. लोकतंत्र का त्रुटिपूर्ण संगठन। पहली बात को लेते हैं- वे कहते हैं, "ग़लत विचारधारा ने संसदीय लोकतंत्र को दूषित किया है, वह समझ पाने में विफल हो गयी है कि जहाँ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र न हो। वहाँ राजनीतिक लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता।"[430] दूसरा यह है कि त्रुटिपूर्ण संगठन। वे कहते हैं कि 'लोग स्वयं को शासित नहीं करते, अपितु वे एक सरकार की स्थापना करते हैं और उस सरकार को स्वयं पर शासन करने के लिये मुक्त छोड़ देते हैं।' ऐसे में कभी वह लोगों की सरकार नहीं बन पाती। इसमें वे मज़दूरों को दोषी मानते हैं। वे आगे कहते हैं कि, "एक बड़ा अपराध है जो उन्होंने (मज़दूरों के संघटन) स्वयं अपने विरुद्ध किया है। उन्होंने अपने भीतर सरकार में अपना वर्चस्व स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा विकसित नहीं की है, और वे इस बात की आवश्यकता नहीं समझते कि उनके हितों की रक्षा के लिये सरकार पर उनका नियंत्रण होना चाहिए, यहाँ तक कि सरकार में उनकी कोई दिलचस्पी ही नहीं है।"[431] इसके साथ ही ज्ञान पर भी बल देते हैं जिससे शक्ति आती है। जिसे वे सरकार कुशलता से चला सकते हैं। डॉ. आंबेडकर 'राजा रानियों की कहानियों की बजाय मज़दूरों को कम्युनिस्ट मैनीफैस्टों और पोप लियो XIII के मज़ूदरों की स्थिति पर जारी परिपत्र और जान स्टूअर्ट मिल के स्वतंत्रता संबंधित विचारों' को पढ़ने का आग्रह करते हैं।

यह पूरी बात संसदीय लोकतंत्र को बचाने एवं मज़दूरों को अपने हित एवं उन्नति के लिए दिशानिर्देश के रूप में देखी जा सकती है। 'राज्य समाजवाद' संबंधी डॉ. आंबेडकर के मत 15 मार्च 1947 को संविधान सभा को दिए गए ज्ञापन में देखे जा सकते हैं। जिसमें वे कृषि, बीमा, आधारभूत उद्योग आदि पर राज्य का स्वामित्व चाहते थे साथ ही उसका संचालन भी राज्य ही करें, ऐसा उनका मत रहा है। आज भी यह बात संसदीय लोकतंत्र ने मान

[429] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 170
[430] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 170
[431] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 173

ली तो, आर्थिक असमानता की खाई को बहुत कम समय में भरा जा सकता है। जिससे भारत की नैसर्गिक संपदा का अतिव्यय भी बचेगा और लोगों की आय में वृद्धि होगी। स्त्री के प्रश्न के बग़ैर डॉ. आंबेडकर का समाजवाद पूरा नहीं होता है। यह बात कँवल भारती ने लिखी है। इसलिए 'हिंदू कोड बिल' को भी देखा-जाना, समझा-जाना उचित होगा।

हिंदू कोड बिल को लेकर डॉ. आंबेडकर जिस बात को कहते हैं, उसे कँवल ने रेखांकित किया। वह बात कुछ इस प्रकार है- "स्त्री की आज़ादी धन पर निर्भर करती है, इसलिए उन्होंने कहा कि एक स्त्री को अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए अपने धन और अधिकारों को कायम रखने के लिए विशेष प्राथमिकता देनी होगी।"[432] यह कानून, स्त्री को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सक्षम बनाने का प्रयास है। जिसमें पुरुषसत्ता से छुटकारा है। भारतीय स्त्री को जिस पुरुष प्रधान संस्कृति में हमेशा शोषण का शिकार होना पड़ा है, उससे हमेशा कमतर स्थान दिया गया, उससे यह कानून उसे (स्त्री) उभारने की कोशिश कह सकते हैं। जिसमें बहु विवाह पर रोक, स्त्री को तलाक लेने का अधिकार एवं पिता की संपत्ति में अधिकार आदि बिंदु महत्त्वपूर्ण रहे हैं। जिसे तत्कालीन सरकार ने पारित करने के लिए बड़ा ही विरोध किया। उसे पास होने नहीं दिया गया। जिसके कारण डॉ. आंबेडकर अपने मंत्रीमंडल से त्यागपत्र दे दिया था। वे इस बारे में लिखते हैं- "मैं काफ़ी समय से मंत्रिमंडल से अपने पद से त्यागपत्र देने की सोच रहा था। मुझे केवल एक ही चीज़ रोक रही थी और वह थी, वर्तमान संसद के जीवन में ही हिंदू कोड बिल पारित कराने की इच्छा। इसके लिए मैं बिल को टुकड़ों में बांटने और उसे विवाह तथा तलाक तक सीमित करने के लिए भी इस आशा के साथ सहमत हो गया था कि कम से कम मेरे परिश्रम का फल सामने आये। किंतु, अब बिल के इस भाग की हत्या कर दी गयी है। ऐसी स्थिति में अब आपके मंत्रिमंडल में मेरा बने रहने का कोई मकसद नहीं है।"[433]

---

[432] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 246

[433] कँवल भारती – समाजवादी आंबेडकर, पृ. सं. 248

कह सकते हैं कि कँवल भारती विशेष रूप से डॉ. आंबेडकर के समाजवादी विचारों को सामने लाने का प्रयास करते हैं, वह भी डॉ. आंबेडकर की ही जुबानी। यह कँवल के इस लेखन की प्रमुख विशेषता है। डॉ. आंबेडकर का समाजवाद साम्यवाद से नहीं जुड़ता है। इस पर विशेषतः बल दिया जाना था। इस बात का अभाव कँवल के लेखन में दिखाई देता है। पर यह जो पूरा समाजवाद है, वह देश के लिए सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोण से प्रगति के लिए सहायक है। स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व आंबेडकर के समाजवाद के आधार हैं। स्टेट या राज्य को सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष सुधारने के लिए सहायक मानता है। मज़ूदर वर्ग की सत्ता हो, इस बात के पक्षधर वे (आंबेडकर) दिखाई देते हैं। पर, उनकी सत्ता में उपर्युक्त बिंदु पर बल वे चाहते हैं। यह डॉ. आंबेडकर का ब्राह्मणवाद के साथ-साथ पूँजीवाद के विरोध में समाजवादी रूप उजागर होता है। अंतिम बात यह कि, स्त्री जो की समाज की सबसे शोषित जाति है उसकी प्रगति के बिना यह समाजवाद पूरा नहीं होता है यह इसकी प्रमुख बातों में एक बात है।

5.3 दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म :

कबीर एवं रैदास को लेकर जो आलोचनात्मक लेखन-कार्य कँवल भारती ने किया है, उसी के अंतर्गत उनके दलित धर्म (आजीवक धर्म) एवं बौद्ध धर्म से संबंधित विचार भी प्रस्तुत हुए हैं। जैसे कि पहले ही अध्याय में इस बात को देखने की कोशिश की गई कि कँवल भारती की आलोचना ने कबीर की परम्परा को आजीवक धर्म से जोड़ दिया है। यहाँ आजीवक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म को कँवल भारती ने किस रूप में देखा, उनका मूल्यांकन आजीवक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म को लेकर कैसा रहा? इन प्रश्नों के उत्तर की तलाश इस उपबिंदु के अंतर्गत की जाएगी।

यहाँ यह बात विशेष रूप से जोर देकर रेखांकित करने की आवश्यकता लग रही है कि कँवल भारती ने जो बातें दलित धर्म एवं बौद्ध धर्म से संबंधित लिखी हैं, वह कबीर से संबंधित अध्ययन एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया में लिखी गई हैं। विशेष रूप से जब डॉ. धर्मवीर ने यह विचार रखा कि 'दलितों का धर्म लोकायत है और लोकायत को बौद्ध धर्म ने आत्मसात किया है।' इस बात ने कँवल भारती को सोचने-समझने के लिए मज़बूर किया और यहीं से उन्होंने मध्ययुगीन कवियों के साथ-साथ उनके दर्शन की धारा को इतिहास की तहों में खोजने की कोशिश शुरू की। इसके फल-स्वरूप कँवल भारती की 'दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म', 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज' इन किताबों को देखा जा सकता है। इस बिंदु में इन्हीं किताबों को आधार बनाकर दलित धर्म एवं बौद्ध धर्म से संबंधित कँवल भारती के विचारों का मूल्यांकन किया गया है।

5.3.1 दलित धर्म :

कँवल भारती 'आजीवक परम्परा' में कबीर को देखते हैं। यह आजीवक परम्परा क्या है ? यह एक भौतिकवादी परम्परा है। लोकायत परम्परा को भौतिकवादी परम्परा माना जाता है। क्या चार्वाक भौतिकवादी परम्परा से थे? चार्वाक के संबंध में राहुल सांकृत्यायन ने जो बात कही है, उसे कँवल भारती उद्धृत करते हैं जिससे 'चार्वाक' शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वह उद्धरण कुछ इस प्रकार से है- "चार्वाक का शब्दार्थ है चबाने के लिये मुस्तैद या जो खाने-पीने (इस दुनिया के भोग) को ही सब कुछ समझता है। चार्वाक मत-संस्थापक व्यक्ति का नाम नहीं है, बल्कि परलोक, पुनर्जन्म, देववाद के जो लोग इनकारी थे, उनके लिये यह गाली के तौर पर इस्तेमाल किया जाता था।"[434] उस उद्धरण के साथ ही कँवल भारती अपनी बात जोड़ कर इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। वे आगे लिखते हैं

[434] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 29

– "लोकायतिकों के बारे में सामान्यतः चार बातें प्रसिद्ध थीं। एक, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार पदार्थ हैं, जिनसे जीव उत्पन्न होता है, दो, विश्व में सृष्टि स्वभाव से हुई है, इसलिए प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, शब्द और अनुमान प्रमाण नहीं। तीन, तर्कवाद – लोकायतिक तर्क शास्त्र में निपुण थे और यह कहना कदाचित ग़लत न होगा कि वे भारत के प्रथम तर्कशास्त्री थे, और चार, पुनर्जन्म और परलोक नहीं, इसलिये वर्ण और आश्रम की सारी क्रियाएँ निष्फल हैं। सम्भवतः इन चार बातों के कारण ही लोकायतिकों को चार्वाक कहा गया।"[435]

लोकायत परम्परा को समझने के लिए बुद्ध के समकालीनों पर ध्यान देना आवश्यक है। बुद्ध के समकालीनों पर बौद्ध एवं जैन साहित्य में लिखा गया है। 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' इस किताब में बुद्ध के समकालीनों का उल्लेख कुछ इस प्रकार है – "जिस समय गौतम ने प्रव्रज्या ली, देश में बहुत बौद्धिक उथल-पुथल चल रही थी। ब्राह्मणी दर्शन के अतिरिक्त बासठ भिन्न-भिन्न दार्शनिक मत और भी थे, जो सभी ब्राह्मणी दर्शन के विरोधी थे।"[436] इनमें से छह दार्शनिक मतों को बौद्ध साहित्य में ध्यान देने योग्य माना गया है। वहीं 'संस्कृति के चार अध्याय' इस किताब में उनका उल्लेख कुछ इस प्रकार है – "बुद्ध के समय, भारतवर्ष में श्रमणों की कोई 63 संस्थाएँ वर्तमान थीं, जिनमें से छह तो बहुत ही प्रमुख संस्थाएँ थीं।"[437]

दोनों उद्धरणों में जिन छह दार्शनिक मतों की बात की गयी है, उन दार्शनिकों के नाम कुछ इस प्रकार से हैं– मक्खलि गोशाल, पूर्ण काश्यप, अजित केसकम्बली, प्रक्रुध कात्यायन, संजय बेलट्ठिपुत्र और निगंठ ज्ञातपुत्र। इन दार्शनिकों के जो मत थे, वे क्या थे? इसे जानना ज़रूरी है। इससे पहले एक बात यहाँ रेखांकित करना उचित होगा कि लोकायत अथवा आजीवकों के बारे में ज़्यादातर जानकारी बौद्ध एवं जैन साहित्य में मौजूद है। हमारे पास आजीवकों का कोई भी मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इसलिए यहाँ किसी भी निष्कर्ष तक

---

[435] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 29-30

[436] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 131

[437] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ. सं. 102

पहुँचना अपने-आप में मुश्किल कार्य है। इस संदर्भ में डॉ. धर्मवीर ने रजनीश (ओशो) की बात को रेखांकित किया है, जो गोशाल से संबंधित है। वह अन्य आजीवकों पर भी लागू होती है। गोशाल के ग्रंथों के अभाव पर बात करते हुए रजनीश कहते हैं कि – "अगर विरोधी का ही शास्त्र बचे तो निर्णय करना मुश्किल है। यही असुविधा है गोशालक के लिए। खुद का कोई शास्त्र नहीं है। खुद कुछ लिखा नहीं है। करने को ही जो नहीं मानता था, वह लिखे क्यों? कुछ बोलाचाला होगा। कुछ दिन तक लोगों को याद रही होगी, फिर बिसर गई।... गोशालक जैसा व्यक्ति हमारे लिए खो गया है। अब जो उल्लेख रह गए हैं, वे विरोधियों के हैं। विरोधियों से कभी भी निर्णय मत लेना। एक बात पक्की है कि विरोधियों ने जो कहा है, वह तो सही हो ही नहीं सकता।"[438]

इसी तरह कँवल भारती भी आजीवक धर्म के विरोधियों में जैन एवं बौद्ध धर्म को देखते हैं और लिखते हैं- "ई. पू. पाँचवीं शताब्दी में आजीवक धर्म के पुरोधाओं ने जो अलख जगायी, और जिसे उनके शत्रु धर्मों – बौद्ध और जैन – ने साहित्य के रूप में सुरक्षित नहीं रहने दिया..."[439] इस बात की पुष्टि करने से पहले आजीवक या लोकायत दार्शनिकों के मतों को यहाँ रेखांकित करना आवश्यक होगा।

पूर्ण काश्यप : पूर्ण काश्यप के जीवन के बारे में सिवाय इस बात के वे एक दास थे और वे अपने मालिक के घर से भागे थे। इसके अलावा उनके जीवन संबंधी और कोई जानकारी नहीं मिलती है। उनके विचार क्या थे इस बात को जानने के लिए 'दीघनिकाय' ही एकमात्र स्रोत बचा है। इसी के आधार पर कँवल भारती या अन्य चिंतक आजीवक चिंतन का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हुए दिखाई देते हैं।

पूर्ण काश्यप का मूल चिंतन तो नहीं पर 'दीघनिकाय' में 'सामञ्ञफल सुत्त' के अनुसार अजातशत्रु ने बुद्ध को पूर्ण काश्यप का दर्शन इस प्रकार बताया है– "करते-कराते,

---

[438] डॉ. धर्मवीर – महान आजीवक : कबीर, रैदास और गोसाल

[439] कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 27

छेदन करते-छेदन कराते, पकाते-पकवाते, शोक करते, परेशान करते, परेशान होते, परेशान कराते, चलते-चलाते, प्राण मारते, बिना दिये लेते, सेंध काटते, गांव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, पर-स्त्री गमन करते, झूठ बोलते भी पाप नहीं किया जाता। छुरे से तेज चक्रधारा को इस पृथ्वी के प्राणियों का एक मांस का खलियान, एक मांस का पुंज बना दे, तो इसके कारण उसको पाप नहीं, पाप का आगम नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गंगा के दक्षिण तीर पर भी जाये, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पाप का आगम नहीं होगा। दान कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्य का आगम नहीं होगा।"[440]

यहाँ अजातशत्रु और बुद्ध की बातचीत में अजातशत्रु ने पूर्ण काश्यप के चिंतन को 'अक्रियावाद' कहा है न कि स्वयं पूर्ण काश्यप ने अपने चिंतन को, इस बात को कँवल रेखांकित करते हैं। दूसरी बात यह है कि इस उद्धरण से यह माना जा सकता है कि पूर्ण काश्यप पाप-पुण्य जैसी किसी भी धारणा को नहीं मानते थे।

मक्खलि गोशाल : मक्खलि गोशाल की विचारधारा का नाम 'नियतिवाद' या कहे 'निश्चिततावाद' है। 'देववाद' के नाम से भी उसे जाना जाता है। मक्खलि गोशाल के मत को कँवल भारती सरल शब्दों में रखते हुए लिखते हैं– "जीवन-मृत्यु पर आदमी का वश नहीं है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि ऐसा होगा या ऐसा नहीं होगा। परिस्थितियों पर हमारा नियंत्रण नहीं रहता। मनुष्य ही परिस्थिति को नहीं बदलता, बल्कि परिस्थिति भी मनुष्य को बदलती है। न जन्म हमारे वश में है और न मृत्यु हमारे वश में है। गोशाल कहते हैं कि जीवों के दुखों का हेतु या कारण नहीं है।"[441] 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' में इस मत को कुछ इस प्रकार से रेखांकित किया है– 'न कोई कुछ कर सकता है और न होने से रोक ही सकता है। घटनाएँ घटती हैं। कोई अपनी इच्छा से उन घटनाओं को घटा नहीं सकता। न कोई दुख को दूर कर सकता है और न कोई उसे घटा-बढ़ा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने सांसारिक

---

[440] कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 46-47

[441] कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 53

अनुभवों से गुज़रना ही पड़ता है।' रामधारी सिंह दिनकर भी इस मत को कुछ इस प्रकार से उद्धृत करते हैं- "उसका कहना था कि प्राणी के पवित्र या अपवित्र होने में न कुछ हेतु है, न कारण। बिना हेतु और कारण के ही प्राणी पवित्र और अपवित्र होते हैं। बल, वीर्य-पराक्रम और पुरुषार्थ, ये कुछ भी नहीं है। सब प्राणी बलहीन और निर्वीर्य हैं। नियति, संगति और स्वभाव से वे चालित होते हैं।"[442]

उपर्युक्त उद्धरणों से कुछ बातें सामने आती हैं, नियति, संगति एवं स्वभाव के अधीन सभी वस्तुएँ हैं। उसके स्वभाव को कोई बदल नहीं सकता है। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। कँवल भारती की माने तो, 'गोशाल ने पूर्वकर्म के सिद्धांत को जड़ से ही ख़त्म कर दिया था।' एस.एन. दास गुप्त ने 'गोशाल पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे' यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं। वहीं के. दामोदरन की बात कँवल उद्धृत करते हैं – "नियति का सिद्धांत पुरोहित वर्ग और उनके कर्मकांडों के विरुद्ध ही लक्षित था।"[443]

सत्यभक्त ने 'महावीर का अंतस्थल' नाम से आत्मकथा शैली में किताब लिखी है, जो महावीर के जीवन एवं दर्शन को उजागर करती है। कँवल भारती इस किताब के विश्लेषण से कुछ बातें सामने लाते हैं - 1. महावीर गंवारों को सुधारने के पक्ष में नहीं थे, जबकि गोशाल इसी 'गंवार' समाज को सुधारना चाहते थे। 2. महावीर कठोर तपस्या के पक्ष में थे, जबकि गोशाल के लिए ऐसी तपस्या पाखण्ड पूर्ण थी। 3. गोशाल जारकर्म के विरोधी थे।

अजित केश कम्बल : अजित केश कम्बल का समय 523 ई. पूर्व का है। वे बुद्ध से बड़े थे। इनके विचार को 'उच्छेदवाद' के नाम से जाना जाता है। राहुल सांकृत्यायन की किताब 'दर्शन-दिग्दर्शन' से कँवल भारती अजित के विचारों को उद्धृत करते हैं। यह अजित द्वारा अजातशत्रु को दिया गया उत्तर है - "न दान है, न यज्ञ है, न होम है, न पुण्य या पाप का अच्छा-बुरा फल होता है, न यह लोक है न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज

[442] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ. सं. 102

[443] कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 55

(औपपातिक, देव) सत्व हैं, और न इस लोक में वैसी ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण हैं, जो इस लोक और परलोक को स्वयं जानकर और साक्षात कर कुछ कहेंगे।...मनुष्य जब मरता है तब पृथ्वी महापृथ्वी में , जल महाजल में, तेज महातेज में, वायु महावायु में और इन्द्रियाँ आकाश में लीन हो जाती हैं।... मूर्ख लोग जो दान देते हैं, उसका कोई फल नहीं होता।..."[444]

उपर्युक्त उद्धरण पर कँवल भारती लिखते हैं- 'अजित के इस मत को उच्छेदवाद कहा गया। चूँकि अजित परलोक, पुनर्जन्म और वर्णव्यवस्था की जड़ को ही काट देते हैं, इसलिए उन्हें उच्छेदवादी के रूप में जाना गया।' वहीं अजित के बारे में राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं- "अजित ने अपने दर्शन में, मालूम होता है, उपनिषद् के तत्त्वज्ञान की अच्छी खबर ली थी। सत्य तक पहुँचा (=सम्यग्-गत), 'सत्यआरूढ़' ब्रह्मज्ञानी कोई हो सकता है, यह मानने से उसने इंकार किया, एक जन्म के पाप-पुण्य को आदमी दूसरे जन्म में इसी लोक में अथवा परलोक में भोगता है, इसका भी खंडन किया।"[445] कह सकते हैं कि पाप-पुण्य, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल की धारणा का खंडन अजित के चिंतन में दिखाई देता है जिसे 'उच्छेदवाद'के नाम से जाना जाता है।

प्रक्रुध कात्यायन : प्रक्रुध कात्यायन के बारे में पूर्ण काश्यप एवं गोशाल से भी कम उल्लेख ग्रंथों में मिलता है। ग्रंथों के अभाव में बस राहुल सांकृत्यायन की माने तो इतना ही जानते हैं कि वे बुद्ध से ज्येष्ठ थे। सांकृत्यायन, कात्यायन के दर्शन के बारे में लिखते हैं- "प्रक्रुध कात्यायन हर वस्तु को अचल, नित्य मानता था, इसलिए कोई कर्म वस्तु–स्थिति में किसी तरह का परिवर्तन ला नहीं सकता, इस तरह वह भी उसी अकर्मण्यतावाद पर पहुँचता था।"[446]

यह बात सच हो सकती है कि भौतिकवादी होने के बावजूद आजीवकों के बारें में ऐसी बातें लिखी गयी जिसे हम विकृतिकरण कह सकते हैं। जैसे कँवल भारती ने डॉ.

---

[444] कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 70
[445] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. सं. 486
[446] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. सं. 490

देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय के अनुसार बुद्धघोष के ग्रंथ 'सुमंगल विलासिनी' में जो बात प्रक्रुध कात्यायन पर लिखी गई है उसे रेखांकित करते हैं। वह कुछ इस तरह है – "वे (प्रक्रुध कात्यायन) केवल गरम पानी का इस्तेमाल करते थे और यदि गरम पानी नहीं मिलता था तो वे स्थान ही नहीं करते थे। यदि वे कोई नदी-नाला पार करते थे तो उसे वे पाप मानते और मिट्टी का एक लौंदा बनाकर प्रायश्चित करते थे।"[447] एक तरह आजीवकों को भौतिकवादी भी कहा गया और उनके बारे में पाप-पुण्य की कथाएँ भी रची गयी।

पूर्ण काश्यप और प्रक्रुध कात्यायन के विचारों को राहुल सांकृत्यायन ने 'नित्यतावादी' में रखा है। इसी बात को कँवल भारती अपने शब्दों में लिखते हुए दिखाई देते हैं। जैसे- 'ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ण काश्यप और प्रक्रुध कात्यायन के विचार अलग-अलग नहीं हैं। थोड़ा हेर-फेर के साथ प्रक्रुध ने वही बात कही है, जो पूर्ण काश्यप ने कही थी।'

संजय बेलट्ठिपुत्त : संजय बेलट्ठिपुत्त के बारे में भी वही बात राहुल सांकृत्यायन ने दोहरायी है कि वे बुद्ध से ज्येष्ठ समकालीन तीर्थंकर थे। राहुल जी ने लिखा है – "संजय बेलट्ठिपुत्त और निगंठ नातपुत्त (महावीर) दोनों ही के दर्शन अनेकान्तवादी हैं। फर्क इतना ही है कि महावीर का जोर 'हां' पर ज़्यादा है और संजय का 'नहीं' पर..."[448] संजय का मत कँवल रेखांकित करते हैं- "महाराज, यदि आप पूछें, 'क्या परलोक है? और यदि मैं समझूं कि परलोक है, तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं दूसरी तरह से भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं है', मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं है'। परलोक नहीं है, मैं ऐसा भी नहीं कहता, परलोक है भी और नहीं भी, मैं ऐसा भी नहीं कहता, परलोक न है और न नहीं है, मैं ऐसा भी नहीं कहता। अयोनिज (औपपातिक) प्राणी हैं, मैं ऐसा भी नहीं कहता। अयोनिज प्राणी नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं, ऐसा भी नहीं कहता। अच्छे-बुरे काम के फल हैं, नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं, मैं

[447] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 74
[448] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. सं. 491

ऐसा भी नहीं कहता। तथागत मरने के बाद होते हैं, नहीं होते हैं, मैं ऐसा भी नहीं कहता। यदि मुझे ऐसा पूछें, और मैं ऐसा समझूँ कि मरने के बाद तथागत न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, तो मैं ऐसा आपको कहूँ। मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं दूसरी तरह से भी नहीं कहता।"[449]

कँवल भारती इस उद्धरण पर यह लिखते हैं कि यह परलोक है या नहीं है इस संबंध में अजातशत्रु को संजय द्वारा दिया गया उत्तर है। इस संबंध में कँवल लिखते हैं – "इस अनिश्चतता कि स्थिति में भी संजय का जोर 'नहीं' पर है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि पूर्ण काश्यप और गोशाल आदि की तरह संजय भी परलोक में विश्वास नहीं करते थे।"[450] यहाँ दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि यह मत बौद्ध धर्म ग्रंथों में उल्लेखित है। यह संजय का पूरा दर्शन नहीं है। दूसरा यह कि जिस प्रकार से इसे प्रस्तुत किया गया है वह सामान्य जनता की समझ के परे दिखाई देता है। यहाँ कँवल भारती ने अपने अनुसार इस बात को व्याख्यायित किया है।

उपर्युक्त चिंतकों एवं उनके मतों को देखने पर यह दिखाई देता है कि वे भौतिकवादी रहे हैं। इन्होंने पाप-पुण्य, पुनर्जन्म, कर्मफल, परलोक, ईश्वर, आत्मा, जारकर्म आदि बातों का विरोध किया या कह सकते हैं कि इन बातों का विरोध इनके चिंतन-दर्शन में दिखाई देता है। जिससे इनके विरोधी विचारधाराओं के धर्मों से वैचारिक मतभेद दिखाई देते हैं। वे इसी जीवन को अंतिम मानते हैं। वे जन्म से पूर्व एवं उसके बाद संसार की बातों सिवाय पाखंड के कुछ नहीं मानते हैं।

अब यह जानना ज़रूरी है कि वह किस रूप में दलित धर्म है, जिसे कँवल भारती और डॉ. धर्मवीर अपनी आलोचना में रेखांकित करने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। या कह सकते हैं कि वे यह मानते हैं कि इन्हीं दार्शनिकों से आया हुआ चिंतन दलित धर्म का आधार

---

[449] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 77
[450] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 78

है और यह धर्म दलित धर्म है। इस बात की पुष्टि के लिए डॉ. आंबेडकर द्वारा लिखित 'अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी' किताब का सहारा लेना आवश्यक जान पड़ता है। कँवल भारती इसी के आधार पर दलित एवं हिंदुओं में अंतर करते हैं।

डॉ. बी. आर. आंबेडकर सन् 1911 की जनगणना में अस्पृश्यों को बाकी लोगों से अलग करने के लिए कुछ मापदंड अपनाये गए थे, उन्हें उद्धृत करते हैं, वे कुछ इस प्रकार हैं – "1. ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते, 2. किसी ब्राह्मण या अन्य मान्यता प्राप्त हिंदू से गुरु-दीक्षा नहीं लेते, 3. वेदों की सत्ता को नहीं मानते थे, 4. बड़े-बड़े हिंदू देवी-देवताओं की पूजा नहीं करते, 5. ब्राह्मण जिनकी यजमानी नहीं करते, 6. जो किसी ब्राह्मण को पुरोहित बिल्कुल नहीं बनाते, 7. जो साधारण हिंदू मंदिरों के गर्भ-गृह में भी प्रवेश नहीं कर सकते, 8. जिनसे छूत लगती है, 9. जो अपने मुर्दों को दफनाते हैं, 10. जो गोमांस खाते हैं और गाय की पूजा नहीं करते।"[451]

इन मापदंडों को मध्यकालीन निर्गुण कवियों के साथ जोड़ कर देखने से यह बात पता चलती है कि वे भी अस्पृश्य समाज के अंग रहे हैं। जिसे दलित कहा जाता है। इन कवियों की जो मान्यताएँ हैं, वे इनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम अध्याय में मध्ययुगीन कवियों एवं उनके दर्शन पर बात हो चुकी है। कँवल भारती की आलोचना उसको किस रूप में देखती है यह स्पष्ट किया जा चुका है। संक्षिप्त रूप में कुछ बातों को यहाँ रेखांकित करना आवश्यक दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन कवियों में विशेषतः कबीर और रैदास के चिंतन में परलोक, पुनर्जन्म, जारकर्म, ब्राह्मण की श्रेष्ठता आदि बातों को विरोध दिखाई देता है। इन बातों से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि वे किस परम्परा से रहे हैं।

एक बात जो कबीर एवं रैदास की परम्परा को सबसे अलग करती है, जिस पर कँवल भारती के साथ-साथ डॉ धर्मवीर की आलोचना जोर देती है, वह है- परलोक एवं पुनर्जन्म का

[451] डॉ. बी. आर. अम्बेडकर – अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी (बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड-9), पृ. सं. 22-23

विरोध। यह दो बिंदु हैं जो आजीवक परम्परा से कबीर एवं रैदास को जोड़ती है। हिंदू धर्म का कोई भी संप्रदाय हो, देखा यह गया है कि वह जीव, आत्मा, ईश्वर विशेषतः परलोक एवं पुनर्जन्म पर विश्वास करता है। जैन धर्म हो या बौद्ध धर्म इन्होंने भी पुनर्जन्म को माना है। भले ही इनका मानने का स्वरूप अलग हो। कँवल भारती की माने तो, कबीर के धर्म का खुलासा करता यह पद –

"नाहीं धर्मी नाहीं अधर्मी, ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक-स्वामी हो।
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता, ना मैं बिरत न रंगी हो।
ना काहू से न्यारा हूआ, ना काहू के संगी हो।
ना हम नरक-लोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन तें न्यारा हो।
या मत को कोई बिरलै बूझै, सो अटर हो बैठे हो।
मत कबीर काहू को थापै, मत काहू को मेटे हो।"[452]

5.3.2 बौद्ध धर्म :

कँवल भारती ने विशेषतः बौद्ध धर्म पर ही लिखने के उद्देश्य से कोई लेखन कार्य किया हो, ऐसा मुझे नहीं दिखाई दिया है, आलोचना विधा में विशेष कर। जो विचार आए हैं वे संक्षिप्त रूप में उपर्युक्त बिंदु (दलित धर्म) में आए ही हैं। उन्हीं विचारों का यहाँ मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाएगा।

आजीवक परम्परा के बारे में लिखित रूप में कुछ भी विशेष रूप से उपलब्ध नहीं है। जो विचार उपलब्ध हैं वे संक्षिप्त रूप में हैं। जैन एवं बौद्ध धर्म के ग्रंथों में उपलब्ध होने के

[452] हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ. सं. 214-215

कारण कँवल भारती उन्हें विकृत मानते हैं। फिर भी उनकी आलोचना इन विचारों में निहित सत्य तक पहुँचने की कोशिश करती है। जो समस्याएँ आती हैं आजीवक धर्म को स्थापित करते हुए बौद्ध धर्म के साथ, उन्हीं पर विशेष बल यहाँ दिया जाएगा।

बौद्ध धर्म को आजीवक परम्परा का शत्रु मानना एक गंभीर चिंतन की माँग करता है। कँवल भारती आजीवक धर्म के बारे में बात करते हुए जैन एवं बौद्ध धर्म को शत्रु के रूप में मानते हैं। वहीं यह भी मानते हैं कि "भारत में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रतिष्ठापक बुद्ध और महावीर ने भी अपने दर्शन के सूत्र इन्हीं महान आजीवकों से ग्रहण किये थे।"[453] यह अंतर्विरोध कँवल भारती की आलोचना में दिखाई देता है।

कँवल भारती आजीवकों के ग्रंथों के अभाव को लेकर लिखते हुए, बार-बार यह बात रेखांकित करते हैं कि आजीवकों के साहित्य को उनके विरोधियों ने नष्ट कर दिया। के. दामोदरन के विचार को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि क्यूँ उनका साहित्य नष्ट हुआ, क्योंकि "आजीवक धर्म वर्णव्यवस्था, कर्मकाण्ड और ब्राह्मणधर्म का विरोधी था।"[454] यहाँ किसी भी तरह से तर्कसंगत बात कँवल नहीं लिखते हैं क्योंकि इस बात के कुछ कारण दिखाई देते हैं- 1. एक आजीवकों का साहित्य उपलब्ध नहीं है। 2. जो उपलब्ध है, उनका संपूर्ण चिंतन नहीं विचार हैं। 3. इस जानकारी का अभाव है कि आजीवकों के लिखित ग्रंथ संपदा थी। फिर भी कँवल भारती कुछ विचारों के आधार पर विशेषतः बौद्ध धर्म को आजीवकों का विरोधी मानते हैं। वे इस बात पर सोचते भी नहीं जिस बात को के. दामोदरन से उद्धृत करते हैं। क्या बुद्ध वर्णव्यवस्था, कर्मकाण्ड और ब्राह्मणधर्म के समर्थक थे। अगर नहीं थे तो वे किस परम्परा में आ रहे हैं? जैन एवं बौद्धों का साहित्य सृजित करने वाले कौन से वर्ग एवं जाति से थे इस बात से इसका जवाब मिल जाएगा कि विकृतिकरण से किस धर्म का फायदा हो रहा है। पर इस बात पर कँवल भारती सोचते हुए दिखाई नहीं देते हैं।

[453] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 79
[454] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 51

जिस तरह आजीवकों के विचार कँवल भारती बौद्ध साहित्य से उद्धृत कर यह बात सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि यह विचार आजीवकों के हैं और इन्हीं विचारों के आधार पर बुद्ध ने अपने विचारों की बुनियाद रखी। उदाहरण स्वरूप यह बात रखी जाएगी तो और बात स्पष्ट हो सकती है। कँवल भारती लिखते हैं - "बुद्ध ने भी अपने धर्म की बुनियाद आजीवक सिद्धांतों पर रखी थी। उन्होंने कोई भी नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया था, वरन् थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आजीवक दर्शन के मूल सिद्धांतों को ही स्वीकार किया था।"[455] इसी बात को आगे लिखते हैं कि किन बातों को बुद्ध ने स्वीकार किया है। वे लिखते हैं- "कुछ सिद्धांत तो उन्होंने ज्यों के त्यों अपने दर्शन में शामिल कर लिये थे, जैसे चार महाभूतों का अस्तित्व, आत्मा का न होना, अनिश्चितता का सिद्धांत और कर्मफल का सिद्धांत।"[456]

कँवल भारती का यह मत 'उन्होंने (बुद्ध) कोई भी नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया था' सिवाय अतिवाद के और कुछ नहीं है। इस बात को कुछ इस प्रकार से समझा जाए तो बात और स्पष्ट होगी। बुद्ध और पोट्ठपाद के बीच जो बातचीत हुई वह कुछ इस प्रकार है-

"पोट्ठपाद ने भगवान से पूछा – भगवान! यदि यह ऐसा ही है, तो कम से कम मुझे इतना तो बताएं, क्या 'संसार अनंत है?' क्या केवल यही मत सत्य है और शेष मत मूर्खतापूर्ण हैं?"

तथागत ने उत्तर दिया, "पोट्ठपाद! मैंने इस विषय में कभी अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"

तब, इसी तरह से पोट्ठपाद ने निम्न प्रश्नों को क्रमशः पूछा – क) क्या संसार शाश्वत (नित्य) नहीं है? ख) क्या संसार ससीम (सीमित) है? ग) क्या संसार असीम है? घ) क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं? ङ) क्या आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं? च) क्या जिसने सत्य खोज लिया है, वह मृत्यु के बाद फिर रहता है? छ) क्या वह मृत्यु के बाद फिर नहीं रहता? ज) क्या वह मृत्यु

[455] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 42-43

[456] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 42-43

के बाद रहता भी है और नहीं भी रहता है? झ) क्या वह मृत्यु के बाद न तो रहता है, न ही फिर नहीं रहता है?

"पोट्ठपाद! इस विषय पर भी मैंने अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"[457]

एक, चार महाभूतों के अस्तित्व बुद्ध ने स्वीकार किया यह माना जा सकता है। दो, आत्मा का न होना – इस बारे में बौद्ध साहित्य में भ्रांतियाँ हैं। वहीं उपर्युक्त उद्धरण में यह बात साफ़ दिखाई देती है कि बुद्ध ने कहा है वे आत्मा के होने न होने, शरीर से उसके भिन्न होने न होने जैसी बातों पर कभी अपना मत व्यक्त नहीं किया है। क्यूँ उन्होंने इस पर अपने विचार नहीं रखे? इसका उत्तर वे पोट्ठपाद को देते हुए कहते हैं कि "इनका धम्म से कोई संबंध नहीं है, ये आदमी के सदाचरण में भी सहायक नहीं, ये विराग में सहायक नहीं, ये वासना की शुद्धि में सहायक नहीं, ये शांति में सहायक नहीं, ये मन की एकाग्रता में सहायक नहीं, ये प्रज्ञा की प्राप्ति में सहायक नहीं, ये प्रज्ञा लाभ में सहायक नहीं और न ही ये निर्वाण की ओर अग्रसर करते हैं। इसीलिए मैंने इन विषयों पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"[458] तीन, अनिश्चितता का सिद्धांत– यह मूलतः परलोक के अस्तित्व के संबंध में अजातशुत्रु द्वारा पूछा गया प्रश्न था जिसके उत्तर में संजय ने जो उत्तर दिया उसका अंश कुछ इस प्रकार है- "महाराज, यदि आप पूछें, क्या परलोक है? और यदि मैं समझूं कि परलोक है, तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं दूसरी तरह से भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं है', मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं है'। परलोक नहीं है, मैं ऐसा भी नहीं कहता, परलोक है भी और नहीं भी, मैं ऐसा भी नहीं कहता, परलोक न है और न नहीं है, मैं ऐसा भी नहीं कहता।"[459]

[457] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 289-290
[458] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 2990
[459] कँवल भारती – आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ. सं. 77

इस उपर्युक्त कथन से संजय की बात का स्पष्ट अर्थ निकालना दुष्कर कार्य है। पर यहाँ कँवल यह लिखते हैं कि, 'यहाँ संजय का जोर 'नहीं' पर है, जिसका अर्थ है कि पूर्ण काश्यप और गोशाल आदि की तरह संजय भी परलोक में विश्वास नहीं करते थे। ' यहाँ जो 'नहीं' शब्द पर जोर दिया गया यह बात कही गयी, वह राहुल सांकृत्यायन पहले ही रेखांकित कर चुके हैं। सांकृत्यायन लिखते हैं – "संजय बेलट्ठिपुत्त और निगंठ नातपुत्त (महावीर) दोनों ही के दर्शन अनेकान्तवादी हैं। फर्क इतना ही है, कि महावीर का जोर 'हाँ' पर ज्यादा है और संजय का 'नहीं' पर..."[460] अब फिर से बुद्ध और पोट्ठपाद के संवाद को याद किया जाए तो यह बात सामने आएगी कि परलोक, आत्मा आदि विषय पर बुद्ध ने बात ही नहीं की थी। ये सब विचार बौद्ध साहित्य में बुद्ध के परिनिर्वाण के चार सौ साल बाद बौद्ध साहित्य में आयी हैं। चार सौ साल तक कोई विचार जस-का-तस आया हो यह स्वीकार करना बहुत मुश्किल कार्य है।

चार, कर्मफल का सिद्धांत – जब बुद्ध ने आत्मा को माना ही नहीं, उस पर बात की ही नहीं की तो कर्म के फल की बात स्वीकार करना या उनमें परिवर्तन करना जैसा आरोप स्वयं खंडित हो जाता है। क्योंकि बुद्ध के समय में भी लोगों ने उनके विचारों को ग़लत अर्थ में प्रेषित किया इस बात की कथाएँ मिलती हैं। तब हमें उनके मूल वचनों को ही केंद्र में रखकर मूल्यांकन करना उचित दिखाई पड़ता है। पोट्ठपाद ने बुद्ध को जब यह पूछा कि फिर आप किस विषय में अपने विचार रखते हैं तो बुद्ध ने कहा – "मैंने बताया है कि दुःख क्या है? मैंने बताया है कि दुःख का समुदय (मूल कारण) क्या है? मैंने बताया है कि दुःख का निरोध क्या है? मैंने बताया है, दुःख के निरोध (अंत) का मार्ग क्या है?"[461]

कँवल भारती ने आजीवकों के संबंध में जो लिखा है, उनकी अपनी सीमाएँ हैं। वे यह हैं कि किसी एक विषय पर दिया गया आजीवकों का उत्तर है न कि पूरा दर्शन, जिसे वे भी

---

[460] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. सं. 491

[461] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 290

मानते हैं। पर उसी आधार पर बौद्ध धर्म को उसका शत्रु सिद्ध करते हैं। वे इस बात से भली-भाँति अवगत हैं कि बौद्ध साहित्य बुद्ध के परिनिर्वाण के चार सौ साल बाद लिखा गया। पर जिन्होंने लिखा उसके बजाय उस साहित्य को विकृतिकरण करने के आरोप से नवाज देते हैं। राहुल सांकृत्यायन की यह बात उचित लगती है कि "त्रिपिटक को कंठस्थ करनेवालों ने एक तीर्थंकर की बात को कंठ करने की सुविधा के लिए सबके साथ जोड़ दी- स्मरण रहे बुद्ध के निर्वाण के चार सदियों बाद तक बुद्ध का उपदेश लिखा नहीं गया था।"[462] इसलिए भौतिकवादी परम्परा पर आधारित धर्मों पर बात करते हुए और सावधानी की ज़रूरत महसूस होती है क्योंकि आजीवक, बौद्ध एवं जैन अपने आप में ही एक दूसरे के शत्रु बनते हुए दिखाई देते हैं जबकि उनका साहित्य मौखिक रहा, जिन्होंने लेखन-कार्य किया वे किस उद्देश्य से कर चुके, इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। वैसे डॉ. धर्मवीर यह मानते ही हैं कि "बौद्ध धर्म को ब्राह्मणों ने चलाया। एक बुद्ध क्षत्रिय हो गए पर बाकी सारे बौद्ध दार्शनिक ब्राह्मण थे।"[463] आजीवकों पर चिंतन करते समय यह इसलिए भी ज़रूरी है कि मनुष्यों के मस्तिष्क की अपनी सीमाएँ हैं, "मस्तिष्क में संचित कोई भी जानकारी एक सदी से भी कम समय में मिट जाने वाली होती है। बेशक एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में स्मृति का स्थानान्तरण मुमकिन है, लेकिन कुछ ही स्थानान्तरणों के बाद उस जानकारी के विकृत या लुप्त हो जाने की संभावना होती है।"[464]

वैदिक एवं भौतिवादी परम्परा का संघर्ष रहा है। पर जिन ग्रंथों के आधार पर भौतिकवादी परम्परा के धर्म ही एक दूसरे के शत्रु हो रहे हो ऐसे समय में उन ग्रंथों, उनके सृजन काल एवं उसे सृजित करने वाले की विचारधारा एवं सृजन के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखकर मूल्यांकन करना ज़रूरी हो जाता है। बुद्ध के धम्म संबंध में एक ज़रूरी बात यह है कि, "धम्म

---

[462] राहुल सांकृत्यायन – दर्शन–दिग्दर्शन, पृ. सं. 487
[463] डॉ. धर्मवीर - महान आजीवक : कबीर, रैदास और गोसाल, पृ. सं. (भूमिका)
[464] युवाल नोआ हरारी – सेपियन्स मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास, पृ. सं. 136

का उद्देश्य संसार का पुनर्निर्माण करना है।"[465] इसके लिए बुद्ध-धम्म के दो आधार तत्त्व हैं- प्रज्ञा और करूणा। इस बात को डॉ. आंबेडकर रेखांकित करते हैं और साथ में नैतिकता को धम्म में जो स्थान है उसके बारे में लिखते हैं, "नैतिकता ही धम्म है और धम्म ही नैतिकता है।"[466]

निष्कर्षतः आजीवक एवं बौद्ध धर्म के संबंध में कँवल भारती ने जो विचार रखे हैं उसमें कहीं भी नैतिकता को लेकर कोई बात नहीं कही गयी है। ग्रंथों का अभाव एक कारण हो सकता है लेकिन पाप-पुण्य, कर्मफल आदि के जो उत्तर हैं, वे निराशावादी हैं जिससे समाज में अराजकता सहज ही उत्पन्न हो सकती है। जो उत्तर भी हैं, वे सरल एवं सहज नहीं है जो सामान्य जन को समझ में आ सके। कँवल भारती का चिंतन स्वयं इस बात को कि "बौद्ध धर्म के पतन के बाद जो बुद्ध वचन परम्परा से जन-जीवन में संचित थे, संत काव्य में उन्हीं की अभिव्यंजना हुई है।"[467] पर लोकायत परम्परा को कबीर से जोड़ते हुए बुद्ध को कँवल का चिंतन शत्रु के रूप में मानता है और बुद्ध की परम्परा से काटकर कबीर को सीधे लोकायत परम्परा एवं आजीवक धर्म से जोड़ देता है। यह अपने आप में गहन चिंतन का विषय है। यह इसलिए है क्योंकि परलोक, पुनर्जन्म, आत्मा, ईश्वर जैसी बातों पर विचार रखने से मनुष्य के भौतिक दुःखों का निवारण नहीं होता और इस बात से बुद्ध भली-भाँति परिचित थे। इसलिए उनकी परम्परा को विकृति का शिकार होना पड़ा इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

'बुद्ध ने भी अपने धर्म की बुनियाद आजीवक सिद्धांतों पर रखी थी। उन्होंने कोई भी नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया था, वरन् थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आजीवक दर्शन के मूल सिद्धांतों को ही स्वीकार किया था।' यह कँवल भारती का कहना ठीक वैसा ही जैसा

[465] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 290
[466] डॉ. बी. आर. आंबेडकर, अनु. डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. सं. 291
[467] कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), पृ. सं. 25

रामचंद्र शुक्ल का निर्गुणवाद के संदर्भ में कहना- ''निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ीचक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्त्व की, कहीं पैगंबरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्विकता से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है।' कहने का आशय यह कि कँवल भारती का बुद्ध एवं उनके दर्शन संबंधी जो चिंतन है उनकी मौलिकता को नकार देता है। जो कुछ बुद्ध के दर्शन में है वह आजीवकों की देन है एवं उन्होंने कोई भी नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया यह कहना, उनके पूरे चिंतन का मान घटाने का कार्य प्रतीत होता है। एक ओर, बुद्ध के चिंतन को आजीवकों से प्रभावित भी मानों दूसरी ओर शत्रु भी यह अंतर्विरोध कँवल के चिंतन में मिलता है।

निष्कर्ष :

राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. आंबेडकर यह तुलनात्मक मूल्यांकन अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। जिससे दोनों विद्वानों के आर्य सिद्धांत, बौद्ध धर्म एवं अछूतोद्धार के बारे में क्या विचार थे स्पष्ट रूप में सामने आ जाते हैं। समाजवादी आंबेडकर में जो महत्त्वपूर्ण बिंदु रह गया है वह बौद्ध धर्म के प्रति डॉ. आंबेडकर के विचार। ये विचार किस रूप में समाजवाद को सहायक है, नहीं है, इस बात पर कँवल भारती ने ध्यान नहीं दिया या यह कह सकते हैं कि यह इस मूल्यांकन की कमी रह गयी है। क्योंकि जब डॉ. आंबेडकर मज़दूरों से इस बात की इच्छा रखते हैं कि वे (मज़दूर) जब सत्ता पर क़ाबिज़ होंगे तो उन्हें इस बात को सुनिश्चित करना होगा कि स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व ये सिद्धांत, यह व्यवस्था धारण करें। डॉ. आंबेडकर इस व्यवस्था की पुनर्संरचना की माँग करते हैं। यहाँ बुद्ध का दर्शन आधार बनता है। इस चिंतन को डॉ. आंबेडकर के चिंतन से अलग नहीं किया जा सकता है।

कँवल भारती का दलित धर्म के साथ बौद्ध धर्म संबंधी जो चिंतन आया है मध्ययुगीन कवियों का मूल्यांकन करते हुए, वह और भी संशोधन की माँग करता हुआ दिखाई देता है। क्योंकि आजीवकों का चिंतन हो या बौद्धों का यह विकृतिकरण का शिकार हुआ है इसलिए निष्कर्ष देना अपने आप में दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। यह सही है कि कबीर के चिंतन में बौद्ध एवं लोकायती परम्परा घुली-मिली है। पर कबीर को सीधे दो हजार साल पुरानी परम्परा से जोड़ते हुए बीच की (विशेषतः बौद्ध) परम्परा को शत्रु के रूप में स्थापित करना उचित दिखाई नहीं पड़ता है क्योंकि इस चिंतन में कँवल भारती ग्रंथ सृजनकर्ताओं के उद्देश्य की अनदेखी कर गए हैं। और आधार कोई चिंतन नहीं बल्कि विचार ही हैं, जिन्हें कँवल खुद विकृत मानते हैं। बुद्ध दर्शन के प्रति कँवल एकांगी तो दिखाई देते हैं ही साथ ही बुद्ध के प्रति उनका मूल्यांकन उनके चिंतन की मौलिकता को नकारने में भी दिखाई देता है।

कँवल भारती के वैचारिक लेखन का आधार आंबेडकरवादी चिंतन रहा है, इस बात को स्पष्ट किया गया है। वहीं कँवल भारती का दलित धर्म, आजीवक धर्म, बौद्ध धर्म संबंधी चिंतनपरक जो शोध-लेखन है, उस पर डॉ. धर्मवीर के लेखन का प्रभाव दिखाई देता है। जिससे उनके लेखन में अंतर्विरोध दिखाई देते हैं। अंतिम बात यह कि, 'समाजवादी आंबेडकर' यह किताब कँवल भारती के लेखन कौशल का अप्रतिम उदाहरण कह सकते हैं। यह साहित्य की नयी विधा है जिसे हम आत्मकथा, संस्मरण, जीवनी आदि के समरूप देख सकते हैं। जिसे साहित्य जगत में विचार-विमर्श के लिए स्थान दिया जाना अभी बाकी है।

उपसंहार

'आलोचना का एक दायित्व नयी संस्कृति के लिए संघर्ष भी है। वह नयी संस्कृति साहित्य की भी होगी और समाज की भी। इस प्रक्रिया में आलोचना नए समाज के निर्माण के लिए वैचारिक संघर्ष भी है।' ग्राम्शी के इस कथनानुसार आलोचना नए समाज के निर्माण के लिए वैचारिक संघर्ष भी है और इस संघर्ष के लिए सभ्यताओं की समीक्षा, आलोचना का अनिवार्य अगं भी बन जाती है, इसलिए गजानन माधव मुक्तिबोध का आलोचना को 'सभ्यता समीक्षा' कहना सार्थक प्रतीत होता है। हिंदी दलित आलोचना के संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि वह नयी संस्कृति एवं साहित्य के लिए वैचारिक संघर्ष करने वाली आलोचना है। कँवल भारती की आलोचना को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

कबीर-रैदास की कविता, समाज, दर्शन, चिंतनधारा का मूल्यांकन करते हुए कँवल भारती की आलोचना इस बात को रेखांकित करती है कि कबीर एवं रैदास की परंपरा आजीवक धर्म की परम्परा है। जिसमें पुनर्जन्म, परलोक, अवतार, ईश्वर, आत्मा, जारकर्म आदि का विरोध दिखाई देता है। यह बात वैष्णव धर्म में दिखाई नहीं देती है। हिंदी आलोचना कबीर-रैदास के इस रूप पर शांत दिखाई देती है, वहीं हिंदी दलित आलोचना इस रूप के आधार पर उन्हें वैष्णव एवं रामानदं की शिष्य परंपरा से अलग दलित परम्परा में दिखाती है। कँवल भारती की आलोचना की महत्त्वपूर्ण बात यही है कि वह कबीर-रैदास की परम्परा को लोकायत परम्परा के आजीवक धर्म से जोड़ती है। इस बात की खोज के लिए उनकी आलोचना का आधार डॉ. आंबेडकर का विचार क्रांति और प्रतिक्रांति सहायक दिखाई देता है। जाति-व्यवस्था का सच इस आलोचना के लिए सहायक होता है।

कबीर की कविता में जो दुःख, ग़रीबी एवं सामंती शोषण के शिकार किसान का चित्रण हुआ है। उसमें निहित अर्थ को सामाजिक धरातल पर विश्लेषित करने से कँवल भारती

की आलोचना नहीं चुकती है। यह विशेष बात इस आलोचना में देखने को मिलती है। ‘अब न बसूँ हहि गाउँ गोसाईं/तेरे नेवगी खैरे सयाने हो राम/ गाउँ कु ठाकुर खेत कुनापै, काइथ खरच न पारै/ जोरि जेवरि खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारे हो राम’ इस पद को नामवर सिंह विश्लेषण करते हुए, ‘कबीर का दुख’ निबंध में इसे आध्यात्मिक अर्थ में रेखांकित करते हैं। साथ ही इस बात को भी लिखते हैं कि ‘आध्यात्मिक भाव भूमि पर सामाजिक यथार्थ भारी पड़ता है।’ दोनों आलोचकों की दृष्टियों में जो अंतर है वह यह कि एक, सामाजिक धरातल पर कबीर की कविता का मूल्यांकन है तो दूसरी, कबीर की कविता की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कविता में निहित सामाजिक भावभूमि को समझने का प्रयास।

रैदास के संदर्भ में कँवल भारती की आलोचना मध्ययुगीन समय को दलितों के संदर्भ में व्याख्यायित करती है। तत्कालीन समय में भारत पर मुस्लिम शासन तो कर रहे थे पर द्विजों के विशेषाधिकार सुरक्षित थे, ब्राह्मणवाद को संरक्षण मिल रहा था। वहीं दूसरी ओर दलित समाज दुःख सहता रहा जो सदियों पुराना है। रैदास के चिंतन की परम्परा बौद्ध धर्म से जुड़ी हुई चिंतन परम्परा है, यह बात कँवल भारती की आलोचना सिद्ध करती है। ‘मध्ययुगीन संत आंदोलन की पृष्ठभूमि में मुख्य कारण ‘बौद्ध धर्म के विकास और उसके पतन के बाद हुआ परिवर्तन है।’ इस बात को स्थापित करने का श्रेय इसी आलोचना को जाता है।

कँवल भारती की आलोचना एक ओर निर्गुण कवियों पर जो स्थापनाएँ द्विज आलोचकों की हैं, उन्हें तोड़ने के प्रयास में दिखाई देती है। विकृतिकरण के शिकार दोहों, पदों को रेखांकित करती है। तो दूसरी ओर निर्गुण कवियों के साहित्य में दलित चिंतन की परम्परा को रेखांकित कर, उसके साहित्यिक, सामाजिक आंदोलन की महत्ता से पाठक वर्ग को परिचित करवाती है।

हिंदी दलित नवजागरण के संदर्भ में कँवल भारती की आलोचना डॉ. रामविलास शर्मा की तरह नवजागरण की पूरी प्रक्रिया को अलग करके नहीं देखती है। रामविलास जी जहाँ हिंदी नवजागरण को स्वतंत्र रूप में देखते हैं। बंगला नवजागरण के प्रभाव से हिंदी नवजागरण को अलगाते हैं। कँवल भारती जब हिंदी दलित नवजागरण का मूल्यांकन करते हैं तब वे भारत भर के सभी दलित आंदोलनों का हिंदी दलित नवजागरण से कैसा संबंध रहा, इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हैं। कँवल भारती की आलोचना, दक्षिण भारत में चले 'आदि द्रविड' आंदोलन का प्रभाव स्वामी अछूतानंद के 'आदि हिंदू' आंदोलन पर रहा और भारत वर्ष के सभी दलित आंदोलन एक-दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं, इस महत्त्व को रेखांकित करती है।

दलित चिंतन नवजागरण को 'राजभक्ति एवं देशभक्ति के द्वंद्व में नहीं देखता वह इसे हिंदू धर्म के पुनर्गठन में देखता है। नवजागरण में स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित समाज व्यवस्था की पक्षधरता ज़रूरी है।' इस दृष्टिकोण को केंद्र में रखकर जब कँवल भारती हिंदी नवजागरण के अग्रदूत महावीर प्रसाद द्विवेदी, आ. रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, निराला एवं प्रेमचंद के रचनाकर्म का मूल्यांकन करते हैं, तब हिंदी के प्रगतिशील साहित्यकारों का साहित्य रूढ़िवादी दिखाई देता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं प्रेमचंद का साहित्य इसका अपवाद दिखाई देता है, पर आ. शुक्ल, प्रसाद एवं निराला ये ब्राह्मणवादी नज़र आते हैं।

शिक्षा, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों के प्रति हिंदी के नवजागरण कालीन इन साहित्यकारों का क्या दृष्टिकोण रहा है? अपने साहित्य में इन बिंदुओं को वे किस रूप में प्रस्तुत कर चुके? इन प्रश्नों को आधार बनाकर कँवल भारती हिंदी नवजागरण के इन अग्रदूतों का मूल्यांकन करते हैं। पुनरावृत्ति से बचने के लिए सिर्फ़ एक ही उदाहरण पुनः उद्धृत है- 'अँग्रेजी स्कूल और कालेजों में जो शिक्षा मिलती है, उससे दैन्य ही बढ़ता है और अपना अस्तित्व भी खो जाता है। बी.ए. पास करके झींगुर लोग अगर ब्राह्मण को शिक्षा देने के लिए

अग्रसर होंगे, तो संतराम जी ही की तरह उन्हें हास्यास्पद होना पड़ेगा।’ शिक्षा के संबंध में निराला की उपर्युक्त टिप्पणी निराला के दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देती है। दलित आलोचना के अपने मापदंड हैं, जिसमें समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व के आधार पर नवसमाज निर्माण की पक्षधरता ज़रूरी है।

स्वामी अछूतानंद ‘हरिहर’ के सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक कार्य उसके महत्त्व को कँवल भारती की आलोचना रेखांकित करती है। मूल्यांकन के लिए उनके साहित्य में दलित समाज, आंदोलन, चिंतन एवं उसके इतिहास की स्थिति को दृष्टि में रखा गया है। कबीर का चिंतन स्वामी अछूतानंद के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। जिसका रेखांकन कँवल की आलोचना करती है। सामाजिक सुधार के लिए साहित्य को साधन के रूप में स्वामी अछूतानंद उपयोग करते हैं। राजनीतिक अधिकारों की लंबी लड़ाई अछूतानंद ने की है। जिसके महत्त्व को यह आलोचना प्रस्तुत करती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में कहीं भी इनके साहित्यिक योगदान का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस कमी को कँवल भारती की आलोचना पूरा करती है।

स्वामी अछूतानंद एवं हीरा डोम का साहित्य दलित समाज में चेतना जगाने का कार्य कर रहा था। हिंदी नवजागरण में स्वामी अछूतानंद की भूमिका को विशेष रूप से उद्धृत करती है। साहित्यिक सृजन में अछूतानंद, कबीर की तरह ही सामाजिक असमानता पर प्रहार करते हैं। हिंदू धर्म ग्रंथों की आलोचना उनमें दिखाई देती है। कँवल की आलोचना ने अछूतानंद में जो चिंतन प्रवाह है, उसे कबीर की परम्परा से प्रभावित मानता है। और इसी रूप में वह साहित्य दिखाई भी देता है। जहाँ हिंदी नवजागरण में हिंदू धर्म के पुनर्जागरण के प्रयास हैं तो वहीं दूसरी ओर हिंदी दलित नवजागरण में दलितों के लिए सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक अधिकारों के लिए संघर्ष। स्वामी अछूतानंद का एक और पक्ष महत्त्वपूर्ण है, वह यह

है कि उनका साहित्य एवं पत्रकारिता आधुनिक हिंदी दलित साहित्य एवं पत्रकारिता का प्रथम चरण है।

हिंदी दलित साहित्य का अपना इतिहास है। आधुनिक हिंदी दलित साहित्य लगभग सौ वर्ष पुराना है। मराठी की क़लम उसे नहीं कहा जा सकता है। इस सत्य को उद्घाटित करने का श्रेय इसी आलोचना को जाता है। सौ वर्ष की आधुनिक हिंदी दलित कविता का मूल्यांकन हिंदी साहित्य की सीमाओं को विस्तृत करना ही है। आधुनिक हिंदी साहित्य के समानांतर हिंदी दलित साहित्य का भी इतिहास रहा है। आधुनिक हिंदी दलित कविता की विकास यात्रा के पहले चरण में दलित संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई फिर आज़ादी के बाद उसमें प्रतिक्रांति का स्वर मिला और आगे चल कर समाजवादी स्वर भी दिखाई देता है। नवें दशक की कविताएँ डॉ. आंबेडकर के विचारों को ग्रहण कर और भी चेतना संपन्न हुई और अभिव्यक्ति के स्तर पर और भी कलात्मक नज़र आती है। नवें दशक में मलखान सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय एवं जयप्रकाश कर्दम आदि कवियों ने दलित कविता को मुख्यधारा में स्थान दिया इस महत्त्व को यह आलोचना अधोरेखित करती है।

सन् 1900 से 2000 तक के आधुनिक दलित साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ रही हैं उन्हीं के अनुरूप उनका मूल्यांकन कँवल भारती की आलोचना करती है। जैसा कि पहले भी लिखा गया है कि इस आलोचना का आधार आंबेडकरवादी विचारधारा रही है। इस पूरे मूल्यांकन में दलित आलोचना न सिर्फ़ जाति-चेतना पर बल्कि वर्ग-चेतना पर भी दलित कविता का मूल्यांकन करती है। और यही जाति चेतना एवं वर्ग चेतना आंबेडकरवाद का आधार रही है। मलखान सिंह के मूल्यांकन में यह बात स्पष्ट रूप में रेखांकित हो चुकी है। इस मूल्यांकन में कँवल भारती दलित साहित्यकारों के दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं। इसे आत्मालोचना कहा जा सकता है। जाति के आधार को ही नहीं वर्ग के आधार को भी आत्मसात कर दलित आलोचना और व्यापक हुई है। यह व्यापकता कँवल भारती की आलोचना में दिखाई देती है।

जाति के दंश को जिस गहराई से मलखान सिंह की कविता प्रस्तुत करती है, उसी गहराई के साथ, कविता में अंतर्निहित भाव, विचारों को कँवल की आलोचना सामने लाती है। मलखान सिंह की 'मैं आदमी हूँ - एक' कविता में 'नंगी पीठ' का बिंब आता है - ' मैं आदमी नहीं हूँ स्साब/जानवर हूँ/दो पाया जानवर/ जिसकी पीठ नंगी है।' इन पंक्तियों का मूल्यांकन करने के लिए दलित समाज के प्रति उतनी ही गहरी संवेदनशीलता होनी चाहिए। कँवल की आलोचना स्वानुभूति की आलोचना है, इसलिए वह इस शब्द की गहराई को पकड़ लेती है और विश्लेषण करती है कि 'जानवर की पीठ को भी उसका मालिक ढक देता है, पर दलित वह जानवर है, जिसकी पीठ को कोई नहीं ढकता। उसकी पीठ पर किसी का हाथ नहीं है- न व्यवस्था का और न सत्ता का।'

आलोचक कँवल भारती पर विचारधारा का गहरा प्रवाह है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी विचारधारा एवं उनका आलोचनात्मक दृष्टिकोण जस-का-तस दिखाई देता है। उदाहरण स्वरूप 'कांशीराम के दो चेहरे' या 'मायावती और दलित आंदोलन' पर उनका पत्रकार-संस्थापक रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। डॉ. आंबेडकर लोकतंत्र का आधार पत्रकारिता को भी मानते थे और उसे विशेष महत्त्व देते थे। वे पत्रकारिता के संदर्भ में निर्देश भी देते हैं। उसी के छाया में कँवल भारती की पत्रकारिता दिखाई देती है। एक महत्त्वपूर्ण बात डॉ. आंबेडकर के चिंतन में दिखाई देती है, वह है - व्यक्ति पूजा का विरोध। कँवल भारती जब दलित आंदोलन, कांशीराम एवं मायावती की राजनीति का मूल्यांकन करते हैं, तब उसे पत्रकार के रूप में रेखांकित करते हैं। लोकतंत्र में पत्रकारिता की भूमिका सच को जनता से अवगत करना है, तभी वह सार्थक है। इस संदर्भ में कँवल भारती का पत्रकार रूप दलित राजनेताओं की कमियों को रेखांकित करता है। देश हित एवं दलितों का हित इसमें सर्वोपरि है। इसी कारण, दलितों के नाम पर राजनीति करने वाले नेताओं की दलित विरोधी राजनीति का चेहरा वे समाज के सामने ले आते हैं। विशेष बात यह है कि तब, जब दलित नेता सत्ता के आसन पर आसीन हैं।

ऐसे में इस पत्रकारिता को 'ढिंढोरचियों ने अपने नायकों का ढिंढोरा पीटा हो।' इसके ठीक विपरीत देखा जा सकता है और यही इस पत्रकारिता की सार्थकता है।

एक और विशेष बात यह कि पत्रकारिता को ग़लत अर्थों में लिया जाता है। जिसे दलित का दलितों को लिए लेखन माना गया। इसकी व्याख्या - 'वह समाज, राजनीति और जनतंत्र के बारे में निचले वर्ग से आया हुआ लेखन या चिंतन है' इस रूप में कँवल करते हैं। 'माझी जनता' साप्ताहिक से कँवल भारती ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया उन्होंने दलित साहित्य के कवियों को अपनी पत्रकारिता में स्थान दिया, उनका मूल्यांकन किया, जिससे हिंदी दलित साहित्य के आधार की पहचान हो पायी है। जिनमें - स्वामी अछूतानंद, चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासू एवं ललई सिंह यादव हैं। आज भी दलित पत्रिकाओं में इस कमी को देखा जा सकता है कि वे अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों पर शोधपूर्ण आलेख को कम ही स्थान देते हैं। उनमें ज़्यादातर नव-साहित्य सृजकों को जगह मिलती है।

एक विचारधारा के प्रतिबद्ध आलोचक की पहचान उसके वैचारिक साहित्य से की जा सकती है। 'समाजवादी आंबेडकर', 'राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. आंबेडकर' यह लेखन कँवल भारती की विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है। जिसमें डॉ. आंबेडकर की विचारधारा को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से पाठकों को आधुनिक समय समाज की ज़रूरत के प्रति एवं उसके महत्त्व के प्रति इंगित करना भी दिखाई देता है। व्यक्ति पूजा का विरोधी आंबेडकरवादी चिंतन होने के कारण कँवल भारती तटस्थ होकर मूल्यांकन करते हैं। जिससे उनकी पत्रकारिता एवं साहित्य लेखन गुणवत्तापूर्ण हो जाता है।

आलोचना एवं आलोचक के बारे में बालमुकुंद गुप्त की बात महत्त्वपूर्ण है कि 'आलोचक में केवल दूसरों की आलोचना करने का साहस ही न होना चाहिए वरंच अपनी आलोचना दूसरों से सुनने और उसकी तीव्रता सहने ही हिम्मत भी होनी चाहिए।' (हिंदी

आलोचना के आधार स्तंभ, पृ. 21) कँवल भारती जब दलित आलोचक डॉ धर्मवीर की आलोचना करते हैं, तब वे इसी बात के अनुरूप दिखाई देते हैं। कोई स्त्री विरोधी या पुरुषसत्तात्मक सोच एवं जातिग्रस्त मानसिकता का हो तो वह दलित आलोचक नहीं है न ही उसका साहित्य दलित साहित्य। एक ही साथ ब्राह्मणवाद के विरोध में हो, वहीं जाति-उन्मूलन एवं स्त्री स्वाधीनता के ख़िलाफ़ तो, ऐसा साहित्य दलित साहित्य नहीं हो। कँवल भारती की आलोचना ऐसे विचारक आलोचकों को दलित आलोचक नहीं मानती है। ऐसे आलोचकों के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष कँवल भारती की आलोचना करती है, यह विशेष बात है।

आलोचना का एक दायित्व यह भी होता है कि वह पाठकों की रुचि को जागृत करें। यह काम कँवल की आलोचना चाहे मध्यकाल के निर्गुण कवियों के मूल्यांकन के संदर्भ में हो या दलित साहित्य की अवधारणा एवं आधुनिक दलित कविता के सौ वर्षों के संघर्ष को रेखांकित करते समय हो, बखूबी निभाती है। ऐसा नहीं की कँवल भारती के आलोचनात्मक कर्म में कोई दोष है ही नहीं। कँवल भारती की आलोचना में विचलन है, वह कुछ इस प्रकार है- कई जगह यह आलोचना सपाट बयानी का शिकार है। कहीं मुख्यधारा के आलोचकों से आए सवालों के जवाब में व्यक्तिगत हो जाती है। यह इस आलोचना का सबसे कमजोर पक्ष है। राजेंद्र यादव के संदर्भ में इस बात को देखा गया है। पुनः उदाहरण स्वरूप भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है- 'लिंगों और योनियों का साहित्य लिखने वालों का घमण्ड तो देखिए- उनके पास भाषा है, संस्कृति है, कला है, पर यदि कुछ नहीं है तो नैतिकता नहीं है, शील नहीं है। शराब के लिये रात-रात भर दिल्ली की सड़कों पर आवारा घूमने वाले लेखक को शर्म नहीं आती यह कहते हुए कि उनके पास भाषा और संस्कृति की समझ है।' कँवल भारती अपनी आलोचना की भाषा को लेकर एक-दो बार सतर्क दिखाई नहीं देते हैं। डॉ. धर्मवीर के बारे में लिखते हुए भी वे कुछ इसी तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं- 'धर्मवीर की तुलना उस सुअर से की जा सकती है, जो गंदगी में ही रहता है और गंदगी को ही खोजता है।' यह आलोचना

का सबसे कमजोर पक्ष है। पर, यह भी उतना ही सच है कि आलोचना की भाषा जितनी सहज और सरल होती है उससे पाठकों वर्ग में रुचि का परिष्कार होता है एवं वह उसमें निहित ज्ञान से लाभान्वित। नामवर सिंह और मैनेजर पाण्डेय की आलोचना की भाषा इस बात का उदाहरण है। कँवल भारती की आलोचना भी भाषा के स्तर पर सहज एवं सरल है और यह इसकी सशक्तता है लेकिन आलोचना की अपनी भाषिक मर्यादा होती है, इसका ध्यान वे नहीं रख पाते जब वे आवेश में व्यक्तिगत आलोचना कर बैठते हैं। यहाँ पाणिनि की बात याद आती है वह शब्दों के उच्चारण के संदर्भ में है पर वह किसी भी विधा में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संदर्भ में कही जा सकती है। वे शब्दों के उच्चारण के संदर्भ में कहते हैं कि, 'शब्दों का उच्चारण वैसे ही करना चाहिए, जिस प्रकार व्याघी अपने बच्चे को मुँह में दबाकर चलती हुई, न तो उसे अधिक दबाए रहती है कि उसे पीड़ा हो, न ही इतनी ढिलाई से कि शावक ज़मीन पर गिर जाए।'

एक और विचलन इस आलोचना में दिखाई देता है। वह कबीर की शिक्षा को लेकर है। वे कबीर की पढ़ाई-लिखाई मदरसों में हुई थी, यह बात लिखते हैं। 'मसि कागद छुओ नहीं कलम गही नहिं हाथ' वाले दोहे के विश्लेषण में लिखते हैं कि, 'यदि कागज पर कलम से लिखना ही किसी के शिक्षित होने की पहचान है तो इस आधार पर बुद्ध को भी अशिक्षित मानना होगा, महावीर को भी अनपढ़ मानना होगा, क्योंकि इनमें से किसी ने भी कलम हाथ में पकड़ी थी और न कागज हुआ था।' अपनी बात को मनवाने के शिकार कँवल खुद होते हैं। वे भूल जाते हैं बुद्ध क्षत्रिय कुल में जन्म थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। कबीर के संदर्भ में कोई प्रमाण नहीं है। भारतीय समाज में शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा गया न की क्षत्रियों को।

इलियट ने कहा कि 'आलोचक को व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों तथा विचित्र धारणाओं से पृथक् रहना चाहिए।' (The critic…should endeavor to discipline his personal prejudices and cranks. -The function of Criticism) कँवल भारती की आलोचना

इससे मुक्त दिखाई देती है, पर पूर्ण रूप में नहीं। वे निरंतर अपनी धारणाओं में परिवर्तन करते चलते हैं, जब वे निर्गुण कवियों पर लिखते हैं। कबीर के संदर्भ में ही वे पहले कबीर को नाथों के प्रभाव में देखते हैं। फिर आगे चलकर कबीर की परम्परा नाथों से अलग है इस बात को सिद्ध करते हैं। परलोक, पुनर्जन्म एवं आजीवका के साधन या गृहस्थ जीवन को आधार बनाकर यह बात सिद्ध करते हैं।

कँवल भारती की आलोचना में दलित साहित्य, समाज, इतिहास, धर्म, चिंतन, राजनीति का मूल्यांकन दिखाई देता है। इस आलोचना ने सभ्यता समीक्षा ही की है। एक महत्त्वपूर्ण बात इस आलोचना की है, वह है मध्ययुगीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों तक का जो मूल्यांकन इस आलोचना में मिलता है वह न सिर्फ़ मूल्यांकन है बल्कि नामवर सिंह के शब्दों में कहे तो 'अर्थ मीमांसा पर आधारित मूल्य निर्णय है।' कँवल भारती की आलोचना में अंतर्निहित जो बात है, वह यह है कि वह जातिप्रथा को राष्ट्र की समस्या मानती है। इसलिए वह वैचारिक संघर्ष करती नज़र आती है। इस जातिप्रथा से न सिर्फ़ दलित जातियों का अहित हो रहा है वरन् देश की भी हानि हो रही है। यह चिंतन डॉ. आंबेडकर का चिंतन है जिसका प्रतिबिंब कँवल की आलोचना में इस रूप में आता है। इंसान को इंसान के रूप में स्थापित करना इसका अहम् उद्देश्य दिखाई देता है। इसलिए इस आलोचना में वैचारिक संघर्ष है और स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता सामाजिक व्यवस्था का अंग हो, इस बात के लिए अपनी पक्षधरता जाहिर करती है। कँवल की आलोचना ने न सिर्फ़ साहित्य, समाज एवं इतिहास का मूल्यांकन किया बल्कि उससे सुचिंतित रूप में साहित्य इतिहास लेखन में प्रस्तुत भी किया है। जिससे यह कहा जा सकता है कि कँवल भारती की आलोचना हिंदी दलित साहित्य इतिहास लेखन का कार्य करती आलोचना भी है।

आधार ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ :

1. कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2010
2. कँवल भारती - कबीर : एक विश्लेषण, क्वालिटि बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स 15, सिद्धार्थनगर, गूबा गार्डेन, कल्याणपुर कानपुर- 208016 (उ.प्र.), प्रथम संस्करण - 2015
3. कँवल भारती - कांशीराम के दो चेहरे (दलित पत्रकारिता), अमन प्रकाशन 104A/80C रामबाग, कानपुर – 208012, द्वितीय संस्करण - 2013
4. कँवल भारती - दलित कविता का संघर्ष : हिंदी दलित कविता के सौ वर्ष, स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2012
5. कँवल भारती - दलित चिंतन में इस्लाम, साहित्य उपक्रम लेज़र टाइपसेटिंग निधि लेज़ प्वाइंट शाहदरा – 110032, पुनर्मुद्रण : दिसंबर - 2010
6. कँवल भारती - दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म, स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, संस्करण - 2012
7. कँवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका, साहित्य उपक्रम, मुद्रक – अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32, पुनर्मुद्रण : फरवरी - 2012
8. कँवल भारती - दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, स्वराज प्रकाशन 7/14, गुप्ता लेन अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2009
9. कँवल भारती - धर्मवीर का फासिस्ट चिंतन, स्वराज प्रकाशन 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2012
10. कँवल भारती - माझी जनता दलित पत्रकारिता और विमर्श, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2011
11. कँवल भारती - मायावती और दलित आंदोलन, अमन प्रकाशन 104A/80C रामबाग, कानपुर – 208012, द्वितीय संस्करण - 2013

12. कँवल भारती - राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर (बौद्धधर्म, आर्य सिद्धांत और अछूतोद्धार), साहित्य उपक्रम, मुद्रक – अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32, पुनर्मुद्रण : फरवरी - 2014
13. कँवल भारती - संत रैदास (एक विश्लेषण), बोधिसत्त्व प्रकाशन, सिविल लाइन्स, रौशन बाग, रामपुर – 244901 (उ. प्र.), द्वितीय संस्करण - 2000
14. कँवल भारती - समाज, राजनीति और जनतंत्र दलित-पत्रकारिता : चयनित लेख, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2009
15. कँवल भारती - समाजवादी आंबेडकर, स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2009
16. कँवल भारती - स्वामी अछूतानन्दजी ‘हरिहर’ और हिंदी नवजागरण, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2011

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ : हिंदी

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ - कबीर वचनावली, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण बारहवाँ, सं. 2021
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - त्रिवेणी, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण - 2016
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, सीताबर्डी, नागपुर – 12, संस्करण सन् - 2005
4. ओम पी. गुप्ता (ओमराज़) - कबीर और समकालीन इतिहास, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2011
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/13, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, दूसरा संस्करण - 2017

6. ओमप्रकाश वाल्मीकि - मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, संस्करण - 2014
7. कँवल भारती (संपादक) - दलित निर्वाचित कविताएँ, साहित्य उपक्रम, मुद्रक – अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32, पुनर्मुद्रण : फरवरी - 2012
8. कँवल भारती (संपादक) - स्वामी अछूतानन्दजी ‘हरिहर’ संचयिता, स्वराज प्रकाशन 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2011
9. कबीर साहेब की शब्दावली, (पहला भाग) - बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स (पब्लिकेशन), 14, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद, सन् - 1984
10. गेल ओमवेट (अनुवादक - रमणिका गुप्ता एवं अक़ील क़ैस) - दलित दृष्टि, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2011
11. डॉ. अमरनाथ - हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली – 110002, पहला छात्र संस्करण - 2012
12. डॉ. एन. सिंह - संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, एकांत पब्लिकेशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110093. संस्करण - 2014
13. डॉ. धर्मवीर - कबीर : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन (कबीर : नई सदी में - एक), वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2000
14. डॉ. धर्मवीर - कबीर : बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, द्वितीय संस्करण - 2008
15. डॉ. धर्मवीर - कबीर और रामानंद : किंवदंतियाँ (कबीर : नई सदी में –दो), वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, संस्करण - 2004
16. डॉ. धर्मवीर - कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, आवृत्ति संस्करण - 2015
17. डॉ. धर्मवीर - कबीर के और कुछ आलोचक, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली – 110003, पहला संस्करण - 2009

18. डॉ. धर्मवीर - प्रेमचंद : सामन्त का मुंशी (मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता खण्ड : तीन-क), वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2005

19. डॉ. धर्मवीर - प्रेमचंद की नीली आँखें (मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता खण्ड : तीन-ख), वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2010

20.डॉ. धर्मवीर - महान आजीवक : कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2017

21. डॉ. धर्मवीर - संत रैदास का निर्वर्ण सम्प्रदाय, संगीता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली – 110032, पुनः मुद्रण - 1999

22. डॉ. बी. आर. आंबेडकर (अनुवादक – डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन) - भगवान बुद्ध और उनका धम्म, सम्यक प्रकाशन 32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली – 110063, 26 वाँ संस्करण : फरवरी - 2016

23. डॉ. योगेन्द्र सिंह - संत रैदास, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण - 1998

24. डॉ. रामकली सर्राफ (संपादक) - दलित लेखन का अंतर्विरोध, शिल्पायन, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली – 110032, संस्करण - 2012

25. डॉ. श्यामसुंदर दास (संपादक) - कबीर ग्रंथावली, नागरीप्रचारिणी सभा, श्रीनारायण नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी के लिए आनंद कानन प्रेस, टेढ़ीनीम वाराणसी द्वारा मुद्रित, संस्करण - 25 वाँ

26. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे - दलित साहित्य स्वरूप और संवेदना, अमित प्रकाशन, के. बी. 97, कविनगर गाजियाबाद – 201002, प्रथम संस्करण - 2009

27. डॉ. हरिनारायण ठाकुर - दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली – 110003, पहला संस्करण - 2009

28. धर्मपाल मैनी - भारतीय साहित्य के निर्माता रैदास, साहित्य अकादमी, प्रधान कार्यालय, रवींद्र भवन, 35,फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110001, संस्करण - 1979 ई.

29. नामवर सिंह (संपादक - आशीष त्रिपाठी) - हिंदी का गद्यपर्व, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली – 110002, पहली आवृत्ति - 2011

30. निर्मल वर्मा, कमल किशोर गोयनका (संपादन) - प्रेमचंद रचना-संचयन, साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, 35 फीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली - 110001, प्रथम संस्करण - 1964
31. पुरुषोत्तम अग्रवाल - अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली – 110002, पहली आवृत्ति - 2013
32. पेरियार ई. वी. रामासामी (संपादक - प्रमोद रंजन) - जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. जी-17, जगतपुरी दिल्ली – 110051, दूसरा संस्करण, अगस्त - 2020
33. बजरंग बिहारी तिवारी - दलित साहित्य एक अन्तर्यात्रा, नवारुण, सी-303 जनसत्ता अपार्टमेंट, सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद- 201012, प्रथम संस्करण - 2015
34. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड - 13 (शूद्र कौन थे) - डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, दसवां संस्करण - 2019 (जून)
35. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड - 35 (डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में), डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, पहला संस्करण - 2019 (जून)
36. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड - 37 (डॉ. बी. आर. अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : भाषण) - डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, पहला संस्करण - 2019 (जून)
37. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड -1 (भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा-उन्मूलन, भाषायी प्रांतों पर विचार, रानडे, गांधी और जिन्ना आदि) - डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, सातवां संस्करण - 2013 (अक्टूबर)
38. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड -14 (अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने), डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, दसवां संस्करण - 2019 (जून)

39. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड -7 (क्रांति तथा प्रतिक्रांति, बुध्द अथवा कार्ल मार्क्स) - डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, सातवां संस्करण - 2013 (अक्टूबर)
40. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड -9 (अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी) - डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, सातवां संस्करण - 2013 (अक्टूबर)
41. मलखान सिंह - सुनो ब्राह्मण, रश्मि प्रकाशन, 204, सनशाइन अपार्टमेंट, बी-3, बी-4, कृष्णा नगर, लखनऊ – 226023, पहला संस्करण - 2018
42. मैनेजर पाण्डेय - भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण - 2013
43. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, आवृत्ति संस्करण - 2016
44. मैनेजर पाण्डेय (संपादक – सर्वेश कुमार मौर्य) - साहित्य और दलित दृष्टि, स्वराज प्रकाशन 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, प्रथम संस्करण - 2015
45. युगेश्वर (संपादक) - कबीर समग्र (प्रथम खंड), हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा.लि. पिशाचमोचन, वाराणसी- 221010, पंचम संस्करण - 2001
46. रमणिका गुप्ता (संपादक) - दलित चेतना : सोच, नवलेखन प्रकाशन हजारीबाग, बिहार - 825301, संस्करण - 2012
47. राजकिशोर (संपादक) - कबीर की खोज, वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 2001
48. राजकिशोर (संपादक) - स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण - 1994
49. रामचंद्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2033 वि. (सन् 1976)
50. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद – 211001, पुनर्मुद्रण – 2012

51. रामविलास शर्मा - परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली – 110002, छात्र संस्करण, आवृत्ति - 2016
52. रामविलास शर्मा- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली – 110002, पहली आवृत्ति - 2015
53. रामेश्वर खंडेलवाल, सुरेशचंद्र गुप्त (संपादक) - हिंदी आलोचना के आधार-स्तम्भ, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण - 2010
54. राहलु सांकृत्यायन - मेरी जीवन यात्रा, खंड -2, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, मुद्रक - 'कृष्ण प्रसाद' दर इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस इलाहाबाद, संस्करण (1950) 2000
55. राहुल सांकृत्यायन - ऋग्वेदिक आर्य (ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन), किताब महल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद. 211001, तृतीय संस्करण - 2007
56. राहुल सांकृत्यायन - दर्शन-दिग्दर्शन, किताब महल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद. 211001, प्रथम संस्करण - 1944
57. राहुल सांकृत्यायन - महामानव बुध्द, गौतम बुक सेंटर, चंदन सदन सी-263 ए, गली नं. 9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली – 110093, संस्करण - 2010
58. वीरभारत तलवार - रस्साकशी 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड प्रधान कार्यालय : 75-ए, पाकेट-4, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली - 110091, संस्करण - 2012
59. श्यौराज सिंह बेचैन - अम्बेडकर, गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली – 110002, संस्करण - 2010
60. श्रीमती पुष्पा विमलकीर्ति - महात्मा जोतिबा फुले रचनावली -1, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/13, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, चौथा संस्करण - 2015
61. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली – 110002, तेईसवाँ संस्करण - 2016

संदर्भ ग्रंथ : मराठी

1. चांगदेव भवानराव खैरमोडे - डॉ. आंबेडकर आणि हिंदु कोड बिल, उषा वाघ, सुगावा प्रकाशन, 562, सदाशिव पेठ, पुणे 30, सातवीं आवृत्ति, मे - 2017
2. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर लेखन आणि भाषणे, खंड 19 (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांची पत्रकारिता 1920 ते 1928), डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर चरित्र-साधने प्रकाशन समिती. महाराष्ट्र शासन, शासकीय कुटीर क्र. 18, मंत्रालयासमोर, मुंबई- 400021, पहला संस्करण - 2005
3. डॉ. रावसाहेब कसबे - हिंदुराष्ट्रवाद स्वा. सावरकरांचा आणि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघाचा, अरविदं घनःश्याम पाटकर, मनोविकास प्रकाशन, 3-ए/4, शक्ती टॉवर, 672, नारायण पेठ, नू.म.वि.समोरील गल्ली, पुणे – 411030, तृतीयावृत्ती 25 डिसेंबर - 2019
4. धनंजय कीर - डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, हर्ष भटकळ पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई – 400 026, चतुर्थ संस्करण का दसवां पुनः मुद्रण 2017/ 1939
5. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर लेख और भाषणे , खंड - 38 (डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के भाषण भाग -1, 1920 से 1936), डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली – 110001, पहला संस्करण - 2019 (जून)
6. महात्मा जोतिराव गोविंदराव फुले (संपादक - गंगाधर बनबरे) - गुलामगिरी, किशोर कडू, जिजाई प्रकाशन, 584, नारायण पेठ, कन्याशाळा बसस्टॉप, जिजापूर (पुणे) – 411030, पुनर्मुद्रण - 26 डिसेंबर 2011
7. रावसाहेब कसबे - गांधी : पराभूत राजकारणी आणि विजयी महात्मा, राजन बावडेकर लोकवाङ्मय गृह, भूपेश गुप्ता भवन 85, सयानी रोड, लेनिनग्राड चौक प्रभादेवी, मुंबई – 400025, दूसरी आवृत्ति, नोव्हेंबर - 2020

संदर्भ ग्रंथ : अंग्रेजी

1. Gail Omvedt - Seeking Begumpura : The Social Vision of Anticaste Intellectuals, Navayana Publishing Pvt Ltd, 155, Second Floor, Shahpur Jat, New Delhi 110049, First published in 2008, Reprinted 2011, 2016.

पत्र-पत्रिकाएँ एवं वेब-स्थल सेतु (Website links) :

1. विजय अग्रवाल, दलित सहित्य : राख ही बता सकती है जलने की पीड़ा, हंस, संपा - राजेंद्र यादव, अंक -9, अप्रैल 1995
2. शम्भुनाथ – हिंदी नवजागरण की अवधारणा:संदेह के बावजूद, आलोचना, अप्रैल-जून, 2001,
3. श्यौराज सिंह बेचैन, वह दलितों के मुक्तिबोध थे, अमर उजाला (समाचार पत्र), 1 सितंबर, 2019
4. संपा. अखिलेश - तद्भव, अंक-18, जुलाई-2008,
5. https://hindi.asiavillenews.com/article/population-control-bill-is-this-law-one-more-step-to-suppress-muslim-minorities-and-deprived-to-reduce-their-rights-33983
6. hi.wikipedia.org/wiki/समाजवाद
7. http://streekaal.com/2014/10/blog-post_31-5/ (स्त्री काल : स्त्री का समय और सच - वेब पत्रिका)

परिशिष्ट

साक्षात्कार

1. प्रश्न : क्या आप 'संत रैदास : एक विश्लेषण' यह किताब फिर से लिखना चाहेंगे? क्योंकि इस किताब में रैदास की चिंतनधारा का आदिस्त्रोत बुद्ध को माना गया है। वहीं 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज' नामक किताब में आप कबीर की परम्परा को बुद्ध से अलग मानते हैं?

उत्तर : मैं संत रैदास एक विश्लेषण को फिर से लिखना नहीं चाहूँगा। आजीवक, लोकायत सबका विकास बौद्ध धर्म में ही हुआ।

2. प्रश्न : जब आप यह मानते हैं कि कबीर की परम्परा नाथ-सिद्धों की परम्परा नहीं है तो क्या आप इस बात पर पुनर्विचार करेंगे कि, 'दलित संतों की पृष्ठभूमि के पीछे बौद्धधर्म का विकास और उसके पतन के बाद हुआ परिवर्तन' है?

उत्तर : कबीर ने नाथों और सिद्धों की पाखंड प्रणाली का भी विरोध किया है। मैं इसे पुनर्विचार का विषय नहीं मानता कि दलित संतों की पृष्ठभूमि के पीछे बौद्धधर्म का विकास और उसके पतन के बाद हुआ परिवर्तन' है। यह अवधारणा सही है।

3. प्रश्न : गेल अम्वेट की पुस्तक "सीकिंग बेगमपुरा: द सोशल विज़न ऑफ़ एंटी कास्ट इन्तेलेक्टुअल" पुस्तक के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : मैं गेल अम्वेट को नहीं जानता। वह मुझे नहीं जानतीं। वह मुझे नहीं पढ़ती, मैं उन्हें नहीं पढ़ता।

4. प्रश्न : 'दलित आलोचना अपनी आलोचना बर्दाश्त नहीं करती' यह आरोप दलित आलोचना पर लगता है, इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : आलोचना तार्किक होनी चाहिए, पूर्वाग्रहों और गाली गलौच पर आधारित नहीं होनी चाहिए।

5. प्रश्न : ‘साहित्य की सामाजिक दृष्टि का व्यवस्थित विकास हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना ने किया है।’ यह कहना कितना उचित है? 20 वीं शताब्दी में जो सामाजिक एवं राजनैतिक सुधार आंदोलन हुए क्या उनका हिंदी साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं रहा है?

उत्तर : खेद है कि साहित्य की सामाजिक दृष्टि का व्यवस्थित विकास हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना ने नहीं किया। मार्क्सवादी आलोचकों ने हिन्दुत्व का ही राग गाया है। 20वीं सदी के सुधार आंदोलनों में वर्णव्यवस्था का उन्मूलन नहीं था। इसलिए हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का समर्थन तो मिलता है, छुआछूत का विरोध भी यदाकदा है। परंतु वर्णव्यवस्था का विरोध नहीं है, बहुत सी ब्राह्मणवादी आस्थाओं का विरोध भी मार्क्सवादी आलोचकों ने नहीं किया, जैसा कि दलित आलोचकों ने किया। इसका कारण है कि वे उन आस्थाओं से पीड़ित नहीं थे।

6. प्रश्न : क्या दलित आलोचक की तरह द्विज आलोचक भी दलित साहित्य में निहित अर्थ की मीमांसा कर जीवन मूल्यों की तलाश कर सकता है? और क्या दलित साहित्य के लिए दलित आलोचक की ही ज़रूरत होगी?

उत्तर : ऐसी कोई सीमा रेखा या बंधन नहीं है।

7. प्रश्न : ‘द्विज लेखकों का रचनाकर्म, जो ऊपर से कितना भी मार्क्सवादी, जनवादी और प्रगतिवादी दिखायी दे, पर उसके केंद्र में शत-प्रतिशत ब्राह्मणवाद होता है।’ यह बात मानकर द्विज लेखकों के साहित्य का मूल्यांकन दलित आलोचना करेगी तो यह पूर्वनियोजित-एकांगी नहीं मानी जाएगी?

उत्तर : कोई उदाहरण देकर साबित करिए।

8. प्रश्न : जाति एवं वर्ग की समस्या को हल करने के लिए लोकायत, बुद्ध एवं कबीर से डॉ. आंबेडकर की परम्परा काफ़ी है या दलित वैचारिकी को मार्क्सवादी चिंतन को साथ लेकर चलना होगा?

उत्तर : ब्राह्मणवाद से लड़े बगैर न जाति की समस्या हल हो सकती है और न वर्ग की। पहले जातियाँ ख़त्म हैं, जो वर्गों में भी साफ दिखती हैं।

9. प्रश्न : 'समाजवादी आंबेडकर' किताब लिखने के पीछे क्या उद्देश्य रहा और जहाँ डॉ. आंबेडकर समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर हैं तो वहीं उनके बौद्ध धर्म के प्रति जुड़ाव कितना एक-दूसरे का पूरक है?

उत्तर : समाजवादी आंबेडकर डॉ आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों की एक झलक दिखाती है और बताती है कि वे ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी दर्शन के विरुद्ध प्रखर समाजवादी थे। बौद्ध धर्म समाजवाद का ही मार्ग प्रशस्त करता है।

10. प्रश्न : आपका बसपा विरोध सैद्धांतिक रहा है। 'कांशीराम के दो चेहरे' एवं 'मायावती और दलित आंदोलन' इस बात के गवाह हैं। क्या जाति की राजनीति में फँसी दलित राजनीति भविष्य में वर्ग से जुड़ पाएगी ?

उत्तर : नहीं जुड़ पाएगी

11. क्या भारतीय समाज से समाजावादी धारा (राजनीति की तीसरी) का उदय अब क़रीब माना जाए या उसके आने में अभी और समय लगेगा?

उत्तर : साहित्य की तीसरी धारा बन चुकी है। पर राजनीति की तीसरी धारा अभी निकट भविष्य में तो नहीं दीख रही।

12. प्रश्न : क्या दलित साहित्य जिस तरह जातिगत उत्पीड़न एवं अलगाव के शास्त्र को समझने में सहायक होता है क्या वह आने वाले समय में वर्ग से जुड़कर पूँजीवाद, बाजार एवं भूमंडलीकरण की समस्याओं को समझने में सहायक होगा?

उत्तर : ये आर्थिक जगत के प्रश्न हैं। पूंजी और बाजार दोनों ही जरूरी हैं। इनके बिना काम नहीं चल सकता। पर जरूरत शोषण को रोकने की है। इसका हल राष्ट्रीयकरण ही है, निजीकरण नहीं।

13. प्रश्न : दलित आलोचना के सामने कौन-सी चुनौतियाँ हैं? भविष्य में वह साहित्य का मूल्यांकन सिर्फ़ जाति एवं वर्ग के आधार पर ही करेगी या और कोई आधार इसमें जुड़ जाएगा?

उत्तर : दलित आलोचना का मतलब जातीय दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि निम्न वर्गों की दृष्टि से साहित्य और इतिहास को देखना है।

14. प्रश्न : आपकी आत्मकथा 'कथा क्रम' पत्रिका में प्रकाशित हो रही थी फिर अचानक वह रुक गयी क्या आने वाले समय में इस काम को पूरा करने की आप की योजना है?

उत्तर : कथाक्रम के 8 अंकों में मैंने "कैथ का पेड़" नाम से एक आख्यान लिखा था। वह मेरी आत्मकथा नहीं है, बल्कि मेरी बस्ती की कहानी है। वह मजदूर वर्गों के शोषण की कहानी है। वह अधूरी नहीं है, पूर्ण है।

शोध-आलेख

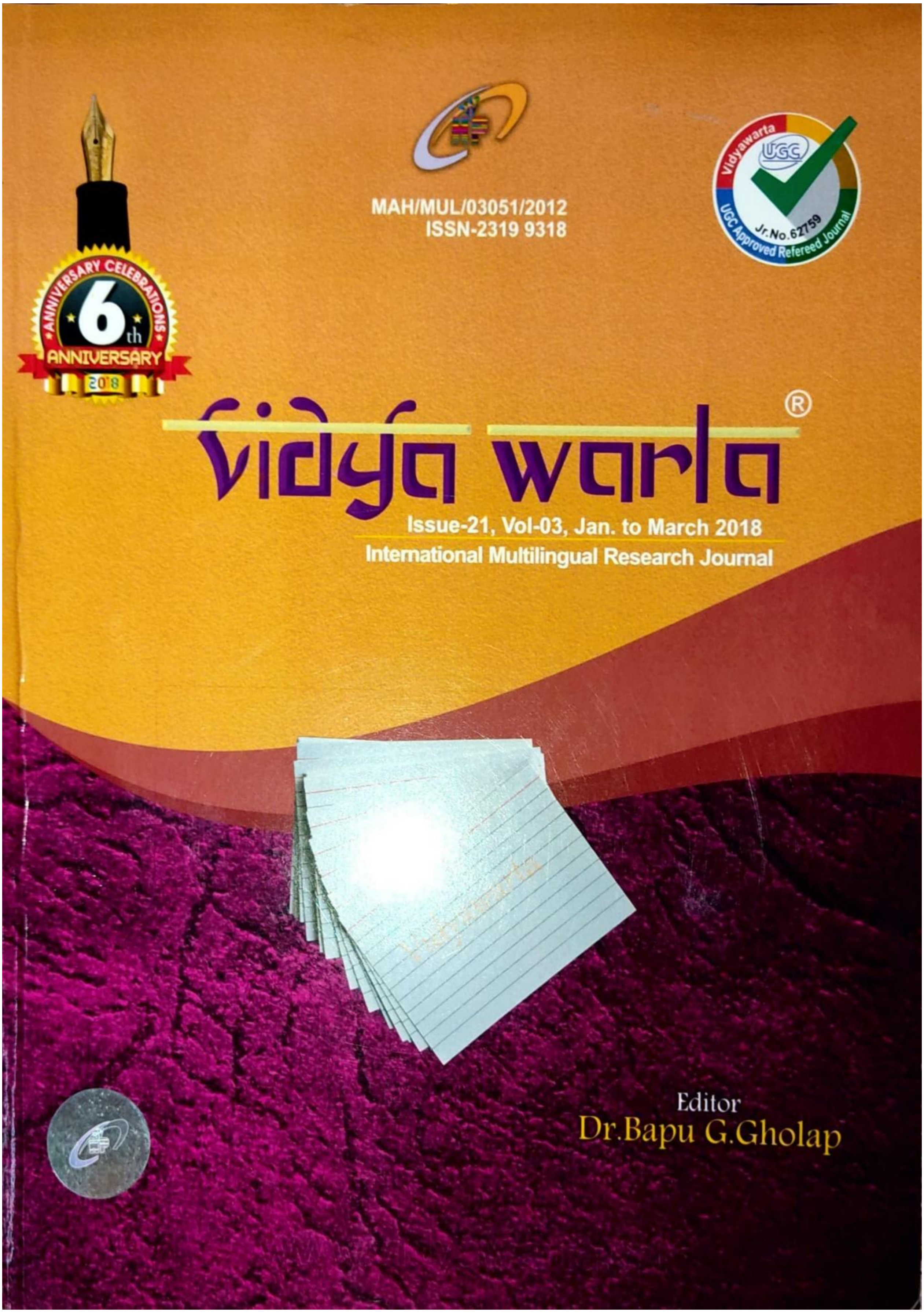
MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318
Vidyawarta
UGC
Jr.No.62759
UGC Approved Refereed Journal
ANNIVERSARY CELEBRATIONS
6th
ANNIVERSARY
2018
Vidya warta
Issue-21, Vol-03, Jan. to March 2018
International Multilingual Research Journal
Editor
Dr.Bapu G.Gholap

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक संशोधन पत्रिका

विद्यावार्ता™

Jan. To March 2018
Issue-21, Vol-03

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

विद्येविना मति गेली, मतीविना नीति गेली
नीतिविना गति गेली, गतिविना वित्त गेले
वित्तविना शूद्र खचले, इतके अनर्थ एका अविद्येने केले

-महात्मा ज्योतीराव फुले

❖ **विद्यावार्ता** या आंतरविद्याशाखीय बहूभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. **न्यायक्षेत्र:बीड**

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat.**

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

25) स्त्रीलिखित कादंबरीतील संस्कृतीसंघर्ष || 112
प्रा.डॉ.सुवर्णा नामदेव पाटील, बोरगांव

26) आधार किंमत आणि शेती विकास || 115
प्रा.डॉ.कृष्णा शंकर शहाणे, नाशिक

27) आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों ----- || 116
अमित कुमार पाँचाल, इन्दौर

28) भारत–इजराइल सम्बन्ध:एक अध्ययन
डॉ० दीर्घपाल सिंह भण्डारी, नई टिहरी, उत्तराखण्ड || 122

29) त्रिलोचन के काव्य में संघर्ष चेतना
डॉ.साताप्पा लहू चव्हाण, अहमदनगर (महाराष्ट्र) || 126

30) समकालीन कथात्मक साहित्य में कथाकार गिरिराज किशोर का स्थान
पूजा चौधरी, जयपूर || 130

31) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में कबीर
कैलास बलिराम घाटे, हैदराबाद || 132

32) महात्मा गाँधी का धर्म–दर्शन
डॉ० प्रवीण कुमार गुप्त, गोरखपुर, उ०प्र० || 137

33) कला साहित्य और सामाजिक चेतना
उज्वल सु. काडोदे, रोहतक (हरियाणा) || 141

34) भवानीप्रसाद मिश्र के साहित्य में अभिव्यक्त गांधीवादी चिन्तन
प्रा.विजय लोहार,जलगांव || 144

35) 'अब वहाँ घोसलें है' कविता संग्रह में बिंब और प्रतीक योजना
डॉ.महिपती जगन्नाथ शिवदास, ता.कराड जि.सातारा || 148

36) होलकर राज्य के महाराजा शिवाजी राव होल्कर तथा ब्रिटिश ए.जी.जी.———
डॉ० पंकज रामलाल मालविया, धार, मध्य प्रदेश || 152

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

MAH MUL/03051/2012 ISSN: 2319 9318 UGC Approved Jr.No.62759 Vidyawarta® Jan. To March 2018 Issue-21, Vol-03 0132

31

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में कबीर

कैलास बलिराम घाटे
शोधार्थी,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

****

'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी' से पहले हिंदी में 'कबीर' पर एक स्वतंत्र आलोचना की पुस्तक नहीं थी। कबीर को हिंदी में स्थापित करने का श्रेय द्विवेदी जी को जाता है। कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समग्र रूप से अध्ययन कर 'कबीर' नामक किताब आ. द्विवेदी जी हिंदी साहित्य में ले आये। इस किताब के बारे में कहा जाता है कि 'यह किताब कबीर के संपूर्ण व्यक्तित्व का सम्यक मूल्यांकन करती है।'

आचार्य शुक्ल जी की मान्यताओं या कसौटियों पर कबीर, एक कवि के रूप में खरे नहीं उतरते। आ. शुक्ल कबीर को पंथ–प्रवर्तक, अटपटी वाणी में अशिक्षित लोगों पर प्रभाव जमाने वाला, टेढ़े–मेढ़े रुपकों का प्रयोग करने वाला तो मानते हैं पर उनकी कविता को कविता नहीं मानते ना ही कबीर को कवि मानते हैं। आ. शुक्ल जी का कबीर विषयक मूल्यांकन रसवादी रहा है। इसी कारण वे कबीर की कविता में मौजूद सामाजिक बदलाव के लिए प्रखर रूप में अपनी बात को अभिव्यक्त करते मनुष्य की कविता तक पहुँच ही नहीं पाये हैं।

आ. द्विवेदी जी ने पहली बार हिंदी में कबीर को लेखक (व्यंग्य लेखक) के रुप में स्थापित करने का प्रयास किया है। डॉ. नामवर सिंह की बातों को उधार ले कर कहा जा सकता है कि– "हिंदी में द्विवेदी जी पहले आदमी हैं जिन्होंने यह घोषणा करने का साहस किया कि 'हिंदी–साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर–जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंद्वी जानता है : तुलसीदास।' यदि हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'कबीरदास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे।' तो 'कबीर' के हजारीप्रसाद में भी यह साहस कम नहीं है।"[१]

यहाँ यह कहा जा सकता है कि आ. शुक्ल जी के संदर्भ में उनकी मान्यताओं एवं स्थापनाओं का आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अस्वीकार कर नई मान्यताओं और स्थापनाओं को निर्मित किया है। यह अस्वीकार का साहस आ. द्विवेदी जी के 'कबीर' नामक किताब में भलि–भाँति देखा जा सकता है। आ. शुक्ल जी अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' एवं 'त्रिवेणी' में 'कबीर' को जायसी, सूर, तुलसी के समकक्ष नहीं मानते हैं और कवियों में सबसे ऊपर तुलसी को स्थान देते हैं। वहीं उपर्युक्त कथन में यह देखा जा सकता है कि आ. द्विवेदी जी तुलसी के समकक्ष कबीर को खड़ा करते हैं।

कबीर की आलोचना की परम्परा में आ. द्विवेदी जी किस रूप में कबीर का मूल्यांकन करते हैं और वह मूल्यांकन कबीर के किस रूप को सामने लाता है यह देखा जाना बहुत महत्वपूर्ण होगा। आ. द्विवेदी जी कबीर के जुलाहा–वंश का अन्वेषण करते हैं। वे पाते हैं "नाथ–मतावलंबी गृहस्थ योगियों की एक बहुत बड़ी जाति थी, जो न हिंदू थी और न मुसलमान। कृकबीरदास जिस जुलाहा–वंश में पालित हुए थे वह उसी प्रकार के नाथ–मतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।"[२]

यहाँ द्विवेदी जी यह बात मानते हैं कि कबीर जुलाहा–वंश में पालित हुए न कि उस वंश में उनका जन्म हुआ। वे मानते हैं, जो ब्राह्मणों से असंतुष्ट थी और वर्णाश्रम के नियमों की कायल नहीं थी ऐसे नाथपंथी योगी गशहस्थों का मुसलमानी रूप कबीर को जुलाहा जाति का है। प्रकारांतर से आ. द्विवेदी जी कबीर के जन्म के बारे में जो प्रवाद है – जिसे आ. शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास में उद्धृत किया कबीर के लालन–पालन के संदर्भ में उसे ही पुख़्ता बनाते हैं। जो प्रवाद है, वह यह है कि – "काशी में स्वामी रामानंद का एक भक्त ब्राह्मण था

जिसकी किसी विधवा कन्या को स्वामी जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी। उली या नीरु नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पालने लगा। यही बालक आगे कबीरदास हुआ।"[३]

आ. द्विवेदी जी कबीर को मुसलमान परिवार में पालित होने की बात तक सहमत हैं और आगे वे कबीर को नाथपंथी सिद्ध योगियों से प्रभावित मानते हैं। इस बात को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उद्धृत भी करते हैं। वे लिखते है कि– "कबीरदास ने भी पोथी, पढ़–पढ़ कर मरने वाले और फिर भी राम को न जान सकने वाले ज्ञान–मूढ़ों की कुछ ऐसी ही खिल्ली उड़ाई है। कबीरदास का स्वर बिल्कुल इन योगियों से मिलता–जुलता है। योगियों के पूर्ववर्ती सहजयानी साधकों में भी यह बात पाई जाती है और टटोला जाए तो यह परंपरा बहुत पुरानी प्रतीत होगी।"[४] आगे वे इस बात को अस्वीकार कर जाते हैं कि सूफियों के प्रेमतत्व का प्रभाव कबीर पर है। वे लिखते हैं "....जो लोग कबीरदास की इस प्रकार की उक्तियों को विदेशी साधकों से प्रभावित बताते हैं वे न जाने क्या सोचते रहते हैंकृ। कबीर ने जब कहा था कि पोथी पढ़–पढ़ कर सारा संसार मर गया मगर पंडित कोई नहीं हुआ, केवल प्रियतम को मिलनेवाला, एक ही अक्षर पढ़नेवाला पंडित हो जाता है; तो वे गोरखपंथी योगमार्गियों के ही स्वर में बोल रहे थे। घर–घर में पुस्तक के बोझढोनेवाले विद्यमान हैं, नगर–नगर में पंडितों की मंडली मौजूद है, वन–वन में तपस्वियों के झुंड वर्तमान हैं, किंतु परब्रह्म को जाननेवाला और उसे पाने का उद्योग करनेवाला कोई नहीं।"[५]

आ. द्विवेदी जी का मानना है कि नाथपंथ में स्मार्त्त आचारों का कोई महत्व नहीं, हिंदू–धर्म से नाथपंथ बिल्कुल विरुद्ध खड़ा है। वे उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट करते है कि कबीर सी युक्तियाँ विदेशी प्रभाव का कारण नहीं वे पहले से ही यहाँ मौजूद हैं। वे उदाहरण देते है– "लोग आचार–आचार कहा करते हैं। भला यह आचार अत्याचार होकर कैसे निभाता है? भोजन में जो घी देते हो तो वह चर्म–भाग से ही आता है। चलते समय जो पैर में जूता देते हो, वह भी तो चमड़े का ही है....। (गो.सि.सं.पृ.६०–६१).... क्या ये युक्तियाँ कबीरदास की युक्तियों की भाँति ही चकनाचुर कर देनेवाली नहीं हैं? फिर बड़े नामी–गरामी पंडित किस मुँह से कहा करते हैं कि भारतवर्ष में कबीरदास के पहले ऐसी युक्तियाँ अपरिचित थीं और कबीरदास में जो इस प्रकार की युक्तियाँ मिलती हैं वे विदेशी प्रभाव के कारण?"[६]

यहाँ इन उदाहरणों से इस बात का पता चलता है कि आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर को सिर्फ नाथपंथी सिद्ध योगियों से प्रभावित मानते हैं। इसके बरक्स डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल की बात याद आती है, जो इसे और पुख़्ता करती है, वह यह है कि– "द्विवेदी जी की पुस्तक 'कबीर' के परिशिष्ट में दिए गए पदों की चर्चा करते हुए विनांद से उस पूरी पुस्तक को 'कबीर का ब्राह्मणवादी एप्रोप्रिएशन कहे बिना रहा नहीं जाता।' वैसे रहा जा सकता, यदि पुस्तक को ध्यान से पढ़ लेते। साथ में द्विवेदी की 'हिंदी साहित्य की भूमिका' भी पढ़ लेना और हितकारी रहता। 'कबीर' पढ़ते तो भी 'देख' पाते कि द्विवेदी जी कबीर का ब्राह्मणीकरण नहीं, नाथीकरण (चूँकि द्विवेदी जी ही नहीं, सभी इतिहासकार नाथों को महायान बौद्ध परम्परा के लोकप्रिय रूप से विकसित मानते हैं, इसलिए असल में बौद्धीकरण) कर रहे थे।"[७]

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल जी की बात से पूर्णतः स्वीकार या सहमत हुआ नहीं जा सकता ना ही पूर्णता अस्वीकार भी किया जा सकता है। वहीं अग्रवाल जी की बात कबीर के परिशिष्ट पर हुई आलोचना को लेकर है। यहाँ एक बात प्रतीत होती है कि आ. द्विवेदी 'कबीर' का नाथीकरण कर रहे थे। यह बात कुछ देर के लिए मान लेते हैं।

आ. द्विवेदी कबीर को रामानंद का शिष्य मानते है, उसका आधार सभी परंपराएँ जो इस बात का समर्थन करती है कि कबीर और रामानंद का संबंध था। यहाँ द्विवेदी जी परंपराओं पर विश्वास करते हैं और कबीर के बारे में लिखते हैं कि– "सभी परम्पराएँ इस बात का समर्थन करती हैं कि कबीरदास का रामानंद के साथ संबंध था। कबीरदास ने स्वयं स्वीकार किया

है रामानंद ने उन्हें चेताया था, पर क्या चेताया था और स्वयं क्या चेते हुए थे इस विषय में नाना मुनियों के नाना मत है।" यहाँ इस प्रश्न को सुलझाने के बजाय द्विवेदी उसे गौण बनाकर छोड़ देते हैं। वे लिखते हैं कि– "केवल एक ही बात उनके (रामानंद) सर्व शिष्यों में समान भाव से समादृत है : अनन्य भक्ति ही मोक्ष का अव्यवहित उपाय है प्रपत्ति या शरणागति ही मोक्ष का परम साधन है।.... ऐसी हालत में यह प्रश्न बहुत कुछ गौण हो जाता है कि कबीर ने जो कुछ रामानंद से चेता था वह रामानंद के चेते हुए ज्ञान का कौन–सा रूप है।" वे आगे कबीर को सहज ही रामानंद का शिष्य बनाते है और उस महत्वपूर्ण सवाल को गौण कर देते है जिसे सुलझाए बिना कबीर रामानंद संबंध पुख्ता नहीं दिखाई देता है। वे आगे, कबीर को सिद्धनाथ–योगियों की परम्परा के प्रभाव में दिखाने वाले कबीर को रामानंद से जोड़कर सिद्धनाथ–योगियों की परम्परा सेदूर कर देते है और तुरंत यह बात सिद्ध करने में लग जाते हैं कि कबीर–रामानंद का संबंध था और वे भक्त है। इन बातों को हम इस रूप में देख सकते हैं– "रामानंद के प्रधान उपदेश अनन्य भक्ति को कबीर ने शिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, छवि और शिक्षा के अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था।...... और खूब संभव है, जिनका ज्ञान उन्हें रामानंद जी के सत्संग से प्राप्त हुआ था।" इस उद्धरण पर डॉ. धर्मवीर जी की टिप्पणी काफी महत्त्वपूर्ण है, वे कहते हैं– "इस कथन में अचरज की बात है कि डॉ. द्विवेदी मूल प्रश्न को गौण बना कर छोड़ देते हैं। जो असली समस्या है, जिसके कारण कबीर अस्पृश्य कहे गए थे, उसे गौण मान कर ऊल–जलूल जनश्रुतियों को प्रश्रय दिया जा रहा है और कबीर को मात्र भक्त कहने की कोशिश है।"

आ. द्विवेदी जी कबीर को रामानंद का शिष्य मानने के बाद या कहें कबीर ने रामानंद की अनन्य भक्ति शिरसा स्वीकार करने के पश्चात् वे कहते हैं कबीर को जो ज्ञान मिला वह ज्ञान सिद्ध–नाथ योगियों से उन्हें अलग करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि द्विवेदी जी यहाँ कबीर को नाथ–सिद्ध योगियों की परम्परा से अलग कर देते हैं, उन्हें अलग मानते हैं। वे लिखते हैं कि– "कबीरदास को अक्खड़ सिद्धों और योगियों की परंपरा से अलग कर देता है। कबीर के विद्यार्थी के लिए इसका महत्व है।" यहाँ पुरुषोत्तम अग्रवाल की बात 'द्विवेदीजी कबीर का नाथीकरण कर रहे थे' स्वयं खारिज हो जाती है।

अब तक की बातों से यह देखा जा सकता है कि आ.द्विवेदी जी कबीर को मुसलमान घर में पालित मानते है, कबीर की काव्य उक्तियों पर विदेशी प्रभाव नहीं मानते हैं और उन्हें सिद्ध–नाथ योगियों की परम्परा से जोड़ते हैं एवं कबीर को रामानंद का शिष्य स्थापित करते है। इन सब बातों से एक बात सामने आती है वे प्रकारांतर से आ. शुक्ल जी की ही बातों को पुनः कह रहे हैं। बात रखने की शैली घुमावदार है पर आखिर में वही बात स्थापित करते हैं जो आ. शुक्ल जी का कबीर के बारे में कहना था।

बहरहाल, आ.द्विवेदी जी आगे कबीर को पुराण–विरोधी नहीं थे, ऐसा भी मानने के लिए तैयार हो जाते है। वे लिखते हैं– "कबीरदास के उन पदों का जिनमें उन्होंने बारंबार 'दशरथसुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है जाना। जैसी बातें कहकर पुराण प्रतिपादित सगुण ब्रह्म का प्रत्याख्यान करना चाहा है। क्या ऐसा अर्थ भी लगाया जा सकता है कि मुँह से विरोध करते रहने पर भी कबीरदास असल में पुराण–विरोधी नहीं थे।"

'कबीरदास असल में पुराण–विरोधी नहीं थे' यह अर्थ लगा सकने एवं इस बात को स्थापित करने से कबीर भक्त बने रहेंगे जिससे उनके दूसरे रूप पर पर्दा पड़ा रहेगा जो हिंदू–मुस्लिम धर्म के आडम्बरों के प्रति विद्रोही है एवं वे वाणियाँ जिनमें समतामूलक समाज की मांग है हाशिए पर चली जायेंगी। आ. द्विवेदी का कबीर के मूल्यांकन में यही रूप दिखाई देता है जो सिर्फ कबीर के आध्यात्मिक वाणियों का मूल्यांकन करता है।

आ. द्विवेदी जी कबीर के कठोर एवं आक्रामक रूप को प्रश्रय नहीं देते है, देते हैं तो सिर्फ कबीर के भक्त रूप को। कबीर एवं उनकी भक्ति को वे इस रूप में प्रस्तुत करते है– "कबीर ज्ञान के हाथी पर चढ़े हुए

थे, पर 'सहज का दुलीचा' डाले बिना नहीं, भक्ति के मंदिर में प्रविष्ट हुए थे, पर 'खाला का घर' समझकर नहीं, बाह्याचार का खंडन किया था, पर निरुद्देश्य आक्रमण की मंशा से नहीं, भगवद्विरह की आँच में तपे थे, पर आँखों में आँसू भरकर नहीं, राम को आग्रहपूर्वक पुकारा था, पर बालकोचित मचलन के साथ नहीं–सर्वत्र उन्होंने एक समता (बैलेंस) रखी थी। केवल कुछ थोड़े–से विषयों में वे समता खो गए थे।"[१४] यहाँ 'केवल कुछ थोड़े से विषयों में वे समता खो गये थे' इस पंक्ति पर ध्यान देना आवश्यक जान पड़ता है। वे कौन–सी बातें थी या विषय थे जहाँ वे अपनी समता खो बैठे, यह सोचने का विषय है। आगे द्विवेदी जी लिखते हैं "अकारण सामाजिक उच्च–नीच मर्यादा के समर्थकों को वे कभी क्षमा नहीं कर सके, भगवान के नाम पर पाखंड रचनेवालों को उन्होंने कभी छूट नहीं दी, दूसरों को गुमराह करने वालों को उन्होंने कभी नह देना उचित नहीं समझा। ऐसे अवसरों पर वे उग्र थे, कठोर थे और आक्रामक थे।"[१५] शीघ्र उद्धृत इन पंक्तियों का यह अर्थ तो नहीं कि सामाजिक जड़ता पर प्रहार करने वाले कबीर जब सामाजिक कुरीतियों, बाह्याचार पर प्रहार करते हैं तब क्या इन्हीं विषयों पर कबीर ने समता (बैलेंस) खो दी। ऐसा तो मानना नहीं कहीं द्विवेदी–जी का? इस बात का अर्थ खुलता है इन पंक्तियों से जब कबीर के मूल्यांकन में वे कहते हैं, "कबीर धर्मगुरु थे। इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही अस्वाद्य होना चाहिए, परंतु विद्वानों ने नाना रुपों में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया।"[१६] यहाँ द्विवेदी जी कबीर के सामाजिक उत्थान के लिए संघर्षरत रूप की अनदेखी करते हैं और जवाब अप्रत्यक्ष रूप में दे जाते हैं कि कबीर जब सामाजिक कुरीतियों, बाह्याचार पर प्रहार करते हैं तभी अपनी समता (बैलेंस) खो देते हैं। कबीर के इसी रूप को हाशिए पर डालकर आ. द्विवेदी जी कबीर को आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रखने एवं महत्वपूर्ण मानने के प्रयास में दिखाई देते हैं।

आ. द्विवेदी जी कबीर की भाषा का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि– "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया–बन गया है तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके।"[१७] प्रकारांतर से द्विवेदी जी आ. शुक्ल से कोई अलग या नई बात नहीं कर रहे हैं। भाषा के संदर्भ में द्विवेदी जी का मूल्यांकन शुक्ल जी के समान ही दिखाई देता है। दोनों की दृष्टि में कबीर की कविता की भाषा अटपटी, टेढ़े–मेढ़े रूपकों से ही भरी हुई है। भाषा कबीर के सामने चुप एवं लाचार है अर्थात् चाहकर भी वह व्याकरणिक दृष्टि से दोषपूर्ण कबीर की भाषा को दोषरहित बनाने की बात भी कबीर से नहीं कर पाती है।

कबीर की भाषा का मूल्यांकन करते हुए आ. शुक्ल जी कहते हैं कि– "यद्यपि वे पढ़े–लिखे न थे पर उसकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य–चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।"[१८] यहाँ हम देख सकते हैं द्विवेदी जी ने इसी बात को प्रकारांतर से और अधिक स्पष्ट शब्दों में विस्तृत रूप दिया। वे लिखते हैं कि– "सच पूछा जाए तो आज तक हिंदी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करनेवाली भाषा, बिना कहे भी कुछ कह देनेवाली शैली और अत्यंत सादी किंतु अत्यंत तेज प्रकाशन–भंगी अनन्य–साधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करने वाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करनेवाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है। व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठों में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।"[१९] यहाँ दोनों आचार्यों का कबीर की भाषा पर जो मूल्यांकन है समान है। फर्क यह है कि आ. शुक्ल की बात को द्विवेदी जी स्पष्ट एवं विस्तार देकर कहते हैं।

आ. द्विवेदी जी के 'कबीर' नामक किताब में कबीर का भक्त रूप, व्यंग्य लेखक, सिर से पैर तक

मस्त मौला, दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल एवं वज्रादपि कठोर आदि रूपों को तो देखा जा सकता है पर यह सब भक्त के रूप के इर्द–गिर्द ही। वह कठोर एवं आक्रामक रूप नहीं जो समाज सुधार को सर्वोपरि मानता हो, जातिभेद, ऊँच–नीच, छुआछूत से ऊपर उठकर इंसान को इंसान के रूप में देखना चाहता हो, जिसका सपना समतामूलक समाज निर्माण का है। यहाँ डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल जी की एक बात, कबीर के कवि रूप को लेकर ध्यान देने योग्य है, वे कहते है कि– "शुक्ल जी की 'अश्रद्धा' और द्विवेदी जी की 'श्रद्धा' दोनों ही कबीर के समय की विशेषता और उनकी कविता के मर्म की उपेक्षा करती है।"[२०]

आ. द्विवेदी जी का कबीर विषयक मूल्यांकन जुलाहे जाति के उद्भव–विकास, सिद्ध नाथ योगियों की साधना पद्धति से होते हुए वैष्णव भक्ति तक आकर कबीर को रामानंद का शिष्य बनाता है। साथ ही कबीर को एक व्यंग्य–लेखक के रूप में स्थापित करता है। लेकिन इस मूल्यांकन में कबीर का वह रूप जो सामाजिक–धार्मिक बुराईयों, जातिगत–कुलगत विषमताओं एवं बाह्य–आडम्बरों के दुरुह दुर्गों को नेस्तानाबूद करता है अदृश्य ही रहा। 'कबीर' नामक किताब में आध्यात्मिक रस में भिगा हुआ भक्त कबीर और उस आध्यात्मिक रस में डुबी हुई उनकी वाणियाँ एवं कुसुमादपि कोमल उनका रूप सामने आता तो है लेकिन वज्रादपि कठोराणी एवं आक्रामक समतामूलक समाज की नींव रखने वाला सृजनकर्ता रूप नहीं।

संदर्भ ग्रंथसूची:

१. आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२, तेईसवाँ संस्करण–२०१६

२. आ. रामचंद्र शुक्ल–हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशक–विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, सीताबर्डी, नागपुर–४४००१२. संस्करण–२००५

३. डॉ. धर्मवीर – कबीर : नई सदी में (तीन) कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, २१–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–११०००२, द्वितीय संस्करण–२००८

४. डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल – अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२, पहली आवृत्ति–२०१३.

(Footnotes)

१ www.hindisamay.com/content/3105/1/नामवर–सिंह–आलोचन–अस्वीकार–का–साहस. बेचग

२ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं.२१

३ आ. रामचंद्र शुक्ल–हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.७१

४ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं.३९

५ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं.३९

६ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं.४३

७ पुरुषोत्तम अग्रवाल–अकथ कहानी प्रेम की, पृ.सं.२०६

८ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं. ८३

९ हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं. ८३

१० हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ.सं. ८५

११ डॉ. धर्मवीर–कबीर:बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, पृ.सं.१४९

१२ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं.८५

१३ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. ९८

१४ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. १३५

१५ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. १३५

१६ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. १७०

१७ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. १७०

१८ आ. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास. पृ.सं.७३

१९ हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ.सं. १३१

२० पुरुषोत्तम अग्रवाल–अकथ कहानी प्रेम की. पृ.सं.२०६

❑❑❑

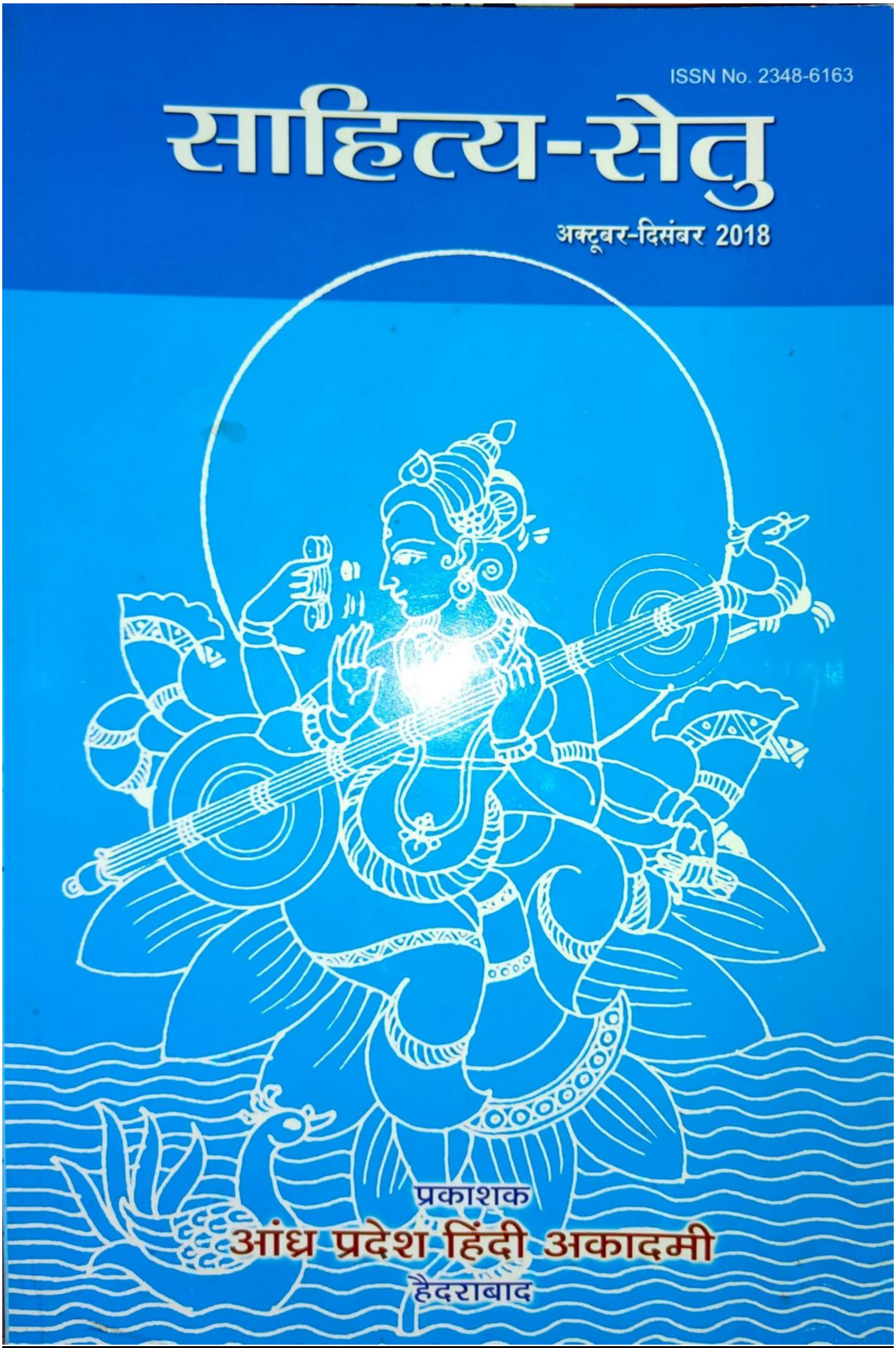
ISSN No. 2348-6163
साहित्य-सेतु
अक्टूबर-दिसंबर 2018
प्रकाशक
आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी
हैदराबाद

साहित्य-सेतु

त्रैमासिक

वर्ष : 5 ◆ अंक : 17 ◆ अक्तूबर-दिसंबर 2018 ई.

संपादक

डॉ.चंद्रा मुखर्जी

निदेशक

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी

परामर्शमंडल

डॉ.एम.वेंकटेश्वर

डॉ.बी.सत्यनारायण

डॉ.शुभदा वांजपे

डॉ.अनिता गांगुलि

डॉ.वी.कृष्ण

डॉ.ऋषभदेव शर्मा

सह संपादक

श्रीमती पी.उज्ज्वला वाणी

प्रकाशक

आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी

हैदराबाद

विषय-क्रम

पृ.सं.

5 संपादक

आलेख

8 *छायावाद के सौ वर्ष - डॉ. एम.वेंकटेश्वर*

15 *अंग्रेजी साहित्य में महिला लेखिकाएँ एवं नारी मुक्ति - डॉ. चन्द्रा मुखर्जीज*

18 *प्रयोजनमूलक भाषा और उसकी व्यावहारिक अनिवार्यता : शैक्षणिक स्तर पर (तेलुगु राज्यों के संदर्भ में) - डॉ. बी.सत्यनारायण*

22 *जन चेतना के प्रयुक्ता : जी. कल्याणराव का साहित्य - डॉ. जी.वी.रत्नाकर*

27 *गाँधीवादी चेतना के कवि : हरिवंशराय बच्चन - डॉ.राजीव कुमार*

30 *गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में चित्रित बुंदेलखंड की स्त्रियों का जीवन संघर्ष - अनिल कुमार*

33 *कमलकुमार और आवर्तन-सैईदा मेहराज*

36 *नरेन्द्र कोहिली की श्रेष्ठ कहानी ''गाडीवान'' - बी.एल.सौम्या*

39 *सुविख्यात शैलीकार : रामवृक्ष बेनीपुरी - राजेन्द्र परदेसी*

44 *''अन्या से अनन्या'' में अभिव्यक्त स्त्री जीवन की विविध छवि - विद्याराम मीना*

49 *अफ्रो-अमेरिकन स्त्री कविताओं में सामाजिक भेदभाव - सुनीता प्रधान*

54 *कँवल भारती का आलोचना-कर्म और कबीर - घाटे कैलास बळीराम*

60 *'पोस्टर'(डॉ.शंकर शेष) नाटक में लोकपक्षीय चिंतन और विचारधारा - डॉ. लीना बी.एल*

65 *''चित्रा मुद्गल का पोस्ट बाक्स नं 203, नाला सोपाराः एक परिचय'' - यू. हरिकृष्ण आचार*

67 *विमर्शों की भाषा के रूप में हिन्दी - कुमार सौरभ*

71 *दक्खिनी हिन्दी और हिन्दी में अंतर - डॉ. डी.जयप्रदा*

76 *श्रीकांत वर्मा का काव्य संसार - डॉ.सन्तोष कुमार*

कँवल भारती का आलोचना-कर्म और कबीर

- घाटे कैलास बळीराम

हिन्दी दलित साहित्य की वैचारिकी एवं आलोचना विधा में एक महत्वपूर्ण नाम 'कँवल भारती' है। कँवल भारती ने हिन्दी दलित साहित्य में कविता, आलोचना, वैचारिकी, पत्रकारिता आदि विधाओं में महत्वपूर्ण किताबें लिखी हैं। सबसे महत्वपूर्ण काम उनका आलोचना एवं वैचारिकी के क्षेत्र में दिखाई देता है। उन्होंने कविता के क्षेत्र में भी अपनी कलम चलाई है। 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' कविता संग्रह हिन्दी साहित्य में काफी प्रसिद्ध रहा है। इसके बाद उनका कोई कविता संग्रह देखने को नहीं मिलता पर वैचारिकी एवं आलोचना के क्षेत्र में उनकी सक्रियता आज भी देखने को मिलती है।

डॉ. धर्मवीर दलित आलोचना के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। उन्होंने कबीर एवं रैदास पर आलोचनात्मक कार्य किया है फिर भी कँवल भारती को फिर से कबीर पर आलोचनात्मक कार्य करने की क्यूँ जरुरत महसूस हुई? 'दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म' (2002), 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज' (2010), 'कबीर का ज्ञानोदय' (2012) एवं 'कबीर : एक विश्लेषण' (2015) इन चारों किताबों का अध्ययन करने के पश्चात् एक उत्तर मिलता है- 'आजीवक कबीर' अतः आजीवक कबीर के खोजी डॉ. धर्मवीर के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास यह किताबें हैं। इसे स्वयं कँवल भारती कबीर पर लिखी किताब में इस प्रकार लिखते हैं- डॉ.धर्मवीर न केवल आजीवक कबीर के खोजी हैं, वरन् प्रतिष्ठापक भी हैं यह पुस्तक उनके कार्य को आगे बढ़ाने की दिशा में मेरा एक विनम्र प्रयास है।[1]

आजीवक धर्म, दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति आदि की इतिहास में खोज-पड़ताल ही इन किताबों का मुख्य उद्देश्य रहा है अतः कहना न होगा कि इसके केंद्र में कबीर रहें हैं। कबीर के इर्द-गिर्द ही यह सभी बातें आती है। हिन्दी आलोचना में जो लड़ाई कबीर को लेकर छिड़ी हुई है क्या ऐसे में दलित आलोचकों का यह दावा कि कबीर आजीवक धर्म से संबंधित है कितना सही है इसका विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना बहुत जरुरी लगता है।

डॉ.धर्मवीर अपने आलोचनात्मक लेखन से यह तो सिद्ध करते प्रतीत होते हैं। कबीर का धर्म हिन्दू नहीं है। ना ही वे वैष्णव हैं, पर कबीर के धर्म को सिद्ध करने में वे बौद्ध धर्म की आलोचना कर उसे दलित धर्म से अलग भी मानते हैं वे बौद्ध धर्म को क्षत्रिय धर्म मानते हैं और दलित धर्म का नुकसान सबसे पहले बुद्ध धर्म की स्थापना से मानते हैं वे लिखते हैं- दलित को सबसे पहला धोखा और नुकसान बुद्ध के धर्म की स्थापना के रूप में हुआ था। बुद्ध के समय में पृथक धर्म की सबसे ज्यादा जरूरत दलित को थी। लेकिन उस का नेतृत्व बुद्ध उड़ंग कर ले गए।[2] इस बात की खोज का दूसरा चरण कँवल भारती का कबीर पर किया गया आलोचनात्मक कार्य है अतः इस कार्य को इसी रूप में देखने का प्रयास किया गया है।

आजीवक धर्म और दर्शन की खोज जब कँवल भारती करते हैं तो वे इस पूरी परम्परा को सामने लाकर रख देते हैं- जिसमें पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केश कम्बल, प्रक्रुध कात्यायन एवं संजय बेलट्ठिपुत्त आदि आते हैं तथा इन का दर्शन 'आजीवक दर्शन' कहलाता है। इस दर्शन ने वैदिक धर्म एवं दर्शन पर कभी विश्वास नहीं किया। इनका अपना दर्शन है। कँवल भारती खोज करके बताते हैं- आजीवक वे लोग थे, जो घूम-फिरकर अपनी जीविका कमाते थे दूसरे शब्दों में, अपनी जीविका के लिये भ्रमण करनेवाले आजीवक कहलाते थे।[3] पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केश कम्बल, प्रक्रुध कात्यायन एवं संजय बेलट्ठिपुत्त इसी आजीवक परम्परा के प्रतिनिधि हैं। पूर्ण काश्यप - 'अक्रियवाद', मक्खलि गोशाल -'नियतिवाद' एवं अजित केश कम्बल - 'अच्छेदवाद' सिद्धांत के साथ दिखाई देते हैं। इन सिद्धांतों का प्रभाव बुद्ध पर भी दिखाई देता है, थोड़े-बहुत फरक से बुद्ध इन्हें स्वीकारे हुए हैं। कँवल भारती कहते हैं - जैसे चार महाभूतों का अस्तित्व, आत्मा का न होना, अनिश्चितता का सिद्धांत और कर्मफल का सिद्धांत चार महाभूतों का दर्शन आजीवक दार्शनिक अजित केस काम्बली का था, तो कर्मफल का यह सिद्धांत कि मृत्यु के बाद व्यक्ति कोई कर्मफल नहीं भोगता है, बुद्ध ने पूर्ण काश्यप से लिया था। अनिश्चिता का सिद्धांत संजय बेलट्ठिपुत्त का था, जिसके आधार पर महावीर ने अपना स्यादवाद का दर्शन खड़ा किया था और बुद्ध ने 'अव्याकृत' का। इसी के आधार पर बुद्ध ने यह सिद्धांत गढ़ा था कि लोक, जीव-शरीर की एकता और निर्वाण के बाद की अवस्था अव्याकृत (अकथनीय) है, अर्थात् इनके विषय में कुछ भी निश्चितता के साथ नहीं कहा जा सकता। सम्पूर्ण आजीवक दर्शन अनित्यवादी था। वह शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता था। इसी आधार पर आजीवक दर्शक लौकिक था और पुनर्जन्म का खंडन करता था।[4]

आजीवक दार्शनिक गोशाल महावीर के साथ 6 वर्ष तक रह चुके थे। महावीर इस समय में अपने आप को सुधारते चले और जैन धर्म की नींव भी डाल दी। इस पूरी परम्परा में निष्कर्ष रूप में यह बात भी आती हैं जिसे कँवल भारती इस रूप में कहते हैं - जैन दर्शन आजीवक दर्शन के गर्भ से ही निकला है और निगंठ नातपुत्त (महावीर) भी आजीवक दर्शन के प्रभाव में थे।[5]

आजीवक परम्परा के दर्शन को स्थूल रूप में हम इस प्रकार देख सकते हैं - चार महाभूतों का अस्तित्व, आत्मा न होना, अनिश्चितता का सिद्धांत और कर्मफल का सिद्धांत ये आजीवक के दर्शन में मुख्य बातें दिखती हैं साथ ही आजीवक दार्शनिकों के जीवन से यह बातें भी पता चलती हैं - वे पुनर्जन्म का विरोध करते थे, जार-कर्म का विरोध करते थे, पाप-पुण्य का खंडन करते थे, आत्मा पर उनका विश्वास नहीं था, उसका वे खंडन करते थे।

डॉ. धर्मवीर जहाँ कबीर का धर्म आजीवक सिद्ध करते हैं पर उसकी परम्परा, उनकी आलोचना में लुप्त ही रही हैं। कँवल भारती यहाँ उनसे आगे बढ़ते हैं उस परम्परा को प्रस्तुत करते हैं जिसका कबीर से सम्बन्ध है, दलित धर्म से सम्बन्ध है। यह भी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। जैन धर्म आजीवक धर्म की कोख से ही आया हुआ धर्म है एवं बुद्ध भी आजीवक दर्शन से प्रभावित थे एवं उनके सिद्धांतों को स्वीकारा भी है।

कबीर के धर्म की तलाश में डॉ. धर्मवीर की आलोचना सामने आती है। वहीं कँवल भारती की आलोचना कबीर की कविता का मूल्यांकन भी करती है और एक नए तेवर के कबीर को पाठक वर्ग के सामने ला खड़ा करती है।

कबीर का जन्म जुलाहा परिवार में हुआ एवं इनकी माता का नाम - नीमा, पिता का नाम - नुरुद्दीन था। दलित आलोचक डॉ.धर्मवीर की ही तरह कँवल भारती भी कबीर का गुरु 'रामानंद' स्वीकार नहीं करते हैं। इनका भी वही मानना है जो डॉ.धर्मवीर का था कि कबीर का गुरु कोई और नहीं है बल्कि स्वयं उनका अपना विवेक था आजीवक धर्म, दर्शन की जो बातें हम ने देखी वहीं बाते कबीर में भी दिखाई देती हैं - कबीर भी आत्मा, पुनर्जन्म, वेद-पुराण, बैकुंठ, ईश्वरीय अवतार, मूर्तिपूजा आदि का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं।

कँवल भारती, आजीवक धर्म के विचार एवं सिद्धांत को कबीर के काव्य में दृष्टिगोचर होते दिखाते हैं तथा उनका मूल्यांकन कर उन्हें पाठक के सामने लाने का प्रयास करते हैं। डॉ.धर्मवीर का आलोचना कर्म यह सिद्ध करने में बिता है कि कबीर किस प्रकार से वैष्णव, हिन्दू, रामानन्द के शिष्य नहीं हैं, उनका अपना धर्म है, वह है- दलित धर्म। कँवल भारती इस काम को आगे बढ़ाते हैं, इस कार्य में वे दलित धर्म के दार्शनिक एवं उनके विचार-सिद्धांत आदि को उजागर करते हैं और फिर कबीर में उनकी समानता को दिखाते हैं, साथ ही वे समाज में व्याप्त पाखंड, सामाजिक भेदभाव आदि का विरोध करते एवं 'आंखन देखी' कहने वाले कबीर को उजागर करते हैं।

आजीवक धर्म परलोक, पुनर्जन्म, आत्मा आदि को न मानने वाला धर्म है वे ही बातें कबीर में दिखाई देती हैं। कबीर कहते हैं -

बहुरि नहिं आवना या देस
जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेस[6]

...

चलन चलन सबको कहत है, नाँ जानौं बैकुंठ कहाँ है?
जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातन ही बैकुंठ बखानै
कहै सुनें कैसे पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये[7]

इस पद में कबीर ने सबसे प्रखर विरोध परलोक एवं पुनर्जन्म का किया है। हिन्दू देवताओं के अवतार को लेकर भी इसी तरह प्रखर रूप में विरोध करते कबीर दिखाई देते हैं -

दस औतार निरंजन कहिए, सो अपना ना होई
यह तो अपनी करनी भोगैं, कर्ता औरहि कोई[8]

कँवल भारती अपनी किताब 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज' में स्वामी सत्य भक्त की किताब 'महावीर का अन्तस्थल' से महावीर एवं गोशाल के चरित्र को उद्धृत करते हैं। वह इस प्रकार है - 'चम्पा नगरी में तीसरा चातुर्मास पूरा कर के महावीर फिर कोल्लाक गाँव में आये सत्य भक्त ने आगे लिखा है - बस्ती के बाहर शून्यगृह में ठहरे रात में एक नवयुवक अपनी एक दासी के साथ व्यभिचार करने लगा। जब वे निकलने लगे, तब गोशाल ने दासी को

धिक्कारा, तब उस नवयुवक ने गोशाल को खूब पीटा।[9] इस कथा का कँवल भारती विश्लेषण करते हैं और लिखते हैं - महावीर ने कहा - 'गोशाल मेरी नीति को नहीं समझ पाता' यानी, जारकर्म के विरोधी गोशाल महावीर की दृष्टि में मोघ (बेवकूफ) पुरुष थे।[10]

हम यह कह सकते हैं कि गोशाल की परम्परा में जार-कर्म का विरोध दिखता है। गोशाल जारकर्म के सख्त विरोधी थे। यही बात कबीर पर भी आती है। वे भी जार-कर्म के प्रखर विरोधी दिखाई देते हैं, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री वे कहते हैं -

कामी थैं कुतो भलौ, खोलें एक जू काछ
राम नाम जाणै नहीं, बाँबी जेही बाच[11]

...

परनारी राता फिरै, चोरी बिढता खांहि
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाँहिं [12]

जिन आलोचकों को कबीर स्त्री विरोधी दिखाई देते हैं उन्हें कबीर का यह पक्ष भी पाठकों के सामने रखना चाहिए जहाँ वे स्त्री के विरोधी नहीं हैं। कँवल भारती इस पक्ष का मूल्यांकन भी करते हुए दिखाई देते हैं। वे इस पक्ष के बारे में कहते हैं - कबीर की लड़ाई स्त्री के विरुद्ध नहीं है, बल्कि व्यभिचार में लिप्त स्त्री के विरुद्ध है। उन्होंने 'पर नारी' 'कामी' और 'व्यभिचारी' शब्दों का प्रयोग किया है। वे ऐसी स्त्री को बिलकुल आदर नहीं देते हैं, जो व्यभिचारिणी हैं और पति के साथ बेवफाई करती हैं।[13] कह सकते हैं कबीर की जो छवि स्त्री के विरोधी के रूप में बनायी गयी उससे उन्हें उबारने का कार्य कँवल भारती ने किया है; उन कविताओं का मूल्यांकन कर जहाँ कबीर जारकर्मी स्त्री-पुरुष को फटकार लगाते हैं।

कबीर को भक्त मानकर उनकी कविता का मूल्यांकन करने वाले आलोचकों की किताबों में वह रूप कबीर का नहीं दिखाई देता है जहाँ वे आंखन देखी बात करते हैं, जहाँ वे गरीब, मजदूर के पक्ष में बोलते हैं, किसान के शोषण को अभिव्यक्त करते हैं, सामाजिक भेदभाव का तीव्र विरोध करते हैं, ब्राह्मणों के पाखंड का विरोध करते हैं। वे ब्राह्मण को साधु का गुरु मानने से इंकार कर देते हैं, कँवल भारती की माने तो 'साधु' कबीर ने अपने निर्गुणियों को कहा है। कबीर कहते हैं -

बाँहमण गुरु जगत का, साधु का गुरु नाहिं
उरझि-पुरझि करि मरि रह्या, चारिउ वेदा माँहि[14]

कँवल भारती कबीर की उन कविताओं का भी मूल्यांकन करते हैं। जहाँ कबीर गरीब, मजदूर के पक्ष में बोलते हैं, किसान के शोषण की बात को अभिव्यक्त करते हैं -

अब न बसूँ इहि गाँइ गुसाँई, तेरे नेवगी खरे सयाँने हो रामा।।टेक।।
नगर एक तहाँ जीव धरम हता, बसै जु पच किसानाँ।
नैनूँ निकट श्रवनूँ रसनूँ, इंद्री कह्या न मानै हो राँम।।

गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।
जोरि जेवरि खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो राम।.
खोटी महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै।
बुरा दिवाँव दादि नहिं लागै, इक बाँधे इक मारै हो राम।।
धरमराई जब लेखा माँग्या, बाकी निकसी भारी।
पाँच किसानों भाजि गये हैं, जीव धर बाँध्यौ पारी हो राम।।
कहै कबीर सुनुहु रे संतौ, हरि भजि बाँधौ भेरा।
अबकी बेर बकसि बंदे कौं, सब खेत करौ नबैरा।।[15]

कबीर की इस प्रकार की कविताओं का मूल्यांकन हिन्दी आलोचना में देखने को नहीं मिलता है पर यह काम दलित आलोचना ने किया है। कबीर का भक्त रूप समाज परिवर्तन के लिए और सामाजिक भेदभाव का खंडन करने में इतना कारगर नहीं है जितना कि उनका यह रूप। जहाँ वे गाँव की यथार्थ स्थिति को उजागर कर गरीब, किसान का शोषण करती व्यवस्था के विरोध में खड़े हैं। कबीर के इस तेवर वाली कविताओं का एवं कवि का मूल्यांकन दलित आलोचना में ही मिल सकता है जहाँ एक समाजमूलक समाज के लिए संघर्षरत वैचारिक एवं सामाजिक आन्दोलन दिखाई देता है।

कबीर का सिर्फ सामाजिक भेदभाव को मिटाने के पक्ष में; ब्राह्मण की आलोचना करने वाला रूप नहीं है। वे अनगिनत समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रकट करते हैं। गरीबी की समस्याओं को, कबीर इस रूप में उद्घाटित करते हैं। कबीर कहते हैं -

इब न रहूँ माटी के घर मैं। / इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं।।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी। / धन गरजन कंपै मेरी छाती।।
दसवैं दारि लागि गई तारी। / दूरि गवन आवन भयौ भारी।।
चहुँ दिसि बैठे चारि पहरिया। / जागत मूसि गये मोर नगरिया।।
कहै कबीर सुनहु रे लोई। / भाँनड घडण सँवारण सोई।।[16]

कँवल भारती इस कविता में कबीर की अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करते हुए उनके सवर्ण आलोचकों की संवेदन-हीनता पर चोट करते दिखाई देते हैं। वे कहते हैं - इस पद में एक गरीब की झौंपड़ी और उसकी व्यथा का यथार्थ हृदय को उद्वेलित कर देने वाला है। संवेदन-हीन द्विज विद्वानों को इस पद में गरीब की व्यथा दिखायी नहीं दी। वे इसमें कबीर के शरीर को माटी के घर के रूप में देखने लगे। उनके लिये बादलों की गरजना यमदूत का गरजना है। ये कबीर के कैसे अध्येता हैं, जो इस पद के माध्यम से एक गरीब की झौंपड़ी से रू-ब-रू नहीं होते। कितना स्पष्ट वर्णन है - घर, जिसकी दीवारें मिट्टी की बनी हैं, छप्पर में जगह-जगह छेद हैं, जिससे गरमी में धूप और वर्षा में पानी आता है इसलिये जब बादल गरजते हैं, तो उस गरीब की छाती काँप जाती है।[17]

संक्षेप में जो बात सामने आती है वह यह है कि कँवल भारती की आलोचना कबीर के सन्दर्भ में डॉ.धर्मवीर के आलोचनात्मक कार्य का अगला पड़ाव दिखाई देता है। कबीर का धर्म है दलित धर्म (आजीवक धर्म), उनका गुरु कोई और नहीं कबीर का अपना विवेक है। उनका लड़ाई सामाजिक भेदभाव के खिलाफ लड़ी गई लड़ाई है और उनके विरोधियों में ब्राह्मण, मुसलमान थे जो पाखंड को बढ़ावा दे रहे थे। जातिगत भेदभाव के कारण दलित समाज का शोषण होता आया है अतः इसी जाति का निर्मूल करने एवं एक सम्यक धर्म जो उनकी परम्परा से आता है उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास कबीर में दिखाई देता है। इस धर्म में पाखण्ड के लिए कोई जगह नहीं है, न ही पाखण्ड से किसी का शोषण परम्परा से प्राप्त इस धर्म के कारण ही वे एक समतामूलक समाज का सपना देखते दिखाई देते हैं। इस रूप के कबीर को भक्त, हिन्दू वैष्णव बनाकर उनके विचार एवं अस्तित्व को नकारने तथा इतिहास को विकृत करने वाले के विरुद्ध वैचारिक लड़ाई के रूप में कबीर का ऐसा रूप कँवल भारती अपनी आलोचना के माध्यम से सामने ले आते हैं। शोषण रहित समाज का सपना देखने वाले कबीर के अस्तित्व को नहीं नकारा जा सकता है - सुखिया सब संसार है खाये अरु सोवै दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।[18]

संदर्भ ग्रंथ :

1.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.निवेदन

2.डॉ.धर्मवीर - कबीर : नई सदी में तीन (कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी), पृ.सं.17

3.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.40

4.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.43

5.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.44

6.आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं.238

7.आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं.245

8.आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं.186

9.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.59-60

10.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.60

11.सम्पा, डॉ.श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.32

12.सम्पा, डॉ. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.30

13.कँवल भारती - आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, पृ.सं.60

14.सम्पा, डॉ. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.28

15.सम्पा, डॉ. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.121-122

16.आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं.263

17.कँवल भारती - कबीर : एक विश्लेषण, पृ.सं.71

18.हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृ.सं.259

...

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद। मो:7382452980

शोध-प्रपत्र

अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय

हैदराबाद - ५०० ००७, भारत

हिन्दी विभाग

(साहित्यिक अध्ययन संकाय)

दो-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

10-11 अक्तूबर, 2018

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री / श्री / श्रीमती / डॉ. / प्रो. कैलास घोटे ने दिनांक १०-११ अक्तूबर, २०१८ को 'इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य एवं विमर्श के विविध आयाम' विषय पर आयोजित दो-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रमुख अतिथि/सत्राध्यक्ष/आलेख-प्रस्तोता/सत्र-संचालक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया।

संगोष्ठी निदेशक एवं संयोजक
डॉ. श्यामराव राठोड़

संकाय अध्यक्ष
प्रो. टी. सेमसन

हैदराबाद विश्वविद्यालय UNIVERSITY OF HYDERABAD

मानविकी संकाय SCHOOL OF HUMANITIES

दलित-आदिवासी अध्ययन और अनुवाद केन्द्र

CENTRE FOR DALIT AND ADIVASI STUDIES AND TRANSLATION (CDAST)

हैदराबाद HYDERABAD-500 046.

क्रम.सं (SL.No) :.....................

दिनांक : 21-01-2019

प्रमाण पत्र CERTIFICATE

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/कुमारी धाटे कैलास बलिराम ने दिनांक 21-08-2019 को भारत के देशीय समाज चिंतक: समाज सुधारक संत रविदास विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय/संगोष्ठी/प्रदर्शनी/कार्यशाला/सिम्पोजियम में अध्यक्ष/विषयप्रवर्तक/आलेख-प्रस्तोता/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया और कँवल भारती का आलोचना कर्म और रैदास विषय पर प्रपत्र प्रस्तुत किया ।

This is to certify that Shri/Smt./Kum. .... has participated as Chair/Paper Presenter/ Participant in the International/National/Seminar/Exhibition/Workshop/Symposium on .... on .... and Chaired/Presented a session/research Paper entitled ....

निदेशक DIRECTOR

CDAST, School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad - 500 046

संयोजक COORDINATOR

प्रोफेसर / Professor
हिन्दी विभाग / Department of Hindi
हैदराबाद विश्वविद्यालय / University of Hyderabad
हैदराबाद / Hyderabad-500 046